# १९६० के बाद की हिन्दी कविता में विद्रोही चेतना



#### इलाहाबाद विश्वविद्यालय की डी० फिल्० उपाधि के लिए प्रस्तुत शोध प्रबन्ध

शोधकर्ता **श्रीकृष्ण तिवारी** 

निर्देशिका

डॉ० मालती तिवारी

प्रोफेसर हिन्दी विभाग
इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

(सन् १९९८-९९)

# भूमिका

हिन्दी किवता में आदिकाल से लेकर आजतक विद्रोह की एक लम्बी परम्परा विद्यामान है। सन् 1960 के बाद की हिन्दी किवता का विद्रोह इस परम्परा की नवीनतम कड़ी है। भारत में सन् 1947 से 1960 तक का समय 'नेहरू थुग' के रूप में जाना जाता है। इस थुग में जो राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक - सांस्कृतिक विसंगतियाँ उभरीं, वे 1960 के बाद और जिटल होती चली गर्यों। इन्हीं विसंगतियों की जिटलता के क्लते सन् 1960 के बाद की हिन्दी किवता में वस्तु एवं शिल्प के स्तर पर बदलाव आया और उसमें विद्रोह का स्वर प्रक्र हो गया।

ं सन् 1960 के बाद की हिन्दी कितता में विद्रोही केतना " - विषय के अध्ययन के लिए मेंने इस शोध - प्रबन्ध को छः अध्यायों में विश्वत किया है:

- । विद्रोह : अवधारणा एवं स्वस्प
- 2 हिन्दी कविता में विद्रोही वेतना का विकास
- अन्त 1960 के बाद की हिन्दी कविता : पृष्ठभूमि एवं परिवेश
- 4. साठोत्तरीहिकेविता: राजनीतिक विद्रोह का पर्याय
- 5. साठोत्तरी हिन्दी कविता का आर्थिक सामाजिक विद्रोह
- 6 साठोत्तरी कितता : अभिव्यक्ति के नये आयाम छठे अध्याय के बाद निष्कर्ष के रूप में उपसंहार है ।

कथाय एक के बन्तर्गत, विद्वीह के मनौवैज्ञानिक स्वस्प, विद्वीह के अर्थ, कृतिन्त, बाढ़ोश एवं प्रतिक्रिया से बिद्धोह के अन्तर, विद्वीह के कारण, विद्वीह के भेद एवं विद्वीह की सार्थकता पर विवार करते हुए काव्य में विद्वीह की अभिक्यित के स्वस्प का विवेक्त किया गया है।

अध्याय दो में, हिन्दी कविता में आदिकाल से लेकर नथी अविता तक विध्नान विद्रोह ने स्वरूप का सक्षेप में विश्लेषण किया गया है।

अध्याय तीन में, स्वातन्त्र्योत्तर भारत के विसंगतिग्रस्त राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक - सांस्कृतिक परिदृश्य की समीक्षा की गयी है, जिसने साठोत्तरी कविता को जन्म दिया और जिसके कारण विद्रोह इस कविता की खास प्रवृत्ति बनी ।

अध्याय वार में, साठोत्तरी किवता में निहित राजनीतिक विद्रोह का यथासम्भव विस्तार से विवेदन किया गया है। राजनीति के प्रति इस कविता का विद्रोह अपेक्षाकृत अधिक मुखर एवं व्यापक है। उत: मैने इस पर अपनी दृष्टि अधिक केन्द्रित रखी है।

अध्याय पाँच के अन्तर्गत, साठोत्तरी कविता में विद्यमान आर्थिक विसंगतियों, समाज की परम्परागत स्ट्रमान्यताओं एवं पूँजीवादी संस्कृति की शोषणधर्मी गतिविधियों के विस्ट्र विद्रोह पर विचार किया गया है।

बध्याय छ: में साठोत्तरी कविता के शिल्प का विश्लेषण है। इसमें यह
स्पष्ट किया गया है कि परम्परागत काव्यप्रतिमानों को अपनी अनुभूति की सफल
अभिव्यक्ति के बाधक समझकर इस दोर के कवियों ने उन्हें अस्वीकारा और उनके विकल्प
में अभिव्यक्ति के नये आयामों को अपनाया।

उपसंहार में पूरे अध्ययन का निष्कर्ष निहित है।

साठोत्तर कवियों एवं उनकी काव्यर वनावों की संख्या बहुत विधक है। उत:
यहाँ सबको समेट पाना और जिए सम्भव नहीं है। मैने सातवें दशक से लेकर नवें दशक के
मध्य तक की कविता तक ही उपने शोध - प्रबन्ध को सीमित रखा है। इस दौर के जिन

कविथों की कविताओं को मैंने अपने शोध का मुख्य आधार बनाया है, वे हैं -नागार्जुन, त्रिलोक्न, केदारनाथ अग्रवाल, केदारनाथ सिंह, रघुवीर सहाय, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना, सुदामा पाण्डेय धूमिल, लीलाधर जगूड़ी, ज्ञानेन्द्रपति, कुमारेन्द्र पारस्नाथ सिंह, आलोकधन्वा, अस्णकमल, उदयप्रकाश, गौरख पाण्डेय। इनके अतिसित्त अन्य कवियों की कविताओं का भी आवश्यकतानुसार प्रयोग किया गया है।

यह शोध - प्रबन्ध मेरे पितामह श्री रामनरेश तिवारी, पिता श्री राममूर्ति तिवारी एवं माता श्रीमती राजमती तिवारी के त्याग एवं प्रेरणा का परिणाम है। मैं उनका श्रुणी हूं। यदि उन्होंने मुझे उच्च शिक्षा न दिलायी होती तो मैं आज इस स्थिति तक न पहुँचता।

में, डाँ० श्रीमती मालती तिवारी प्रोपेसर एवं विभागाध्यक्ष हिन्दी विभाग इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद का आभारी हूँ, जिन्होंने मुझे अपने शोध छात्र के रूप में स्वीकार किया, अपने कुशल निर्देशन से बड़ी सहजता के साथ मेरी समस्याओं का समाधान किया और मुझ पर अपना स्नेह बनाये रखा।

में आभारी हूं, अपनी जीवनसींगनी सरिता त्रिपाठी का जिन्होंने हठपूर्वक मुझसे शोध - पृखन्ध लिखवाया। यदि उन्होंने ऐसा न किया होता तो मेरा यह कार्य अभी न पूरा हुआ होता।

में बाभारी हूं, भी रावेश राजौरिया, विम्बकापुर क्षे सरगुजा के मठ प्रठ क्षेट्य डाँठ रामकुमार मिन बहायक प्रोपेसर हिन्दी बासकीय स्नातको त्तर महाविद्यालय विम्बकापुर क्षरगुजा मठ प्रठ का, जिन्होंने बीच कार्य हेतु मुद्धे पत्र - पत्रिकाधें उपलब्ध करायीं। और में आभारी हूं, श्री विजय कुमार गुप्त, संपादक 'साम्य' अम्बकापुर (सरगुजा) मठ प्रठ का जिन्होंने मुझे शोध हेतु अपनी पत्रिकार्ध उपलब्ध करायीं।

में श्री उमाकान्त पाण्डेय, जिन्होंने इलाहाबाद में मुझे शोध कार्य को अन्तिम रूप देने के निए आश्रय दिया, श्री ओकार सिंह 'मोला', जिन्होंने राजकीय सी०पी० आई० छात्रावास के कक्ष संख्या 68 में मुझे अपने साथ रखकर शोध - प्रबन्ध के पुनरीक्षण में मेरा भरपूर सहयोग किया, श्री विनोद कुमार सिंह हालेण्डहाल छात्रावास इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद, जो बड़ी आत्मीयता से मेरे शोध - प्रबन्ध को व्यवस्थित कराने में सेरे साथ लगे रहे तथा अनुज श्री हरिकृष्ण तिवारी, जो मेरा हर सम्भव सहयोग करते रहे, का कृतज हूं।

में शासकीय महाविद्यालय कुसमी सरगुजा मध्य प्रदेश के अपने सहकर्मी श्री मनीज कुमार सिन्हा सहायक प्रोफेसर भूगोल एवं प्रभारी प्राचार्य,श्रीमती सुषमा भगत सहायक प्रोफेसर समाजशास्त्र, सुन्नी सुनीला इक्का सहायक प्रोफेसर राजनीतिशास्त्र एवं श्री अनिल कुमार चौधरी सहायक प्रोफेसर अर्थशास्त्र का आभारी हूँ जिनके "सहयोग से हमारा शोध कार्य निक्षि रूप से सम्पन्न हुआ।

श्री उमा शंकर पाल जी का मुझपर आभार है। उन्होंने मेरे शोध - प्रबन्ध का टंकण कार्य बड़ी सहजता एवं सज्जनता से स्वीकार किया और उसे समयबद्ध दंग से पूरा किया।

बन्ततः मैं वाभारी हूँ बगुज तुन्य डाँ० श्री जनार्दन तिवारी व्याख्याता हिन्दी एव० ए० एल० स्कूल लक्ष्मऊ का जो मेरे लिए शोध कार्य में प्रेरणास्रोत रहे।

शोध - प्रबन्ध में रह गयी त्रुटियों के लिए में विद्वानों से क्षमा प्रार्थी हूं और उनका सुद्धाव शिरोधार्य है। ईश्वर की में नतमस्तक हूं।

श्रीकृष्ण तिवारी |

### विषय - सूची

पृष्ठ संख्या

अध्याय - एक - विद्रोह: अवधारणा एवं स्वरूप

1 - 32

विद्रोह अर्थ एवं स्वरूप विद्रोह के कारण विद्रोह के प्रकार विद्रोह की सार्थकता साहित्य में विद्रोह की अभिन्यक्ति का स्वरूप

#### अध्याय - दो - हिन्दी किता में विद्रोही वेतना का विकास

33 - 75

- ।- आदि कालीन हिन्दी कविता में विद्रोह का स्वरूप
- 2- भिवत जान्दोलन एवं भिवत काव्य: विद्रोह का -सकारात्मक स्वरूप
- 3- रीतिकालीन कविताः विद्रोह का अभाव
- 4- आधुनिक कविता : पुनर्जागरण

**१क** श्रे भारतेन्दु युग

श्वश्व दिवेदी युग

१ग१ छायावाद

5- 1936 के बाद की किवता : विद्रोह का स्वस्प

**१क** ६ प्रगतिवाद

श्वि प्रयोगवाद

श्रेग विता किवता

अध्याय - तीन - 1960 के बाद की हिन्दी कविता : पृष्ठभूमि एवं परिवेश - 76-121

- -राजनीतिक विसंगति
- -भारत वीन युद
- -वार्थिक बदहानी

बेरीजगरी: एक महराता संबट

गरीबी एक त्रासदी विषमता की बढती खाई भारतीय जनमानस का मोहभा : आम वुनाव, विद्रोह -एवं आन्दोलन नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह उत्तर प्रदेश - पी० ए० सी० विद्रोह युवा आन्दोलन अपात काल सामाजिक-सांस्कृतिक परिवर्तन जनसंख्या का नगरीन्मुख पलायन वैयवितक विसग्डन पारिवारिक विखण्डन योन स्वस्तन्दता नारी खातन्त्रय वश्लीलता पेशन वे रूप में मृत्यहीनता एवं संवैदनहीनता जातियों का राजनीतिकरण एवं उनकी परम्परागत -विशेषता में परिवर्तन,धर्म एवं ईश्वर सम्बन्धी धारणा -में परिवर्तन

अध्याय - चार - साठोत्तरी हिन्दी कविता : राजनीतिक विद्रोह का पर्याय - 122-200

- साठोत्तरी ऋविता : हाथ की तरफ उठा हुआ हाथ

- जनविद्रोह एवं साठोत्तरी कविता

नक्सलबाड़ी विद्रोह: भूड में तनी हुई मुठ्ठी का नाम

पी0ए0सी0 विद्रोह: वर्दी से बाहर निकल कर रोटी की माँग

युवा बान्दोलन: सम्पूर्ण कृतिन्त का प्रयास

बाषात काल : एक नारकीय यान्त्रणा

भाषाधी अन्दोलन: चन्द वालाक लोगों की वाल

		40 40
	- व्यवस्थातन्त्र: साठौत्तरी कविता की दृष्टि में	
	। • आजादी: गुलामी का स्वदेशी संस्करण	
	2 • संसद : हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा कब्रगाह	
	3 • प्रजातन्त्र: शादमी के सिनाप आदमी का सुना सङ्यन्त्र	
	4 • नेता: दाँतीं एवं दलालों का दलाल	
	5 समाजवाद: मालगोदाम में लटकी हुई बालटी	
	6 • चुनाव : राजनीति का खेल	
	7•साम्प्रदायिकता: चुनावी राजनीति	
	-साठोत्तरी कविता: व्यवस्था की मौत का गान	
<b>अध्याय -</b> पा	व - साठोत्तरीक्षकिविता का आर्थिक-सामाजिक विद्रोह	201 - 233
	<b>{क</b> { नार्थिक बदहाली का सुलासा	
यध्याय - छ:	- साठोत्तरी कविता : अभिव्यक्ति के नये आयाम	234 - 274
	। • भाषा की सजावट के प्रति अन्यमनस्कता	
	2 • बिम्ब : कविता के हासिये में	
	<ul><li>अपाटक्यानी : बिम्ब का किल्प</li></ul>	
	4 • लम्बी कविता : अभिव्यंजना की आवश्यकता	
	5• व्यंग्य : विसंगतियों की उपज	
उपसंहार -		275 - 282
परिशिष्ट -		
71 (1476		1-9

#### अध्याय - एक

# विद्रोह: अवधारणा एवं स्वस्प

'विद्रोह' मूलत: संस्कृत भाषा का पुल्लिंग संज्ञा शब्द है। यह 'वि' उपसर्ग'दूह' धातु एवं घछ ' प्रत्यय के योग से है वि +दृहम्ख्वल् है संरचित है। इसका अर्थ है - शज़ता-पूर्ण कार्य, देश या राज्य में कृतिन्त करने के लिए किया जाने वाला उपद्रव । जहाँ तक 'विद्रोही चेतना' शब्द की बात है तो यह 'विद्रोही ' एवं चेतना' दो शब्दों के योग से बना है। इसमें 'विद्रोही ' शब्द 'विद्रोह' संज्ञा से निर्मित विशेषण शब्द है, जिसका शाब्दिक अर्थ है - विद्रोह करने वाला। 'चेतना' स्त्रीलिंग संज्ञा शब्द है जिसका सामान्य अर्थ बुद्धि एवं ज्ञान है। इस तरह 'विद्रोही चेतना' का शाब्दिक अर्थ हुआ विद्रोह करने वाली बुद्धि, विद्रोह करने वाला ज्ञान, विद्रोह करने वाली समझ।

#### विद्रोह: अर्थ एवं स्वस्प:-

विद्रोह किसी व्यवस्था को अस्वीकार करके उसे नष्ट कर देने की एक मन:

रिथित है, जिसका प्रकाशन कायिक क्रियाओं द्वारा होता है। यदि विद्रोह का
भाव मन में उत्पन्न हो, लेकिन वह बिना क्रियात्मक रूप धारण क्रिये मन में ही

तिरोहित हो जाय, तो न तो उसकी कोई सार्थकता है, और न कोई पहचान।

इस प्रकार विद्रोह की दो रिथितियां हैं - एक मानसिक और दूसरी कायिक। बिना

कायिक रिथित को प्राप्त किये विद्रोह का स्वरूप पूर्ण नहीं माना जा सकता। विद्रोह
की अपनी मन: रिथित को कोई साहित्य लिखकर शब्द के माध्यम से व्यक्त करता है,
कोई उसे वाणी के माध्यम से प्रस्कृटित करता है और कोई उसे अस्त्र-शस्त्र के सहारे मार

<sup>।-</sup> संस्कृत हिन्दी कोश - पृ० ४८२, वामन शिवराम आप्टे।

काट द्वारा कार्य रूप देता है।

विद्रोह 'समाजशास्त्र' एवं 'मनोविज्ञान' में परिभाषिक शब्द के रूप में प्रयक्त है। इसे परिभाषित करने के लिए विद्वानों ने अपनी बुद्धि को काफी क्रेदा है और शाब्दिक व्यायाम भी किया है। लेकिन यहाँ विद्रोह का न तो हमें समाजशास्त्रीय विवेचन करना है और न मनोवैज्ञानिक विश्लेषण । यहाँ हमारा उद्धदेश्य साहित्य के स्तर पर विद्रोह के सम्बन्ध में एक सहज स्वाभाविक समझ कायम करना है। अत: हमें विद्रोह की जिटल शास्त्रीय परिभाषा में जाने की जरूरत नहीं है। बड़े सहज स्वाभाविक दंग से हम कह सकते हैं कि किसी व्यक्ति या व्यक्ति समूह द्वारा किसी सत्ता, व्यवस्था, परम्परा रुद्धि बादि को अस्वीकार और उसे समाप्त करने का प्रयत्न विद्रोह है। व्यवस्था आदि का सम्बन्ध राजनीति, समाज, नैतिकता, धर्म आदि किसी से भी हो सकता है। केवल राजनैतिक सत्ता या व्यवस्था का अस्वीकार. विरोध और उसे समाप्त करने का प्रयत्न मात्र ही विद्रोह नहीं है। वह विद्रोह का केवल एक प्रकार विशेष है। विद्रोह राजनीतिकेतर सत्ताओं एवं व्यवस्थाओं के सिलाफ भी हो सकता है। विद्रोह के लिए उसकी सफलता अनिवार्य नहीं है। प्रत्येक विद्रोह सफल हो तभी हम उसे विद्रोह मानें अन्यथा नहीं, यह ठीक बात नहीं है। अलग-अलग विद्रोह की प्रकृति तीव्रता, कालावधि और परिस्थिति भिन्न-भिन्न हो सकती है। यह तो हो सकता है कि हम एक प्रकार के विद्रोह को समर्थन दें, दूसरे प्रकार के विद्रोह को समर्थन न दें, किन्तु यह नहीं हो सकता है कि हम एक प्रकार के विद्रोह को विद्रोह माने, दूसरे प्रकार के विद्रोह को विद्रोह न माने।"!

<sup>।-</sup> वाधुनिक बोध और विद्रोह - पृ० १, डाँ० हरदयाल ।

विद्रोह की मन: स्थित आकि स्मिक स्प से निर्मित नहीं होती । इसके पीछे मनोदशाओं की एक लम्बी शृंखला विद्यमान रहती है । विद्रोह के मूल में असन्तोष का शाव होता है, जो किसी भी व्यवस्था के प्रति उसकी अनुपयुक्तता, अतार्किकता एवं अमानवीयता के कारण उत्पन्न होता है । यही स्थिति मोहभां को जन्म देती है । असन्तोष से मन में अमर्ष, आकृश्य, कृश्य एवं बेर का भाव पनपता है । किसी व्यवस्था के प्रति इन मनोदशाओं में पहुंचा हुआ व्यक्ति उस व्यवस्था के विस्द विरोध, अस्वीका या निषेध की नीति अपनाता है । वह उस व्यवस्था को ध्वस्त करना चाहता है और उसे नष्ट करने के विचार, उसे उखाड़ फेक्ने की उत्तेजना एवं नवनिर्माण की बेतना से उसका मन भर जाता है । यही विद्रोह की मन: स्थिति है, विद्रोह का सूक्ष्म, मानसिक या अव्यक्त स्प है । विद्रोह की इस मन: स्थिति का प्रस्टून जब गतिविधि के स्प में होता है तो विद्रोह मूर्त स्प धारण करता है । यह गतिविधि वैचारिक या सशस्त्र आकृष्ण के स्प में हो सकती है ।

शक्ता का भाव बनता है उसी प्रकार अमर्ष की मात्रा बदने पर आकृशि और आकृशि के जमने पर कृशि बनता है। अमर्ष और आकृशि में व्यक्ति अपनी प्रतिक्रिया अपने तक सीमित न रखकर उसे प्रकट करने लगता है किन्तु अमर्ष या आकृशि में व्यक्ति प्रतिपक्ष के विरुद्ध प्रहार के लिए सन्नद्ध हो यह आवश्यक नहीं है। यदि प्रतिपक्ष प्रबल है तो आकृशि व्यक्ति अपनी खीझ या तीक्ष्णता प्रकट कर या तो अपने में सिकुड़ कर शान्त हो जाता है या पिर आकृशि की भन्नाहट में कुछ समय तक उत्तेजित बना रहता है। अमर्ष की दशा से वही व्यक्ति कृशि की मनोगति में पहुँचता है जो उत्तेजित स्थित में आत्मरक्षात्मक भीतरी शिक्कि की उपेक्षा कर मरने-मारने को तैयार हो जाता है। - - - - - - युद्ध सर्वदा कृशि की अवस्था में होता है - अमर्ष एवं आकृशि की दशा में नहीं, क्योंकि ये कृशि के सेविग हैं। "!

वाकृशि एवं विद्रोह में बन्तर है जिसे स्पष्ट करते हुए प्रोठ मंजु बग्रवाल ने लिखा है "वाकृशि और विद्रोह में बन्तर होता है। कुढ व्यक्ति प्रचलित प्रथा से चिद्रा होता है, उस पर प्रहार करता है, किन्तु उसका कृशि निष्पल एवं दिशाहीन होता है। नीत्सों ने ऐसे लोगों की प्रतिक्रिया को रिवेलियन न कह कर - रिजेन्टी - मेन्ट - कहा है। शीलर ने वाकृशि के तीन स्तर बताये हैं - घृगा का भाव, ईष्या एवं वाकृशिक रख। बाकृशि व्यक्ति या समाज के वाकृश्य तत्वों के प्रति अपने मनो - भावों को सिक्रिय रूप में व्यक्त करने की क्षमता का वभाव तथा निरन्तर अपने नपुंसक कृशि को वनुभव करके बड़बड़ाते रहने की प्रवृत्ति है। विद्रोही कृशि करता है, पर वपनी नपुंसकता और लावारी को वैवारिक जामा पहनाकर सन्तुष्ट नहीं होता।

<sup>। -</sup> समकालीन कविता की भूमिका - पृ० 35-36, विश्वमभरनाथ उपाध्याय ।

वाक़ीश मृत्यहीन होता है, जबिक विद्रोह मृत्य सम्बद्ध । विद्रोही निर्धक मृत्यों से टकराता है और उन्हें तीड़कर नये मृत्य प्रतिष्ठित करना चाहता है । क्रूद व्यक्ति अंगूर संदर्ट हैं, कह कर अपनी क्रूदन व्यक्त करता रहता है, जबिक विद्रोह अंगूर के बारे में प्रचलित स्वाद को ही गलत कहता है और उसकी जगह स्वाद का नया मानदण्ड रसना चाहता है । " विद्रोह एवं बाक़ोश के मध्य विद्यमान मौलिक बन्तर को बत्वेयर कामू ने बड़ी स्पष्टता से निस्पित किया है । उनका मत है कि विद्रोह घनात्मक होता है और बाक़ोश निषेधात्मक, बाक़ोश में विद्रेष की प्रधानता रहती है, जबिक विद्रोह में स्वाधिकार संरक्षण का शाव प्रबल होता है, विद्रेष का शाव गौण । तात्पर्य बाक़ोशी के मन में उन वस्तुओं के प्रति विद्रेष का शाव पेदा होता है, जो उसके पास नहीं है, जबिक विद्रोह के मन में, जो वस्तु उसकी है, उसे मिलनी चाहिए, उसके उपर अधिकार प्राप्त करने की केतना होती है । बाक़ोश में व्यक्ति के कत्याण मात्र की शावना रहती है जबिक विद्रोह में मनुष्य मात्र के हित की समझ रहती है, बाक़ोश में दूसरों से तादात्म्य बावश्यक नहीं है, जबिक दूसरों से तादात्म्य विद्रोह के लिए बावश्यक है । 2

अस्वीकार का अर्थ न मानना है, किसी स्थिति का निष्ध या विरोध करना है। अस्वीकार, विद्रोह की तीन स्थिति - अस्वीकार, विनाश एवं निर्मिति -में से बहली स्थिति है। विद्रोह के अन्तर्गत किसी व्यवस्था को पहले अस्वीकारा जाता है। पिर उसकी ध्वस्त किया जाता है और पिर नविनाण की बात की जाती है।

<sup>।-</sup> धुमिल : काट्य याचा - पू० 23-24, प्रो० मंजू अग्रवाल ।

<sup>2-</sup> व्यक्तित्ववाद - कीर्मेगार्ड से कामू तक - पृ० 186, योगेन्द्र शाही ।

जिना अस्वीकार के ध्वंस और निर्माण की बात नहीं जा सकती है। अस्वीकार प्राय: तीन कारणों से होता है। प्रथम कारण अनुपयुक्तता एवं जड़ता है। जब कों वें विचार या व्यवस्था समय की दृष्टि से अनुपयुक्त हो जाती है, उसकी गतिशिक्ता समाप्त हो जाती है और उसमें जड़ता जा जाती है, तो व्यक्ति उसे अस्वीकार करने लगता है। दूसरा कारण नवीनता के प्रति आकर्षण है। व्यक्ति जब किसी नवीन विचार या व्यवस्था के प्रति आकर्षित होता है, तो प्रानी व्यवस्था को अस्वीकार देता है। तीसरा कारण प्रदर्शन की प्रवृत्ति है। कभी-कभी व्यक्ति बिना किसी विचार, तर्क एवं चिन्तन के केवल आत्मप्रदर्शन की भावना से भी किसी बात को अस्वीकार करता है। अस्वीकार की यह प्रवृत्ति घातक है, अराजकता को उत्पन्न करने वाली है।

विद्रोह 'प्रतिक्रिया' से भी भिन्न है। दोनों में बन्तर स्पष्ट करते हुए रजनीश ने कहा है - "में मानता हूं कि रियेक्शनरी कभी भी ठीक अर्थों में रिवेतियन नहीं हो क्रांसाहे। प्रतिक्रियावादी जो सिर्फ प्रतिक्रिया कर रहा है, वह समाज से उत्ता हो जाता है। तुम ऐसे कपढ़े पहनते हो तो हम ऐसे पहने गें। तुम स्वच्छता से रहते हो हम गन्दगी से रहेंगे। तुम ऐसे हो हम उत्ता चलेंगे। लेकिन उत्ता जाना विद्रोह नहीं है, प्रतिक्रिया है। - - - - - - विद्रोह की बड़ी की मत है - - - प्रतिक्रिया की कोई कीमत नहीं है। विद्रोह एक मूल्य है लेकिन प्रतिक्रिया एक रोग है। - - - - - - - प्रतिक्रियावादी हमेशा उससे बंधा रहता है, जिसकी वह प्रतिक्रिया कर रहा है। - - - - - - प्रतिक्रिया के परिणाम स्तरनाक है। प्रतिक्रिया ज्यादा स्थायी नहीं होती। सिर्फ संक्रमण की बात होती है। विद्रोह है विवेक और प्रतिक्रिया है बिवेक । एक विद्रोही बादमी इसलिए 'नहीं' नहीं कहता,

कि नहीं 'कहना चाहिए। अगर 'नहीं 'कहना चाहिए इसलिए कोई नहीं कहता है, तो यह हाँ हुजूरी है। - - - - - वह नहीं इसलिए कहता है, कि उसे लगता है 'नहीं 'कहना उचित है। और अगर उसे लगता है कि हाँ कहना उचित है तो दस हजार नहीं कहने वालों के बीच में भी वह हाँ कहेगा। विद्रोह अनिवार्य रूप से विवेक है और प्रतिक्रिया अविवेक है।"

विद्रोह एवं कृतिस में भी अन्तर है। कृतिस का अर्थ है किसी व्यवस्था
में आमूल परिवर्तन। कृतिस एक सामृहिक प्रक्रिया होती है, जिसका लक्ष्य शोषक —
पीड़क व्यवस्थाकों जड़ से उसाड़कर सर्वथा नवीन व्यवस्था का निर्माण होता है। कृतिस
कभी व्यक्तिगत नहीं होती है। वह सामृहिक जनशिक्त पर आधारित होती है।
जनशिक्त की सामृहिकता ही किसी व्यवस्था को समग्रता से नष्ट करके नयी व्यवस्था
स्थापित करने में सक्षम हो पाती है। जहाँ तक विद्रोह की बात है, तो वह सामृहिक
एवं वैयिक्तक दोनों हो सकता है, लेकिन दोनों का लक्ष्य सार्वजनिक कल्याण ही रहता
है। यह अलग बात है, कि वैयक्तिक विद्रोह में वैयक्तिक हित रहता है, लेकिन उसके
द्वारा सार्वजनिक हित भी सम्ता है। विद्रोह व्यवस्था के अन्दर ही होता है।
जबकिसी व्यवस्था के कुछ तस्व किसी भी कारण जनहित में बाधा उत्पन्न करने लगते
हैं, तो उनके प्रति विद्रोह होता है। उन तस्त्वों को नष्ट करके व्यवस्था को संशोधित
किया जाता है। "विद्रोह विकास गति की अविध में उपने अन्तर्विरोध के प्रति ही
हो सकता है। "विद्रोह निरन्तर करने वाली प्रक्रिया है। कृतिन्त के द्वारा यदि

 <sup>1 -</sup> विद्रोह क्या है १ प्० 25, संकलन-स्वामी बोग चिन्मय - जकलपुर विश्वविद्यालय में
 21 मार्च 1960 को हिप्पी विद्रोह पर रजनीय द्वारा दिया गया व्याख्यान ।
 2 - समकालीन कविता की भूमिका - प्० 41, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ।

कोई नयी व्यवस्था स्थापित कर दी जाती है, तो वह सदेव निर्विवाद नहीं रहती।
स्वार्थी तत्त्व उस व्यवस्था में किसंगतियाँ उत्यन्न करते रहते हैं, फलत: विद्रोह होता
रहता है। विद्रोह एवं कृतिन को प्राय: एक ही समझा जाना स्वाभाविक है,
क्योंकि दोनों में व्यापकता का ही बन्तर है, कोई वर्गत बन्तर नहीं। हम कह सकते
हैं कि कृतिन एक व्यापक विद्रोह है। एक व्यापक समूह जब व्यवस्था के किसी अंग
के प्रति नहीं बेल्कि पूरी व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता है और उसे समाप्त करके नयी
व्यवस्था कायम करता है, तो उसे कृतिन कहते हैं। लेकिन विद्रोह के साथ स्सा नहीं
है कि जिस व्यवस्था की जिस विसंगति के प्रति विद्रोह किया जाय, वह समाप्त ही
हो जाय और उसके स्थान पर संगति जा ही जाय। लेकिन कृतिन में परिवर्तन हैता है,
यदि परिवर्तन नहीं हुआ तो कृतिन कैसी १ विद्रोह एवं कृतिन को ज्यादा दूर तक
एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता।

विचारकों ने विद्रोह को कृतिन की अपेक्षा ज्यादा बेहतर माना है और उसको ज्यादा समर्थन भी दिया है। अपनी पुस्तक दि रिकेल में कामू ने कहा है कि कृतिन के द्वारा जब अपेक्षाकृत एक मानवीय व्यवस्था स्थापित हो जाती है तो कृतिन कारी उस व्यवस्था का हिस्सा बन जाता है। उसकी भूमिका और विरन्न बदल जाता है। वह कृतिन्तकारी न रहकर व्यवस्थापक हो जाता है। सोवियत स्म का उदाहरण देते हुए कामू ने लिखा है कि लेनिन के समय के सोवियत स्म में कृतिकारियों में जारशाही के विरुद्ध विद्रोह किया था। लेकिन नयी व्यवस्था स्थापित हो जाने पर वे व्यवस्थापक हो गये और उस व्यवस्था में वायी विसंगतियों की खिलापत करने वाले बुसारिन आदि को उन्होंने समाप्त कर दिया। विद्रोह को कृतिन की अपेक्षा बेहतर बताते हुए रक्तीश ने लिखा है - बगावत वात्मा का जन्म है। - - - -

सीप में, हम वह सकते हैं, कि किसी व्यवस्था की अमानवीयता कूरता, शोषण, अनुपयुक्तता आदि के कारण उसके प्रति मन में असन्तोष उत्पन्न होता है, जिसकें फलस्वरूप मन में अमर्ष, कोध, आकृशि, बेर आदि भाव पनपने लगते हैं, जिससे व्यक्ति उस व्यवस्था को, वैवारिक या कियात्मक स्तर पर, जैसा भी सम्भव हो, अस्वीकार करने लगता है, उसे ध्वस्त करता है और उसके स्थान पर नविनर्माण की दिशा में प्रयास करता है, यही विद्रोह है। असन्तोष, अमर्ष, कृधि, आकृशि, बेर तथा अस्वीकार, विध्वंश एवं नविनर्मण का भाव – ये सब अपने आप में भिन्न-भिन्न मनोदशाएँ हैं। विद्रोह की

<sup>।-</sup> विद्रोह क्या है १ - पू0 16-17, सं0 स्वामीयोग चिन्मय ।

मन: स्थिति में ये सब सूक्ष्म रूप से समाहित रहते हैं। इन सब की अनुपरिथिति में विद्रोह की मन:स्थिति बन ही नहीं सकती है।

#### विद्रोह के कारण:-

विद्रोह का भाव मनुष्य में जन्म से नहीं रहता । उसकी वैतना, उसकी सोव समझ जन्मजात विद्रोही नहीं होती, परिवेश एवं परिस्थितियाँ ही विद्रोह को जन्म देती हैं। "विद्रोह की वेतना अन्यायपूर्ण और आततायी स्थिति के सामने पड़ने पर जगती है। मनुष्य जब दासता की मनोवृत्ति से उबरने के लिए प्रयत्नशील होता है और समानता की मनौभूमि पर अपने अधिकारों के प्रति सजग होकर संघर्षरत होता है,तभी विद्रोह की नींव पड़ती है। अधिकारों के प्रति सजगता, संघर्षशील प्रवृत्ति और मुन्ति कामना विद्रोह की आधारभूत विशेषताएँ हैं।"। विद्रोह के मूल में असन्तोष का भाव विद्यमान रहता है और वही विभिन्न मनोदशाओं को जन्म देता हुआ तथा उनसे सँम्पूक्त होता हुआ विद्रोह के रूप में पूट पड़ता है। लेकिन हर असन्तोष विद्रोह नहीं बन पाता है, उसके लिए कुछ कारकों की आवश्यकता होती है। अत: असन्तोष उत्पन्न करने वाले एवं उसे बल देकर विद्रोह की स्थिति तक पहुँचाने वाले कारक ही विद्रोह के कारण है। यदि विद्रोह के कारणों पर सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो उन्हें दो वर्गों में विभक्त किया जा सकता है - १। १ वान्तरिक कारण १२१ बाह्य कारण। बिना इन दोनों कारणों के सहयोग के विद्रोह की स्थिति नहीं बन सकती है। जान्तरिक कारण से तात्पर्य, विद्वोह करने वाले व्यक्ति या विद्वोह करने वाले जनसमुदाय की सीच समझ या वैचारिक प्रमतिशीलता से है, जिसे हम आधुनिक बोध भी कह सकते हैं। बाह्य कारण

<sup>।-</sup> विद्रोह और साहित्य - पृ० 17, सं० नरेन्द्रमोहन; देवेन्द्र इस्सर ।

से तात्पर्य, उस परिवेश से है, जिसमें व्यक्ति रहता है। व्यक्ति या व्यक्ति समूह में असन्तोष परिवेश जन्य विसंगतियों के कारण उत्पन्न होता है। लेकिन वैवारिक प्रगतिशीलता के अभाव में परिवेश की विसंगतियाँ, न तो असन्तोष उत्पन्न कर सकती है और न असन्तोष विद्रोह की स्थिति तक पहुँच सकता है।

# । - अन्तिरिक कारण :-

विद्रोह की पृक्तिया में आन्तिरक कारणों की अहम् भूमिका होती है। आन्तिरक कारण यानी 'आधुनिक बोध' के अभाव में, राजनैतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विसंगित जैसे बाह्य कारणों की उपस्थित में भी विद्रोह नहीं हो सकता है। आधुनिक- बोध व्यक्ति में जीवन की विसंगितियों की समझ पैदा करता है, वह उसके विरुद्ध उसमें विन्ता एवं असन्तोष उत्पन्न करता है तथा असन्तोष को विद्रोह की परिणति तक ले जाता है। प्रश्न उठता है कि 'आधुनिक बोध' है क्या १ "डाँ० धर्मवीर भारती ने आधुनिक बोध को संकट बोध माना है, डाँ० रघ्वंश ने इसे असम्पृक्त यथार्थ दृष्टि के रूप में बाँका है, डाँ० नामवर सिंह कभी इसे एक पृक्रिया के रूप में तो कभी एक मूल्य के रूप में खोज निकालते हैं, अन्नय इसे सापेक्षवाद में आंकते हैं। केदारनाथ अग्रवाल ने आधुनिकता को खण्डित मानव मन की खण्डित मनोदशा की खण्डित अभिव्यक्ति बताया है।"

'बाधुनिक' शब्द कालवाक शब्द है जिसका वर्ध है - नया। यानी बाधुनिक बोध' 'नया बोध' है। लेकिन बाज जो कुछ नया है वह कल समय की दृष्टि से पुराना हो जायेगा। इसलिए यदि 'बाधुनिक बोध' को 'वर्तमान बोध' समकानीन बोध'

I- माध्यम - जुलाई 1965, पूo 5 I

परिवेश बोध के रूप में समझा जाय तो बात ज्यादा स्पष्ट होगी । इस प्रकार हम कह सकते हैं कि 'बाधूनिक बोध' वह 'बोध हे जो व्यक्ति को सिंदगों, अंधिवश्वासों, निर्धक नैतिकताओं एवं अनुशासनों तथा अतार्किक-अवैज्ञानिक विवारों से मुक्त करके उसे उसके परिवेश से सम्पृक्त एवं वर्तमान तथा पर्यावरण के प्रति सज्जा रखता है । लेकिन हमें आधुनिकता को परम्परा के परित्याग के रूप में समझने की भूल नहीं करनी चाहिए । डाँठ नगेन्द्र के शब्दों में "आधुनिक दृष्टि, परम्परा को प्रवाह के रूप में स्वीकार करती है, जो निरन्तर अग्रसर रहता है और जिसमें परिवर्तन अनिवार्य है । जीर्ण-प्रातन के त्याग, संशोधन तथा पुनर्मृत्यांकन की पद्धित से नव-नव रूपों के विकास की आविधा, वैक्रिय एवं नवीनता के प्रति आवधुनिकता के सहज वंग है । अत: रूदियों के प्रति विद्रोह और नवजीवन के विकास के लिए प्रयोग के प्रति आग्रह यहाँ अनिवार्य है ।" कहने का तात्पर्य, आधुनिकबोध में परम्परा की तार्किक समझ एवं परिवेश के प्रति सज्जता, दोनों का समावेश है ।

परिवेश के प्रति सज्जाता व्यक्ति के बुद्धि मन्थन का परिणाम है। उसने अपनी बौद्धिक क्षमता द्वारा सामाजिक एवं प्राकृतिक विषयों पर गम्भीरता से सोचा; बौर समाज शास्त्र, राजनीतिशास्त्र, अर्थशास्त्र, मनोविज्ञान, भौतिक विज्ञान, रसायन विज्ञान, प्राणि विज्ञान, सगोलशास्त्र, भूगर्भ शास्त्र जैसे विषयों को सङ्ग किया। इन विषयों के अन्तर्गत उसने बनेक अनुसंधान किये। परिणामस्वरूप उसने पाया कि समाज में पेली देर सारी मान्यताएँ, नेतिकताएँ विवश्वास—स्रोस्ते, अतार्किक, अवैज्ञानिक एवं अनुपयोगी हैं। धर्म, ईश्वर एवं परम्परा के नाम पर पूरे तन्त्र में शोषण पेला हुआ है। यहाँ देवी कुछ नहीं है; सब कुछ भौतिक है। व्यक्ति की सुध-सम्पन्नता, उसके पूर्व जन्म का कल नहीं है। वह अपनी श्रीक्त द्वारा उसे प्राप्त कर सकता है। कहने का तात्पर्य

'आधुनिक बोध' हमें रिश्वित की यथार्थता एवं उसकी वास्तिकिता का ज्ञान कराता है, उसके प्रित हमें सजग करता है। जब हम किसी वस्तु, मान्यता, मून्य एवं परम्परा की यथार्थता के बारे में अन्त में यह समझ जाते हैं, िक वह व्यर्थ निरर्थक एवं असत्य है, तो हम उसके प्रभाव में नहीं जाते, उसे अस्वीकार करने लगते हैं, उसकी खिलाफत या विद्रीह करने लगते हैं। समझ, सजगता एवं ज्ञान से ही विद्रोह का भाव पूटता है। "आधुनिक संवेदना एक प्रकार की अग्रगामिता है जो आधुनिक संवेदना से सम्पन्न व्यक्ति या व्यक्ति समूह में यथा स्थिति का विरोध करने के लिए, उसे बदलने के लिए उकसाती है।" 'आधुनिक बोध' यानी परिवेश के प्रति सजगता से मुक्त व्यक्ति, किसी काल विशेष में ही नहीं होते। ऐसे व्यक्ति हर काल में मिलते हैं। इसी लिए विद्रोह हर समय कलता रहता है। इतिहास की दृष्टि से कबीर मध्यकालीन थे, लेकिन उनमें परिवेश के प्रति सजगता थी। यही कारण है, िक उन्होंने अध मान्यताओं के प्रति विद्रोह किया है।

इस विश्लेषण से स्पष्ट होता है, कि आधुनिक बोध के उन्तर्गत तार्किता, वैज्ञानिक चिन्तन, स्वाधिकार बोध, मानवतावादी दृष्टि, न्यायबोध एवं साहस को रखा जा सकता है। इन सब को हम वैचारिक प्रगतिशीलता , आधुनिक बोध या 'वर्तमान बोध कह सकते हैं। इसी कसौटी पर हम परिवेश के परिप्रेक्ष्य में व्यवस्थाओं पारस्परिक मूल्यों तथा मान्यताओं को कसते हैं और उनके अनौचित्य को अस्वीकार करते हैं। 'तार्किक एवं वैज्ञानिक चिन्तन ' विद्रोह के लिए बहुत ही आवश्यक है। इसके माध्यम से ही व्यक्ति किसी विचारधारा की उपयोगिता, अनुपर्योगिता और वर्तमान

<sup>।-</sup> बाधनिक बोध और विद्रोह - पू० 12, डाँ० हरदयाल

स्थिति में उसकी आवश्यकता पर विचार करता है। उसके अनुकूल न होने पर, उसे वह अस्वीकार करता है और उसके स्थान पर आज की स्थिति में जरूरी विचारों को स्थापित करता है।

'स्वाधिकार बोध' द्वारा व्यक्ति यह समझता है, कि अमुक वस्तु पर मेरा भी या मेरा ही अधिकार है। एक विशेष वर्ग मुझे मेरे अधिकार से वीचित करके मेरा शोषण कर रहा है। एक विशेष परम्परा हमारी स्वच्छन्दता में बाधक बन रही है। अपने स्वच्छन्द विकास एवं अधिकार के लिए हमें ऐसी परम्परा एवं व्यवस्था को उखाड़ फेक्ना चाहिए। स्वाधिकार बोध एवं तार्किक-वैज्ञानिक चिन्तन के अभाव में तो व्यक्ति शोषण एवं अपनी दुर्गीत को अपना भाग्य समझ कर जीवन बिताता रहता है।

'साहस' का वर्ध है 'हिम्मत', विसंगति के विरुद्ध आवाज उठानें, उसके खिलाफ अपने को खड़ा कर देने का उत्साह । बिना साहस के किसी भी स्थिति में विद्रोह सम्भव नहीं है । साहसहीनता, कायरता की स्थिति होती है । कायर व्यक्ति सारे अत्याचार को सह लेता है, लेकिन वह उसकी खिलाफत नहीं कर पाता है । तार्किक-वैज्ञानिक चिन्तन एवं स्वाधिकार बोध के द्वारा व्यक्ति व्यवस्था की सारी खामियों एवं उसमें समाहित अनेतिकताओं को भली-भाति समझ सकता है और उसके मन में आड़ोश, ड्रोध असन्तोष का भाव भी आ सकता है । लेकिन बिना साहस के वह अपने इन भावों को सार्वजनिक करते हुए व्यवस्था के विरोध में अपने को स्थापित नहीं कर सकता है ।

कभी-कभी ऐसे लोग भी व्यवस्था की विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह कर देते हैं, जो स्वयं उनसे पीड़ित नहीं रहते, लेकिन उनकी तार्किक वैज्ञानिक सोच, न्यायमूल बुद्धि मानवतावादी दृष्टि पीड़ितों-शोषितों के प्रति उनके मन को संविदित कर देती है । उनका मन बसन्तों के एवं अनुवेश से भर जाता है . और वे शोषकों एवं उनकी नीतियों,

अमानवीय एवं अन्यायमूलक-परम्पराखों, मान्यताओं तथा व्यवस्थाओं के विरुद्ध विद्वीह के लिए तत्पर हो जाते हैं। लेकिन यहाँ भी विद्वीह के लिए साहस की आवश्यकता होती है। शोषितों एवं पीड़ितों के प्रति तो बहुत लोग स्विद्धित होते हैं और उनका मन आकृशि, रोष, कृथि से भर भी जाता है। लेकिन सभी लोग उनके पक्ष में खड़े होकर उनके हित में व्यवस्था के विरुद्ध विद्वीह का ऐलान नहीं कर पाते। ऐसा वे ही कर पाते हैं जिनमें साहस रहता है।

हम किसी भी साहित्य में देखें,तो पायेंगे कि उसमें विद्रोह का जो स्वर है वह आधिनक बोध से निकला है। उदाहरण के लिए हम हिन्दी साहित्य पर दिष्टिपात करें तो पायेंगे कि आदि कालीन सिढ़ों-नाथों एवं भिक्त कालीन कबीर तथा अन्य भक्त कवियों द्वारा जाति-पाति. ख्वा-छ्त, बाडम्बर, अंधविश्वास तथा मुल्ला एवं पण्डितौं के छद्रम आचरण के पृति किया, 'नग्रया विद्रोह उनके 'आधुनिक बोध' का ही परिणाम है। अधिनक काल में भारतेन्द्र युगीन तथा दिवेदी युगीन कवियों ने ब्रिटिश सत्ता के अन्याय एवं अत्याचार. उसके द्वारा किये जा रहे अधिक शोषण तथा भारतीय समाज में व्याप्त जॅव - नीव. ख्वा छत. नारी शोषग, बाल विवाह आदि कुप्थाओं के प्रति जो विद्रोही स्स अस्तियार किया है: छायावादी कवियों ने व्यक्ति स्वातन्त्रय में बाधक सामाजिक मृत्यों, एवं साम्राज्यवाद तथा पूँजीवाद के विरुद्ध विद्रोह का जो भाव व्यक्त किया है! प्रगतिवाद ने प्रजीवादी शोषण या किसी शीतरहके शोषण के खिलाफ जो खावाज उठाई है : पयोगवादी कवियों ने यौन स्वन्छन्दता के प्रति अपना समर्थन व्यक्त करके यौन सम्बन्धीं के इर्द-गिर्द लिपटी पारम्परिक नैतिक मान्यतालों का जो सम्डन किया है : साठोत्तरी कविता में स्वातन्त्रयोत्तर शासन व्यवस्था में पनपे अन्याय, भ्रष्टावार, आदि का जो खलासा किया गया है - इन सबके मूल में आधुनिक बोध या वैवारिक प्रगतिशीलता ही है

### बाह्य कारण :-

विद्रोह के बाह्यकारणों को हम सामान्यत: तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं - \$1\$ राजनैतिक, \$2\$ बार्थिक, \$3\$ सामाजिक - सांस्कृतिक । किसी भी देश का जान्तरिक स्वरूप राजनैतिक, अधिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक व्यवस्थाओं से निर्मित होता है और वहाँ की जनता का जीवन इन्हीं तीन व्यवस्थाओं के जन्दर व्यवस्थित एवं सुखमय रह सकता है । लेकिन जब इनमें अव्यवस्था उत्पन्न होती है और अनैतिकता जाने लगती है, व्यवस्था के नियम समय एवं परिस्थिति के अनुसार अपनी उपयोगिता नहीं सिद्ध कर पाते हैं; उसमें जड़ता एवं गतिहीनता जा जाती है; व्यक्ति का स्वच्छन्द विकास वाछित होने लगता है तो लोगों में व्यवस्था के प्रति असन्तोष एवं बाढ़ोश का भाव पनपता है और वे विद्रोह के लिए तत्यर हो उठते हैं ।

## । - राजनैतिक कारण :-

किसी भी काल में देश के जनजीवन को वहाँ की राजनीति ने काफी पुभावित किया है। देश का सर्वांगिण विकास वहाँ की राजनीति की सत्यनिष्ठता एवं उसके जनवादी विन्तन पर ही अधारित होता है। इतिहास में देखा जा सकता है कि जब शासक वर्ग उदार, न्यायिप्रय एवं जनक न्याण की भावना से युक्त रहा है तब देश हर तरह से संरक्षित एवं समृद्ध हुआ है और वहाँ की जनता एवं बुद्धिजीवियों का उसे भरपूर समर्थन भी मिला है। लेकिन जब जनता सत्ता के श्रष्टाचार एवं बत्याचार के कुच्छ में पिसी है तब उसमें बतन्तीप उत्यन्न हुआ है और कभी-कभी वसन्तीप समस्त्र विद्रोह की रिश्नित में भी पहुंचा है। साहित्यकारों एवं विचारकों ने भी राजनीति या सत्ता के विकट अपना वैचारिक विद्रोह अपनी रक्ताओं में व्यक्त किया है। हिन्दी के भरतेन्द्र युगीन, दिवेदी युगीन, छायावादी रक्ताओं में सत्ता के बत्याचार के कारण

विद्रोह का एक तीसा स्वर उभरा है।

## 2- आर्थिक कारण :-

जहाँ तक विद्रोह के आर्थिक कारणों का प्रश्न है तो हमें यह समझ लेना चाहिए कि इस भौतिक जगत में अर्थ की अपनी अहम भूमिका है। जीवन के हर पहलू, हर संबंध अर्थ पर ही आधारित है। भीजन, वस्त्र, मकान, चिकित्सा, शिक्षा - जैसी मूलभूत आवश्यकतार्ये विना अर्थ के नहीं सध सकतीं। समाज में विद्यमान वर्ग-मेद भी आर्थिक सम्बन्धीं पर आधारित है। जिन व्यक्तियों के पास अर्थ की प्रचरता है वे विलासिता के साथ जीवन यापन करते हैं। समाज के इसी वर्ग का उत्पादन एवं वितरण की सारी पुणालियौं पर अधिकार होता है। यह समाज का शोषकवर्ग होता है। जो लोग जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं को या तो पूरा नहीं कर पाते या बड़ी मुश्किल से पूरा कर पाते हैं, वे समाज के शोषित वर्ग के लोग होते हैं। शोषक वर्ग शोषित वर्ग का निरन्तर शीषण करता है। वह उसे उठने नहीं देना चाहता, क्योंकि ऐसा करने में ही उसका हित रहता है। जब शोषित वर्ग की स्थिति बदतर हो जाती है. असहनीय हो जाती है तो वह शोषक वर्ग एवं उसका हित साधने वाली अर्थ व्यवस्था के विरूद विद्रोह करने के लिए विवश हो जाता है, क्योंकि अपना अस्तित्व बनाने के लिए विद्रोह ही उसके पास एक साधन होता है। पूरा प्रगतिवादी, प्रगतिशील या मार्क्तवादी साहित्य शोकों एवं शोक वर्ध व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह की देतना से युक्त है। वार्थिक कारणों से पेरित विद्रोह जीवन की मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए होता है विलासिता के साधनों को जुटाने के लिए नहीं।

# 3- सामाजिक संक्रेस्कृतिक कारण :-

मनुष्य एक सामाजिक प्राणी है, वह जिस समाज में रहता है उसकी अपनी एक

व्यवस्था होती है, उसके कुछ नियम होते हैं और उसकी कुछ सांस्कृतिक मान्यताएँ. परम्परायें एवं नैतिक मूल्य होते हैं। इन्हें अनुपयोगी तो नहीं कहा जा सकता, लेकिन इतना जरूर कहा जा सकता है कि इनकी उपयोगिता सार्वकालिक नहीं होती है। उनमें समयानुसार तार्किक एवं वैज्ञानिक दंग से परिवर्तन होते रहना वाहिए । यदि ऐसा नहीं होता तो उसमें सड़ांव उत्पन्न हो जाती है और वे रुद्धि का रूप ने नेते हैं। समाज में गीतहीनता आ जाती है, जिससे व्यक्ति का व्यक्तित्व दब जाता है, उसका विकास बाधित हो जाता है । वह समय के साथ कदम मिलाकर नहीं कर पाता । ऐसी रिथित में यह जरुरी हो जाता है कि विकास में बाधक तथा यग की दुष्टि से अतार्किक एवं अवैज्ञानिक मान्यताओं को अस्वीकार किया जाय. उनके विरुद्ध आवाज उठाई जाय और उनमें संशोधन करके या उन्हें समाप्त करके युगसंगत मृत्य की स्थापना की जाय ! 19 वीं शताब्दी के सांस्कृतिक जागरण में यही सब हुआ है। पुनर्जागरण से प्रभावित भारतेन्द्र यगीन दिवेदी युगीन एवं छायावादी कविताओं में निहित विद्वोह का स्वर समाज एवं धर्म में व्याप्त ज़ब्ता एवं रुद्धि के भी विरुद्ध है। इस काल के कवियों ने जाति-व्यवस्था लुवा-लुत, विवाह-सम्बन्ध, नारी-शोष्ण एवं ईश्वर सम्बन्धी पारम्परिक अंध धारणावीं पर तीक्षा पहार किया है। सिद्धी, नाथीं तथा क्बीर जैसे सन्त कवियों का विद्रोह सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों का ही परिणाम है।

# विद्रोह के प्रकार :-

विद्रोह को हम - क्रिया विदिष्ठ, व्यायकता एवं क्षेत्र - इन तीन वाधारों पर वर्गीकृत कर सकते हैं

## 

क्रियाविधि से तात्पर्य कार्यप्रणाली यानी कार्य करने के ढंग से है । विद्रोह का क्रियात्मक रूप दो तरह का है - ।। । वैवारिक, । । । अब किसी व्यवस्था की विसंगतियों एवं उनैतिकताओं के प्रति अस्वीकारका भाव व्यक्त किया जाता है, उसे समाप्त करके नयी व्यवस्था स्थापित करने की बात कही जाती है, उस व्यवस्था के अप्रास्तिक होने, अनुपयोगी होने तथा अवैज्ञानिक होने का तर्क दिया जाता है तो उसे वैवारिक विद्रोह कहते हैं । साहित्य का सम्बन्ध वैवारिक विद्रोह से ही है । यह विद्रोह परिवर्तन या बदलाव का मूल है । बिना इसके कहीं किसी प्रकार की नवीनता नहीं वा सकती, क्योंकि विवार से ही सब कुछ होता है । विवार के बिना कार्य सम्भव नहीं है । वैवारिक विद्रोह व्यक्ति की कार्य की दिशा में प्रेरितकरता है ।

जब व्यवस्था की विसंगति को समाप्त करने के लिए एवं उसके पोषकों को नष्ट करने के लिए मारपीट तोड़ फोड़ एवं आक्रामक स्ख विस्तियार किया जाता है तो उसे सशस्त्र विद्रोह कहते हैं। सशस्त्र विद्रोह के मूलभेवैचारिक विद्रोह ही होता है। आज तक जितने भी सशस्त्र विद्रोह हुए हैं, वे सब वैचारिक विद्रोह से ही प्रेरित रहे हैं। सच्चाई यह है कि बिना वैचारिक विद्रोह के सशस्त्र विद्रोह सम्भव नहीं है।

# १स व्यक्ति के आधार पर :-

विद्रोह की व्याप्ति या विद्रोह करने वालों के परिमाण को ध्यान में रखकर विद्रोह को हम - वैयन्ति एवं सामूहिक - दो रूपों में विभवत कर सकते हैं। जब व्यक्ति वैयन्तिक स्तर पर व्यवस्था की विसंगतियों, पारम्परिक स्द्र मान्यतावों आदि को उसाइ केता है, तो उसे वैयन्तिक विद्रोह कहते हैं। यदि वैयन्तिक विद्रोह स्वार्थ प्रेरित है, बाल

सामान्य के हित में बाधक है, तो उसका कोई मूल्य नहीं है। वह विद्रोह नहीं अराजकता है। लेकिन यदि विद्रोह वैयिक्तक होते हुए भी जनसामान्य के हित में बाधक नहीं, बिल्क प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप में उसका संरक्षक है, तो वह मूल्यवान है। वैयिक्तक विद्रोह धीरे-धीरे सामूहिक विद्रोह का भी रूप ले सकता है। छायावादी काव्य में प्राय: वैयिक्तक विद्रोह के स्वर निहित हैं।

जब व्यक्तियों का समूह किसी व्यवस्था, किसी मान्यता तथा किसी परम्परा को अस्वीकार करता है और उसे नष्ट करके उसके स्थान पर किसी दूसरी मान्यता या व्यवस्था को स्थापित करने का प्रयास करता है,तो वह सामूहिक विद्रोह कहलाता है। भारतेन्दु युगीन, द्विवेदी युगीन तथा प्रमतिवादी कविता में सामूहिक विद्रोह का ही स्वर है।

# १ूग१ विषय या क्षेत्र के आधार पर :-

मनुष्य का जीवन-राजनीतिक, वार्थिक एवं सामाजिक साँस्कृतिक - इन तीन अवस्थाओं से घिरा हुवा है। उसके जीवन के ये ही तीन क्षेत्र या विषय है। वह इन्हीं क्षेत्रों में कार्य करता हुवा, इन्हीं का अध्ययन करता हुवा तथा इन्हीं में अपने सुख की तलाश करता हुवा अपना जीवन व्यतीत करता है। जीवन की विकास यात्रा के दौरान उसे जिस व्यवस्था का जो पहलू अनुपयुक्त एवं विकास में बाधक प्रतीत होता है, उसको वह अस्वीकार करता है, उसका विरोध एवं खण्डन करता है और नये मूल्यों तथा विवारों को स्थापित करने का प्रयास करता है। इस तरह विषय या क्षेत्र के वाधार पर विद्रोह को कृष्ट राजनीतिक कृष्ट वार्थिक कृष्ट सामाजिक संस्कृतिक - इन तीन वर्गी में विश्वत कर सकते हैं।

राजनीतिक व्यवस्था, राजनीतिक संस्था, राजनीतिक मान्यता, शासन द्वारा किये जा रहे शोषण तथा शासन में व्याप्त अन्दावार या जैनितकता बादि के विरुद्ध बावाज उठाना, उसका पर्दाणाश करना राजनीतिक विद्रोह है। राजनीतिक विद्रोह राजनीतिक कारणों से ही होता है। यदि हिन्दी साहित्य पर दृष्टि डाली जाय, तो उसमें राजनीतिक विद्रोह सर्वप्रथम भारतेन्द्र युग में दिखायी पड़ता है। उसके बाद तो 'राजनीतिक विद्रोह' विद्रोह का पर्याय बन गया है। किसी भी काल की रचना में । भारतेन्द्र युग के बाद की । राजनीतिक विद्रोह के स्वर उभरे हैं।

वार्थिक विषमता, वार्थिक शोषण, महनाई, गरीबी, बेरोजगारी एवं वर्थ - व्यवस्था के जनविरोधी चरित्र के विरुद्ध किया गया विद्रोह 'वार्थिक विद्रोह 'कहलाता है। 'वार्थिक विद्रोह 'वार्थिक कारणों से होता है। यदि सूक्ष्मता से विचार किया जाय तो स्पष्ट होगा कि वार्थिक विद्रोह भी प्राय: राजनीति या सत्ता के प्रति विद्रोह है। यह वार्थिक कारणों से किया गया राजनीतिक विद्रोह है। पूरी 'वर्थ व्यवस्था' राजनीति से ही नियन्त्रित होती है। जनजीवन की वार्थिक विसंगतियों के लिए शासन ही जिम्मेदार होता है। उसकी नीति की वसफलतायें ही उसे उत्पन्न करती हैं। हिन्दी साहित्य में वार्थिक विद्रोह के स्वर भी सर्वप्रथम भारतेन्द्र युग में ही सुनायी पड़ते हैं। ब्रिटिश सत्ता द्वारा किये जा रहे वार्थिक शोषण के विरुद्ध हस युग के किवयों ने जो स्वर उठाया है वह बार्थिक विद्रोह का ही स्वर है। भारतेन्द्र युग के बाद भी किवयों ने वपनी किवतावाँ में बार्थिक विद्रोह का ही स्वर विद्रोह का स्वर उठाया है।

जो विद्रोह सामाजिक सांस्कृतिक रुदियों, अन्ध मान्यताओं एवं मूल्यों के प्रति किया जाता है, उसे सामाजिक सांस्कृतिक विद्रोह कहते हैं। समय-समय पर जाति-प्रथा, छुआ-छूत एवं उँच-नीच की मान्यता, योन-सम्बन्ध, विवाह-सम्बन्ध, नारी-शोषण, बाल-विवाह, सती-प्रथा, धार्मिक-आडम्बर, अंध-विश्वास; धर्माचार्यों द्वारा किये जाने वाले शोषण आदि के विरुद्ध जो स्वर उठाये गये हैं वे सामाजिक सांस्कृतिक विद्रोह ही हैं। हिन्दी कविता की शुस्त्रात ही इसी विद्रोह से हुई है। हिन्दी के आदि कवि सरहपा'की कविता में जाति व्यवस्था एवं धार्मिक आडम्बर के विरुद्ध तीखा स्वर विद्यमान है। कबीर ने तो आडम्बर पूर्ण सामाजिक एवं धार्मिक मान्यताओं की जमकर खिलापत की है। भारतेन्द्र युगीन तथा परवर्ती कविताओं में भी धर्म एवं समाज की अंध मान्यताओं पर तीखा प्रहार हुआ है।

समझने की सुविधा के लिए विद्रोह का वर्गीकरण भले कर लिया जाय, लेकिन वास्तिविकता यह है कि विद्रोह के वर्गमेंद एक दूसरे से अलग नहीं हैं, वे परस्पर मिले हुए हैं। वैवारिक विद्रोह वैयिक्तक एवं सामूहिक दोनों तरह के होते हैं। ठीक इसी तरह स्थास्त्र विद्रोह भी सामूहिक एवं वैयिक्तक हो सकता है। राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विद्रोह भी "वैयिक्तक वैवारिक, "सामूहिक वैवारिक" तथा "वैयिक्तक सशस्त्र", "सामूहिक सशस्त्र' हो सकते हैं।

# विद्रोह की सार्थकता:-

कोई 'विद्रोह' बन्तिम विद्रोह नहीं होता। वह निरन्तर करने वाली प्रक्रिया है। ऐसा नहीं हो सकता कि विद्रोह किसी समाज से पूर्णत: समाप्त हो जाय, क्योंकि कितनी भी जनहितकारी व्यवस्था क्यों न बन जाय, लेकिन वह पूर्ण नहीं हो सकती है। एक समय के बाद उसके कुछ तत्त्व बनुषयोगी होने लमते हैं, उसमें बृटियाँ उत्पन्न होने लगती हैं. भृष्टाचार पनपने लगता है और विकृतियाँ आने लगती हैं। पलत: व्यक्ति का व्यक्तित्व दबने लगता है. व्यवस्था व्यक्ति के विकास में बाधक होने लगती है। व्यवस्था की सार्थकता व्यक्ति के विकास में सहयोगी होने में निहित है। यदि वह उसके विकास के सहायक न होकर बाधक हो जाती है, तो उसमें संगोधन या परिवर्तन जरुरी हो जाता है। लेकिन किसी चिराचरित व्यवस्था मैं यह कार्य कर पाना बासान नहीं होता । ऐसा करने के लिए विद्रोह करना पड़ता है । लेकिन पुश्न उठता है कि क्या विद्रोह के निरन्तर क्लने वाली प्रक्रिया होने, किसी व्यवस्था के पूर्ण न होने और उसके व्यक्ति के विकास में बाधक होने के आधार पर किसी स्थापित व्यवस्था के प्रति किये गये विद्रोह को तार्किक एवं सार्थक माना जा सकता है १ यदि विद्रोह स्वार्थपूर्ति के लिए किया गया है, व्यवस्था को आत्मलाभ के लिए नकारा गया है, तो वह तार्किक नहीं हो सकता है। विद्रोह की तार्किकता एवं सार्थकता उसके बहुजनहिताय या लोकमंगलकारी होने में ही निहित है। यदि तात्कालिक रूप में अपने हित के लिए किये गये विद्रोह से जनसामान्य को न्याय मिलता है, तो बहुजन हिताय या 'लोकमंगल' का भाव उसमें प्रच्छन्न माना जा सकता है। "विद्रोह का रूप व्यवस्था बनाम जनता के हित को ध्यान में रख कर तय किया जाना चाहिए । सभी प्रकार की व्यवस्थाओं, मर्यादाओं, अनुशासनों और अंकुशों का अन्य विरोध व्यक्तिवादी विद्रोह कहलायेगा ।---- व्यवस्था मात्रअपने अस्तित्व के लिए व्यक्ति को किसी-न-किसी और तक दबाती है, उसे पूर्ण स्वतन्त्रता नहीं देती । व्यवस्था की यह प्रकृति ही है, क्योंकि व्यक्तियों को दी गई मनमानी की कूट की दशा में कोई व्यवस्था नहीं बन सकती।" मनमानी

<sup>। -</sup> समकालीन कविता की भूमिका - पृ० 41, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ।

स्वतंत्रता नहीं उच्छूंबलता है। व्यवस्था में किसी के लिए स्वतन्त्रता इतनी ही होनी वाहिए कि उसका स्वच्छन्द विकास तो हो, लेकिन उसकी स्वतन्त्रता है। दूसरे का विकास बाधित न हो। मनमानी छूट पाने के लिए किसी व्यवस्था के विस्द किया गया विद्रोह न तार्किक है न सार्थक। किसी व्यवस्था के प्रति पूर्वागृह से ग्रस्त होकर उसमें किमया ही देखते रहना उचित नहीं है। "अवरोध और संकटों के विस्द संवर्ष आवश्यक है, किन्तु इसके लिए केवल किमयों को देखकर, दूसरे धूव पर जाकर पूर्ण निषेध की पूकार विद्रोह में संयम के अभाव की द्रोतक है।"

लोक मंगल के बजाय जात्म मंगल पर आधारित विद्रोह जराजकता या व्यवस्था हीनता की स्थिति उत्पन्न करता है। लेकिन व्यवस्था हीन समाज या व्यवित की कत्यना असम्भव है। यह जराजकता लूट-स्रसोट, अपहरण, जत्याचार और मृत्यहीनता की स्थिति होगी। जत: प्रत्येक स्थापित व्यवस्था का विरोध सिर्फ इस रूप में जायज मानाजसकता है कि यदि वह जनविरोधी है तो उसका सम्पूर्ण विरोध ही विद्रोह है। और यदि व्यवस्था जनवादी है तो उसका सम्पूर्ण विरोध न केवल असंगत होगा सित्क बहुजन घातक होगा और जनहित के विरुद्ध यदि विद्रोह कता है तो वह द्रोह है, विद्रोह नहीं। विद्रोह की जराजकतावादी व्यास्था उसे मृत्यहीनता की कगार पर सड़ी कर देती है और उसकी सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह लगा देती है। अत: जरूरी है कि विद्रोह को जराजकतावादी सोच से मृक्त रसा जाय और उसे जनसामान्य के हित से जोड़ कर देखा जाय। "विद्रोह एक मृत्य के

 <sup>1-</sup> समकालीन सिद्धान्त और साहित्य - पृ० २४, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ।
 2- समकालीन किस्ता की भूमिका - पृ० ४१, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय

हम में और एक कारगर हथियार के हम में तभी इस्तेमाल हो सकता है अगर इसे जीवन की यथार्थ स्थितियों की संगति में रख कर प्रयुक्त किया जाये। " अराजकता-वादी सोच पर आधारित विद्रोह के मूल में कोई ठौस तार्किक विचार नहीं होता है, उत्तः उससे सामाजिक हित की आशा नहीं की जा सकती। "विद्रोह जब वैचारिक स्तर पर टिका हुआ होगा तभी उससे कोईकारगर सामाजिक भूमिका सब पायेगी। "2

इस विश्लेषण के बाद हम संक्षेप में कह सकेते हैं कि वही विद्रोह सार्थक, तार्किक एवं औ चित्यपूर्ण है, जो जनसामान्य के हित की भावना से प्रेरित है। यदि वह स्वार्थ से प्रेरित है, तो समाज के लिए या जनसामान्य के लिए घातक है। उत: वह सार्थक एवं उपयोगी नहीं है।

# साहित्य में विद्रोह की अभिव्यक्ति का स्वरूप :-

साहित्य में व्यक्त विद्रोह एक वैवारिक तिद्रोह होता है। व्यवस्था के विस्त अपने विद्रोही विवारों की अभिव्यक्ति साहित्यकार कई रूपों में करता है। उसके विद्रोही स्वर कभी 'यथार्थ चित्र' के रूप में व्यक्त होते हैं, तो कभी 'अस्वीकार' के रूप में, कभी 'विध्वंस' के रूप में पुकट होते हैं, तो कभी 'नविनर्माण' एवं 'व्यंग्य' के रूप में। कहने का तात्पर्य यह है कि साहित्यकार स्थिति, परिस्थिति, आवश्यकता एवं अपनी मन: स्थिति के अनुसार अपने विद्रोही विवारों को भिन्न -

<sup>। -</sup> विद्रोह और साहित्य - पृथ । ८, सै० देवेन्द्र इस्सर ।

<sup>2-</sup> समकालीन कविता का परिप्रेक्ष्य - पृ० 67, मदन मुलाटी ।

किसी व्यवस्था की दिसंगति, उसमें व्याप्त भ्रष्टाचार, वनैतिकता, शीका अन्याय, एवं अमानवीयता का यथार्थ चित्र प्रस्तुत करके उसके छद्म रूप को बेनकाब कर देना उस व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह करना ही है। जब साहित्यकार व्यवस्था-जन्य शीका से उब जाता है तो वह उसके यथार्थ को अपनी रचना में प्रस्तुत करते हुए अपने को उसके विरुद्ध एक प्रकार से खड़ा करता है। अपने यथार्थ चित्रणके माध्यम से वह व्यवस्था के जाततायी चरित्र के विरुद्ध जनता में एक तार्किक एवं ठोस समझ पैदा करता है तथा उसके मन में पनपे व्यवस्था विरोधी विचारों को दृद्ध करके उसे व्यवस्था के विरुद्ध हो जाने के लिए प्रेरित करता है। साहित्यकार का यथार्थबोध, युगबोध जितना व्यापक होगा और उसकी यथार्थ दृष्टि जितनी पैनी होगी, उसका यथार्थ चित्रण के रूप में व्यवस्था विद्रोह उतना ही विश्वद एवं प्रभावकारी होगा। निम्न कविता में 'यथार्थ केवित्रण' के माध्यम से विद्रोह की बड़ी सशकत अभिव्यक्ति हुई है:

"अासिर क्या दिया है तुमने
बाजादी के नाम पर
लूप और लाटरी
जाता को बूट से कुक्तती पुलिस और अष्ट अपसर
भूस आगजनी
रिश्वत, हत्या, लूट, मिरहकटी

काले कानून, बूठी खदालतें, बहुरूपिया शासन

वभाव विवयता और मुनामी

तुमने हर बादमी की जानवर और हर औरत की वेशया बना दिया है।"

<sup>।-</sup> सुबह होने से पहले - पृ० ८४, सट्यसाची ।

"जब बाप मरा तब यह पाया
भूवे किसान के बेटे ने
घर का मलबा, टूटी खटिया
कुछ हाथ भूमि - वह भी परती
वमरौधे जूता का तल्ला
छोटी, टूटी बुदिया बोगी
दरगी गोरसी
बहता हुका

उक्त दो किवताओं में से पहली किवता में राजनीति का यथार्थ कित्र प्रस्तुत है और दूसरी में एक कृष्क की आर्थिक बदहाली का। ये दोनों कित्र बड़े ही प्रभावकारी एवं किव के व्यवस्था के विरुद्ध रूस को व्यक्त करने वाले हैं और पाठक को भी विसंगतियों का साक्षातकार कराने में समर्थ है।

'अस्वीकारात्मक' स्प में प्रकट विद्रोह में व्यवस्था को सीधे-सीधे न मानने का विचार निहित रहता है। किव या लेख उसकी अनुपयोगिता, अन्याध्मिकता, एवं अमानवीयता को सिद्ध करने के लिए तार्किक एवं भावात्मक विचार प्रस्तुत करते हुए उसके निषेध के लिए स्वयं तत्पर रहता है और अन्य लोगों को भी उत्प्रेरित करता है। व्यवस्था को अस्वीकार करने के पक्ष में उसके विचार जितने तार्किक एवं भावात्मक होंमें, वह उतने ही प्रभावकारी एवं स्थाबत ढंग से विद्रोह व्यक्त करने में समर्थ होगा।

<sup>।-</sup> कून नहीं रंग बोलते हैं - पृ० 42 शीर्फ, पेतृक सम्पत्ति - केदारनाथ अग्रवाल ।

टाँग दो सूनी पे मुझको खाल मेरी खींच लो, दम निकलते तक सुनो हुँकार वन्देमातरम् । देश से हमको निकालो भेज दो यमलोक को, जीत ले संसार को गुंजार बन्देमातरम ।

हरिराम पुजारी की उक्त कविता में व्यक्त विद्रोह अस्वीकार के रूप में हैं। वे ब्रिटिश व्यवस्था को किसी भी तरह स्वीकार करना नहीं वाहते। हर परिस्थिति एवं संघर्ष का सामना करके वे बन्देमातरम् का उद्भवीष करने के लिए तत्पर हैं।

'विध्वंसात्मक' स्प में प्रस्तुत विद्रोही स्वर में व्यवस्था के विस्द एक ललकार रहती है, उसे नष्ट कर देने की बेतना रहती है और उसके विस्द सीधी कार्यवाही का भाव रहता है। कवि या लेखक व्यवस्था को छिन्न-भिन्न कर देना वाहता है। उसमें गुरिल्ला बेतना बड़ी प्रबल रहती है। यथा -

भंजूर वा । किसान वा । वतन के नौजवान वा

सुबह की होशानी से, जिसने तुमको काट रखा है
दिलों की बिस्तियों को साजियों में बाट रखा है
सड़क पर सींच ला कि उसको सबक सिसा दे तू
शहीद बन के इन्क्लाब का दिया दिसा दे तू। 12

<sup>। -</sup> स्वतन्त्रता की इंकार - प्रथम भाग - हरिराम पुजारी, पृ० 12 2- अवकाश 4. पृ० 71 - श्रीराम शनभ ।

श्रीराम शलग की उक्त किवता में पूँजीवादी व्यवस्था के विरुद्ध किसानों मजदूरों को लामबन्द करने की कोशिश है। इस लामबन्दी का उद्देश्य पूँजीवादी व्यवस्था को विध्वंस करना है। शोषण में लिप्त पूँजीवादी ताकतों को श्रीराम शलग सड़क पर खींच लाने के लिए कृषकों को प्रेरित करते हैं, क्योंकि बिना उनकों ध्वस्त किये किसान मजदूरों की 'सुबह की रोशनी ' न तो वापस हो सकती है और न दिलों की बस्तियां आबाद हो सकती हैं। कारण यह है कि पूँजीवादी ताकतों ने ही उन्हें सुबह की रोशनी से काट रखा है और उनके दिलों को साजिशों में बाँट रखा है। जबतक रोशनी से काटने एवं दिलों को बादने की प्रक्रिया में पूँजीवादी ताकतें सफल रहेगी तब तक शोषण से विमृत्तित सम्भव नहीं है। 'रोशनी से काटना' एवं दिलों को बादना' ही शोषण का नुखा है।

'नविनर्मण' विद्रोह की तार्किक परिणति है। नविनर्मण के लिए स्वर्ध तत्पर रहना और लोगों को उसके लिए प्रेरित करना विद्रोह का सूक्क है क्योंकि किसी व्यवस्था के अन्तर्गत कोई नविनर्मण किसी पुरानिर्माण के विरुद्ध ही होता है। व्यवस्था को बिना अस्वीकार किये, उसका बिना विध्वंस किये, नविनिर्मित सम्भव नहीं होती है। किव या लेखक जब नव निर्माण की बात करता है, उससे सम्बन्धित विचार व्यक्त करता है, तो उसके चिन्तन के मूल में विद्रोह का ही भाव रहता है। यह दूसरी बात है कि प्रत्यक्ष रूप से उसमें विद्रोह की इलक न दिखायी पड़े।

"किर उठी किर कृतिन्त की ज्वाला जलावी, छोड़ यह क्य'दान' और विधान का तुम राष्ट्र का इतिहास किर उज्जल बनावी स्वत्व का संवर्ष का ब्लैनंदान का तुम।" - गीत - महेन्द्र विशाल भारत मार्च 1944, पृठ 189 उक्त किवता में विद्रोह का भाव है लेकिन वह नविनर्मण की प्रेरणा के रूप में व्यक्त हुआ है। लेकिन इसमें ध्वंश का भाव भी छिपा हुआ है। क्रान्ति की ज्वाला जलाने की बात ध्वंस को ही सूचित करती है। जहाँ नविनर्मण की बात की जाती है वहाँ ध्वंस का भाव प्राय: छिपा रहता है।

'व्यंग्य' विद्रोही विचार में की अभिव्यक्ति का सफल एवं स्मावत ढंग है। इसमें विद्रोही विचार सीधे प्रकट न होकर वक्रता या भीगमा के साथ प्रकट होते हैं। कथन की भीगमा या वक्रता विद्रोही विचारों को और तीसा बना देती है। कवि या लेखक अपना सारा आकृशि, विरोध, अस्वीकार या विध्वंश का भाव बड़े चूटीले ढंग से व्यक्त कर देता है। व्यंग्य - सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक, राजनीतिक विसंगति या किसी व्यक्ति विशेष के उपर भी हो सकता है। व्यंग्य पदिपाश करने के लिए होता ही है। यथा:

"गेस्वा पहनते जयप्रकाश नर्मदा किनारे बस जाते डाँगे हो जाते राज्यपाल लोहिया केन में बलखाते । गोपालन होते नजरबन्द राजाजी माथा घटवाते जनसंबी अटल बिहारी जी भिक्षा की झोली फैलाते । वौड़ा होता कुछ भाल और तुम रह जाते दस साल और मिलवाले होते सोश्वलिस्ट, धनपतियों को लेनिन भाता माजी आकर मिलता तुमसे पेकिंग दिल्ली से शर्माता " "हम बाबल लाते एक किनो दस का दे आते नोट मगर यों सिक्डे रहते, सपने में सिलवाते उनी कोट मगर गालियाँ छलकती, बेलों की जोड़ी को देते वोट मगर हम गाँजा ही बेंचा करते लेते खादी की बीट मगर खुलते खिलते कुछ गाल और तुम रह जाते दस साल और ।"

उक्त किवता में नागार्जुन ने व्यंग्य के माध्यम से अपने विद्रोही स्वर को व्यक्त किया है। इस किवता में उन्होंने नेहरू की कार्यप्रणाली, कार्यकारी और राजनीतिक गतिविधि तथा आर्थिक सोच के प्रति व्यंग्यात्मक दंग से अपना अस्वीकार भाव व्यक्त किया है।

निष्कर्षत: कह सकते हैं कि विद्रोह की मन: स्थिति वैवारिक या स्थास्त्र रूप
में प्रकट होती है। विद्रोह के मूल में असन्तोष एवं मोहमंग का भाव होता है। जब
कोई व्यवस्था व्यक्ति को पींडि़त करने लगती है तो उसके मन में असन्तोष का भाव
पनपता है, जिससे मन रोष, अमर्ष, आकृशि, कोध, बेर आदि मनोदशाओं से युक्त हो
जाता है और पिर वह उस व्यवस्था के प्रति अस्वीकार ध्वंस आदि भावों से युक्त
होना ही विद्रोह की मनोदशा है। यही मनोदशा क्रियात्मक विद्रोह के रूप में
प्रस्पृटित होती है। सामान्यत: हम कह सकते हैं कि असन्तोष ही विभिन्न मनोदशाओं
को उत्पन्न करता हुआ और उनको अपने में समेटता हुआ विद्रोह के रूप में पूटता है।
विद्रोह का मूल कारण आधुनिक बोध है जिसके अभाव में बाह्य परिस्थितियों के
रहते हुए भी विद्रोह की स्थिति नहीं बन सकती। विद्रोह के वैयक्तिक, सामूहिक,
वैवारिक, सशस्त्र, सामाजिक, आर्थिक, राजनीति आदि भेद हो सकते हैं। उसी

<sup>!-</sup> नागार्जुन - कुनी हुई रचनाएँ, भाग - 2, पृ० 163

विद्रोह को तर्क संगत एवं सार्थक माना जा सकता है जो जनसामान्य के हित में किया गया हो। स्वार्थ से प्रेरित होकर तथा जनसामान्य के हित को नजरन्दाज करके किया गया विद्रोह अराजकता की स्थिति उत्पन्न करता है। वह किसी तरह से हितकर नहीं होता। साहित्य में विद्रोही विवारों की अभिव्यक्ति सामान्यत: यथार्थ चित्रण, अस्वीकार, विध्वंस, नविन्मणि एवं व्यंग्य के रूप में होती है।

#### अध्याय - दो

# हिन्दी कविता में विद्रोही चेतना का विकास

जीवन की विसंगतियों से जुनने, मानवीय मूल्यों का समर्थन करने और जीवन के प्रत्येक क्षेत्र में तार्किक दृष्टि अपनाने में ही साहित्य की सार्थकता है . और ऐसा करने के लिए साहित्यकार को सिंद्यों एवं अन्ध मान्यताओं को नकारना पड़ता है, उससे विद्रोह करना पड़ता है। विद्रोह, मानव जीवन के प्रत्येक क्षेत्र के सड़े गले और को उखाड़ फैकने की वैतना एवं उर्जा प्रदान करने वाले विवारों से युक्त होता है। जहाँ तक हिन्दी कविता की बात है, तो उसमें आदिकाल से ही विद्रोह के स्वर विद्यमान हैं और रीतिकाल को छोड़ दिया जाय,तो विद्रोह की गूंज प्रत्येक काल की किवता में सुनाई पड़ती है। यह बात अलग है कि विद्रोह का स्वरूप भिन्न-भिन्न काल में भिन्न-भिन्न है। किसी काल की कविता में विद्रोह का स्वरूप धिक तीखा है तो किसी में कम, किसी काल में वह व्यापक है तो किसी में सीमित। वादिकालीन काव्य में विद्रोह का स्वरूप :-

हिन्दी किवता में विद्रोह का स्वर सर्वप्रथम आदिकाल में सिद्धों की किवता में सुनाई पड़ता है। हिन्दू समाज की सामन्ती व्यवस्था तथा हिन्दू धर्म के आडम्बर एवं कर्मकाण्ड के प्रति उन्होंने तीक्षा विद्रोह व्यक्त किया है। उनके विद्रोही विचार तत्कालीन परिस्थितियों में काफी प्रगतिशील रहे हैं। हिन्दी किवता में प्रगतिशील विचारों की शुस्त्रात सिद्धों की किवता से ही होती है। "सिद्ध किव वर्ण भेद एवं ब्राइमणों की सर्वोपरिता को नहीं मानते हैं। धर्म के सारे बाइय आचार उन्हें पसेंद नहीं हैं। मन्त्र एवं देवता उनके लिए बेकार हैं।" सिद्धों का विद्रोहलीक जीवन

<sup>1-</sup> हिन्दी साहित्य का सीक्षप्त इतिहास - पृ० 39, रामरतन भटनामर

की जरुने एवं उनके शोषण में निरन्तर रहने वाली सामाजिक-धार्मिक व्यवस्था के प्रति था। इनके विद्रोह में लोकमत की अभिव्यक्ति है। "इस लोकमत में उस ब्राह्मणवाद के प्रति – जो सर्जनात्मक लोक केतना के सहज विकास में बाधक हो रहा था, जो जातिवाद के नाम पर उच्चपदािभिषक्त था, जो बिना शारीिरक श्रम के परान्नोपजीवी हो रहा था, जो निर्जीव विधि-निषेध में अपने को विज्ञिह्त करता जा रहा था और जिसको चाहता उसे पृथक घोषित करता जा रहा था – घोर विद्रोह था। – – – – यह विद्रोह कभी ब्राह्मणवाद का खण्डन उसके श्रुति समृति सम्मत वर्णाश्रमवादी सामाजिक दाँव के विरोध द्वारा करता था, तो कभी स्वयं को सच्चा ब्राह्मण कहकर।"

सरहपा ब्राह्मणों एवं उनकी बाडम्बरफ्रां धार्मिक साधनाओं के प्रति विद्रोही स्वर में कहते हैं - ब्राह्मण उसका भेद नहीं जानते हैं, उन्होंने व्यर्थ में चारों वेदों को पढ़ा है। मिट्टी, पानी कुश लेकर, वे कुछ पढ़ते हैं, घर में बैठ कर अमि में हवन करते हैं। होम से धुआं निकलता है, कड़वे धुएँ में आँख को डुबाना व्यर्थ है।

"ब्रम्हणिसम म जाणन्त हि भेउ एवइ पठियउ ए वउवेउ मिद्द पाणि कुस लई पठन्त घर ही बहसी अमिन हुणन्त कच्चे विरहह हु अवह होमे अविस्न सहावित कड़एँ धुएँ।"

वादिकालीन हिन्दी साहित्य की साँख्तिक पीठिका - पृ० 228, डाँ० राम - मूर्सि त्रिपाठी ।

सरहपा आगे कहते हैं कि नंगा होने से मुक्ति होती है तो कुत्ते, सियार मुक्त क्यों नहीं हो जाते १ पिच्छि है बोटी है धारण करने से मुक्ति हो तो मोर के भी वमर है। सरहपा का विद्रोही तेवर कबीर के विद्रोही तेवर से कम तीखा नहीं कहा जा सकता। सरहपा की ही तरह अन्य सिद्धों डोम्भिया, जुइपा, कुक्कुरिया, शबरपा, कुण्हपा तथा नाथ कवियों की कविताओं में भी विद्रोह की वैतना विद्यमान है।

सिद्धों एवं नाथों के विद्रोह का क्षेत्र सीमित है। उन्होंने ब्राह्मणवादी व्यवस्था एवं धार्मिक आडम्बर के प्रति ही विद्रोह किया है। उनका यह विद्रोह सामाजिक धरातल पर पक्षपातपूर्ण व्यवस्था से मुक्ति की कामना से युक्त है। उन्होंने आर्थिक एवं राजनैतिक विसंगतियों के प्रति विद्रोह नहीं किया है। इसका कारण सम्भवत: यह है कि उस समय तक राजनीति जनसामान्य की पहुँच के बाहर की चीज थी और उनके जीवन की गतिविधियों में उसका कोई सास दसल भी नहीं था। आर्थिक समस्याये तत्कालीन समाज एवं धर्म की सामन्ती व्यवस्था से थी । सब मिलाकर सामाजिक एवं धार्मिक तन्त्र ही लोगों के जीवन को सीधे प्रभावित करते थे। अत: उन्होंने उसके प्रति ही विद्रोह किया है। उनका विद्रोह सण्डनपरक है। सिद्धीं एवं नाथों ने रुद्धियों एवं अंध विश्वासों के प्रति जिस विद्रोह सगडन एवं अस्वीकार की शुस्त्रात की, वह भिक्त कालके सन्त कवियों की कविता में काफी पुष्ट एवं परिष्कृत हुआ है। लेकिन "कबीर के पूर्ववर्ती सिद्ध और योगी लोगों की बाकु गमक उक्तियों में एक प्रकार की हीन भावना की ग्रीथ पायी जाती है; वै मानो लोमड़ी के सददे अंगूरों की प्रतिध्वनि हैं, मानो चिलम न पा सकने वालों के आकोश है।"!

<sup>।-</sup> कबीर - प्र 1,65, आवार्य हजारी मुसाद दिवेदी ।

- 2- भिक्त जान्दोलन एवं भिक्त काव्य:विद्रोह का सकारात्मक स्वरूप :-
- १क १ भिक्त आन्दोलन भिक्त-भावना के तत्त्व तो वेदों एवं उपनिषदों में भी मिलते हैं. लेकिन उसे आन्दोलन का रूप देने का श्रेय तिमल प्रदेश के आलवार भक्तों को ही है। इनका समय ईसा की पाँचवी शताब्दी से नौवीं शताब्दी के पवर्दि तक माना जाता है। इन भक्तों में ब्राहमण, क्षत्रिय एवं शद्भ वर्ण के लोगों के साथ अण्डाल नाम की महिला भी थी । तत्कालीन परिस्थितियों में भिक्त या उपासना के क्षेत्र में शद्वों एवं स्त्रियों का आगमन यह सुचित करता है कि यह आन्दोलन जातिगत भेद-भाव. स्त्री -परुषात अन्तर एवं नारी पराधीनता पर पहार करने वाले विवारों के साथ ही आरम्भ हुआ था । आलवार भक्तों ने जाति भेद एवं नारी पराधीनता जैसी सामन्ती अवधारणा के पति विद्रोह करके भिक्त एवं साधना के क्षेत्र को बिना किसी भेद-भाव के सबके लिए खोल दिया। उन्होंने भिक्त आन्दोलन की एक ऐसी जनोन्मस सरस धारा प्रवाहित की. जिसने उँच-नीच. स्त्री-पुरुष सबको अपने में जात्मसात कर लिया । "भिक्त आन्दोलन सामन्ती समाज की परिस्थितियों से उत्पन्न हुआ था। मलत: सामन्ती समाज व्यवस्था से विद्रोह का साहित्य है। \*2 विद्राही तेवर वाले इस भिवत अन्दोलन को रामानुज ने 12वीं शताब्दी में सामन्ती अवरोधों को तोड़ कर जागे बढ़ाया । जातिगत भेद-भाव के प्रति विद्रोह करके उन्होंने 'उरंगविलिदास' एवं 'पिलाई' जैसे शद्रों को अपना शिष्य तथा 'शुद्र काँची पूर्ण' को अपना गुरू स्वीकार

विष्णव भिवत आन्दौलन का अध्ययन - पृ० ११, डाँ० मिलक मुहम्मद ।
 परम्परा का मृत्यांकन - पृ० ९३, डाँ० रामविलास शर्मा ।

किया और चिरकाल से मन्दिर में प्रवेश करने से विचित शुद्ध एवं निम्न जाति के लोगों को अपने "मन्दिर पर्व" के माध्यम से मन्दिर में प्रवेश करने का अधिकार दिलाया । लेकिन इतना सब होते हुए भी रामानुज एवं आलबार भक्तों की अपनी कुछ सीमायें थीं । वे जातिगत असमानता एवं स्त्री-पुरूषगत भेदभाव जैसी सामन्ती मान्यतओं के प्रति मात्र भिक्त एवं साधना के स्तर पर ही विद्रोह कर सके हैं, सामाजिक स्तर पर नहीं । तत्कालीन राज्यान्त्र एवं अर्थतन्त्र में व्याप्त अमानवीयता के प्रति उन्होंने आवाज नहीं उठाई - कारण वाहे जो रहा हो ।

तेरहवीं-चौदहवीं शतरब्दी के दौरान उत्तर भारत या हिन्दी भाषी प्रदेशों में भी जाति-व्यवस्था की कठोरता, जंच - नीच का भेद-भाव, छुवाछूत की भावना तथा शुद्धों एवं स्त्रियों की दयनीयता जैसी वे सारी स्थितियों विद्यमान थीं, जो दक्षिण भारत में भिक्त बान्दोक्त के समय थीं। हाँ, यह बात अवश्य है कि मुस्लिम शास्त्रों की धर्मान्धता एवं इस्लाम के प्रचारार्थ की जाने वाली दूरता उत्तर भारत की एक अतिरिक्त परिस्थिति थी, जो भिक्त बान्दोक्त के उदय के समय दक्षिण भारत में विद्यमान नहीं थी। रामानन्द, जिनका समय लगभग चौदहवीं शताब्दी के उत्तरार्थ से पन्द्रहवीं शताब्दी के पूर्वार्थ तक माना जाता है, ने उत्तर भारत के समाज एवं धर्म में विद्यमान इन सारी विस्थितियों को समाप्त करने के लिए दक्षिण भारत में उत्पन्न भिक्त बान्दोक्त की सरस एवं जनोन्भुत धारा को उत्तर भारत में प्रवाहित किया। क्यों कि "बालवारों के वेष्णव भिक्त बान्दोक्त में उत्तर भारत की धार्मिक ववस्था में दिष्टिगीवर होने वाले सभी रोगों की उच्चित बोक्षियां उपलब्ध थीं।"

<sup>1-</sup> वेष्ण्य भीवत बान्दीलन का अध्ययन - पृ० ३४०, डाँ० मलिक मुहम्मद ।

रामानन्द द्वारा दक्षिण भारत से लाया गया यह भिकत अन्दोलन उत्तर भारत की धरती पर पहुँच कर अधिक विद्रोही हो उठा । इसके दो कारण थे पहला मुस्त्रमानों का धर्मान्धतापूर्ण शासन और दूसरा सिद्धों एवं नाथों की पूर्ववर्ती
विद्रोही परम्परा । विश्वनाथ त्रिपाठी के शब्दों में - " उत्तर भारत में वह

श्र भिक्त आन्दोलन श्र सरा, आग्रही, अधिक विद्रोही एवं आकृमक बना । इसके लिए
केवल तृकों का शासन जिम्मेदार नहीं, इसके लिए नाथों, सिद्धों की आत्मविश्वासी
और वर्णव्यवस्था का तीव्र विरोध करने वाली परम्परा जिम्मेदार है ।" रामानन्द
ने जिना किसी भेद भाव के उँच - नीच, स्त्री - पुरुष, सब को अपना शिष्य बनाकर
आलवारों की परम्परा की मुनरावृत्ति उत्तर भारत में कर दी । रेदास क्मार,
सेन नाई, धना जाट, पीपा राजपूत, कबीर जुनाहा, पद्मावती स्त्री आदि उनके
शिष्य थे।

सक्षेप में, दक्षिण भारत में उत्पन्न होकर उत्तर भारत तक जाने वाले भिकत जान्दोलन की प्रवृत्ति सामन्ती मूल्यों के प्रति विद्रोह की रही है। यह जान्दोलन भिक्त के क्षेत्र में जाति-प्रथा की भेद-भाव पूर्ण नीति को तोड़ने वाला एवं स्त्री-पुरूषणत जन्तर को अस्वीकार करने वाला था।

#### **१स**१ भिक्त काल :-

रामानन्द ने भिक्त आन्दोलन की जो धारा उत्तर भारत में प्रवाहित की थी, हिन्दी भिक्त साहित्य उसी की देन है। हिन्दी के भक्त कवियों - कबीर, मीरा, तुलसी, सूर आदि ने तत्कालीन धर्म एवं समाज में विद्यमान हुआ-छूत, जँव - नीव

<sup>। -</sup> मीरा का काव्य + प्0 28, विश्वनाथ त्रिपाठी ।

के भेद-भाव, एवं स्त्रीपुरूषणत असमानता जैसी सामन्ती अवधारणावों के प्रति विद्रोह करके भिक्त आन्दोलन की जनोन्मुख एवं विद्रोही प्रवृत्ति को अधिक निसार दिया।

कबीर का विद्रोह एकदम मुखर है। वे अपनी बात को अक्खड़ता एवं स्पष्टता के साथ कहते हैं। उसमें किसी प्रकार का दुराव छिपाव नहीं है। वाहे हिन्दुओं एवं मुसलमानों के मध्य श्रेष्ठता एवं निम्नता का प्रश्न हो, वाहे हिन्दुओं का जातिगत भेद-भाव; वाहे पण्डितों, मोलवियों का पाखण्ड हो और वाहे धार्मिक आडम्बर, सबके प्रति कबीर का स्ख विद्रोही है। हिन्दू एवं मुसलमानों का एक दूसरे से श्रेष्ठ होने का विवार कबीर के गले नहीं उतरता। वे स्पष्ट शब्दों में कहते हैं -

"जे तू बाभन बभनी जाया । तो जान बाट होइ काहे न जाया ।। जे तू तुस्क तुस्किनी जाया ।

तौ भीतिर सतना क्यों न कराया ।।"।
उन्होंने दोनों धर्मों के आडम्बरों की बड़े निरपेक्ष भाव से धिज्ज्याँ उड़ाई है, काजियों
एवं पण्डितों पर प्रहार किया है और कर्मकाण्ड की बस्या उद्येड़ी है:

र्ष्व दे पण्डित बाद बदे सो झूठा राम कहे दुनिया गति पावे, खाड़ कहे मुख मीठा । "2"

हुंख है " काजी ते कवन कतेव बखाने पद्त-पद्त केते दिन बीते गति एके निष्ट जाने । "3

<sup>। -</sup> कबीर ग्रंथावली - पद सं० । 78, सं० पारसनाथ तिवारी ।

<sup>2-</sup> वही - पद सै0 179 ।

<sup>3-</sup> बबीर समग्र - सैं० प्रो॰ युगेरंवर - पृ० ५४८, पद सैं० ५९

शृंग है कोई पेरे माला, कोई पेरे तबसी, देखों रे लोगा दोनों कबसी।
कोई जावे मक्का, कोई जावे कासी, दोऊ के गिल परि गई मासी।"

हिन्दुओं की सामन्ती जाति-व्यवस्था में विद्यमान शृद्ध एवं ब्राह्मण जैसे वर्गीकरण पर

प्रहार करते हुए कबीर ने कहा है " -

"एक बूँद ते सृष्टि रची है कीन ब्राह्मण कीन सूदा।"<sup>2</sup>
कबीर की दृष्टि समाज के आर्थिक सम्बन्धों पर भी पड़ी थी। मध्यकालीन सन्तों में "वै पहले व्यक्ति हैं जिन्होंने समाज के आर्थिक टाँच को समझने का प्रयास किया।"<sup>3</sup>
कबीर के शब्दों में -

"निर्धन आदर कोई न देई ।
लाख जतन करें ओह चित न धरेई ।
जो निर्धन सरधन के जाई ।
अपने बैठा पीठ फिराई । "4

लेकिन तत्कालीन वार्थिक ढाँच के प्रति कोई विद्रोह जैसी बात नहीं है। कबीर का विद्रोह, रोष, अस्वीकार प्राय: धार्मिक बाउम्बरों एवं सामाजिक ढाँचे में व्याप्त जातिगत असमानता तक ही सीमित है। सभी सन्त कवियों के विद्रोह का स्वर प्राय: ऐसा ही है।

<sup>1-</sup> क्बीर ग्रन्थावली - सं० पारसनाथ तिवारी, पद सं० 193

<sup>2- -</sup> वही - पद सं0 181

<sup>3-</sup> मध्य युगीन भारतीय समाज एवं संस्कृति - पृ० 349, बारसण्ड चौबे ।

<sup>4-</sup> क्बीर ग्रन्थावली - नागरी प्रचारिणी सभा - परिशिष्ट पृ० 302

मीरा का विद्रोह न तो अन्योक्ति एवं समासोक्ति का कवव धारण करता है और न रूपकों को ढाल बनाता है। वह अदम्य साहस एवं निर्भयता से ओत-प्रोत तथा दुराव-छिपाव से मुक्त है। मीरा का विद्रोह जहाँ एक और अपने परिवार के प्रति था, वहीं दूसरी और शासनतन्त्र एवं समाज की सामन्ती व्यवस्था के प्रति भी था। यह दूसरी बात है, कि उनके सन्दर्भ में ये तीनों एक है। ऐसी समस्या हिन्दी के किसी कवि या कवियत्री के समक्ष नहीं रही है। कृष्ण के प्रति प्रेम एवं भिक्त ने मीरा को घर परिवार छोड़ने तथा उनके सामन्ती परिवार की रुदियों एवं सोखली मर्यादाओं ने उन्हें घर के अन्दर बन्द रहने के लिए विवश किया। भिक्त एवं कुलमर्यादा की इस रस्साकसी ने मीरा को विद्रोही बना दिया। उनके विद्रोह ने समाज के झूठे नियम एवं परिवार की निर्थक मर्यादा को तोड़कर उन्हें साधुओं की जमात में खड़ा कर दिया। उन्होंने अपनी किताओं में लोकलाज एवं कुलमर्यादा को तोड़ने एवं छोड़ने की बात अनेक बार कही है:

- "लोकलाज कुलराँ मरजादाँ जगमाँ श्रोक पराख्या री।" !
- "साज सिंगार बाँध पग छूँगर लोकलाज तज नाची ।"2
- "लोक्लाज की कान न मानू।"3
- "लोकलाज कुलकाण जगत की दइ बहाइ जस पानी ।"4

<sup>। -</sup> मीरा की पदावली - पद सं० 17, सं० परसुराम क्तूर्वेदी ।

<sup>2- -</sup> वही - पद सं0 19

<sup>3- -</sup> वही - पद सै0 35

<sup>4- -</sup> वही - पद सै0 38

तुलसी एवं सूर के काव्य में विद्रोह का वह तेवर नहीं दिखाई पड़ता, जो कबीर एवं मीरा के काव्य में विद्यमान है। लेकिन फिर भी समाज की सामन्ती व्यवस्था के प्रति विद्रोह की अल्याधिक उन्गूज उनकी कविता में अवश्य सुनाई पड़ती है। तुलसी स्थान-स्थान पर जातिवादिता एवं कुलीनता, तथा उसके समर्थकों के प्रति विद्रोह करते एवं वेतावनी देते पाये जाते हैं। तुलसी के शब्दों में -

- शुंक श्रृं "मेरी जाति-पाँति न वहीं कह की जाति पाँति, मेरे कोऊ काम को न हों काहू के काम को । लोक परलोक रघुनाथ ही के हाथ सब, भारी है भरौसो तुलसी के एक नाम को । वित ही जयानो उपसानो निह कूझें लोग, साह ही को गोतु, गोतु होत है गुलाम को । साधु के असाधु के भलो के पोच, सोचु कहा का कह के द्वार परो जो हों सो हों राम को । "!
- हुंख है "धूत कहाँ, अवधूत कहाँ, रजपूत कहा, जोलहा कहा कोउ।

  काहू की बेटी सो बेटा न ब्याहब, काहू की जाति बियार न सीउ।

  तुलसी सरनाम गुलाम है राम को, जाको स्वेसो कहे कछ ओउ।

  मांगि के खेबो मसीति को सोइबो, लेबो को एकु न देवे को दोउ।।"<sup>2</sup>

  उँच-नीच, खुवा-छूत एवं जाति-मेद के प्रति किया गया तुलसी का विद्रोह भिक्त एवं
  साधना के स्तर पर ही है। "जिन तमाम लोगों के लिए पुरोहित वर्ग ने उपासना

<sup>1-</sup> कवितावली - उत्तरकाण्ड - 107, तुलसीदास 1 2- - वहीं -

भक्त किवयों की मानवतावादी सोच नारी जीवन की पीड़ाओं के प्रति भी सेवेदनशील रही है। उन्होंने नारी पराधीनता के विरुद्ध विद्रोह किया है। उनका यह विद्रोह प्राय: भिक्त एवं साधना के स्तर पर है, लेकिन यदा-कदा समाजिक स्तर पर भी है। मीरा के कृत्य नारी विषयक सामन्ती सोच के विरुद्ध विद्रोह करने वाल हैं। तुलसी को लोग सामान्यत: नारी निन्दक कहते हैं। लेकिन ऐसा कहकर यह नहीं सिद्ध किया जा सकता, कि उन्होंने नारी समस्याओं की और ध्यान नहीं दिया और उनके जीवन को किन बनाने वाली सामन्ती समस्याओं के विरुद्ध विद्रोह नहीं किया। तुलसी ने नारी-पराधीनता की पीड़ा महसूस की है और अपनी क्षमता के अनुसार अपने नारी पाओं के माध्यम से विद्रोह भी किया है। नारी जीवन की सबसे बड़ी समस्या विवाह सम्बन्धों में रूचि की स्वतन्त्रता का न होना रहा है। पार्वती की माँ मैना जब शिव को वर के रूप में अपनी पुत्री के उन्तुकूल नहीं देखतीं, तो उनका मन पीड़ा, असन्तोष एवं विद्रोह से भर जाता है:

"तुम्ह सहित गिरि ते गिरो पावक जरो जलिनिध मेंडु परों। घर जाउ अपयसु होइ जग, जीवित विवादु न हों करों। "<sup>2</sup> यही नहीं पार्वती के पितगृहगमन के समय नारीपराधीनता के प्रति विद्रोहन्मुख असन्तोष - "

<sup>1-</sup> परम्परा का मूल्यांकन - वृ० 78 - 79, डाँ० रामितलास शर्मा । 2- रामवरित मानस - बालकाण्ड - दो० सं० 96, तुलसीदास

"कत विधि सृजी नारि जग माँहीं।

पराधीन सपनेहुँ सुख नाहीं "। के रूप में व्यक्त हुआ है । वाटिका में राम को देखकर सीता का मन उनके प्रति मुख तो अवस्य होता है, लेकिन अपने विवाह को अपनी रूचि के स्थान पर अपने पिता की प्रतिज्ञा के वशीभूत जानकर वे क्षुच्य हो जाती हैं - "नख सिख देखि राम के सोभा । सुमिर पितापनु मनु अति क्षोभा ।"2 तुलसी के ये विवार मध्यकालीन नारी शौषक व्यवस्था के प्रति विद्रोहात्मक है । हाँ, यह बात अवश्य है कि उनमें पर्याप्त मुखरता नहीं है, वे आँसुओं से लिपटे हुए हैं, और व्यवस्था को तोड़ नहीं पाये हैं । लेकिन सूर तुलसी से आगे हैं । उनका विद्रोह नारियों के लिए, घर की दीवार एवं समाज के अनावश्यक बन्धनों को तोड़ने में सफल रहा है । उनकी राष्टा तथा गोपियाँ सामन्ती समाज व्यवस्था की उपेक्षा करके स्वच्छन्दता के साथ लता कुंज एवं यमुना के कछार में कृष्ण प्रेम के वशीभूत होकर विवरण करती हैं । "तुलसी नारीपराधीनता को महसूस करते हैं, उसकी पीड़ा का विक्रण कर सकते हैं, किन्तु सामाजिक निषेधों में अन्तर्निहित अमानवीयता को इस तरह यानी सूर की तरह तोड़ नहीं सकते । वस्तुत: अन्तर तुलसी एवं सूर का उतना नहीं जितना राम एवं कृष्ण के विरशों का है । "3

कबीर की किवता में नारी पराधीनता के प्रति स्पष्ट विद्रोह एवं आकृशि तो नहीं दिखाई पड़ता। लेकिन फिर भी, नारी निन्दा से सम्बन्धित उनके दोहों में उनका सामन्ती व्यवस्था के प्रति आकृशि एवं विद्रोह छिपा हुआ है। वे नारी के

<sup>। -</sup> रामविश्त मानस - बालकाण्ड - दों 0 सं 0 102, तुलसीदास ।

<sup>2- -</sup> वही - दी० सं० 234

<sup>3-</sup> मीरा का काव्य - पृ० 45, विश्वनाथ त्रिपाठी ।

कामिनीया-भोग्या रूप की बालोचना करते हैं, जो सामन्ती व्यवस्था एवं सोच द्वारा निर्मित है:

"एक कनक अरू कामिनी, विषयल कीय उपाइ। देखें ही ते विष चदे, खाये सूमिर जाइ।। एक कनक अरू कामिनी, दोउ अगनि की झाल। देखें ही तन प्रजले, परस्या है पैमाल।।"

ऐसा करके एक प्रकार से कबीर ने सामती व्यवस्था के प्रति विद्रोह ही किया है।

इतना सब होते हुए भी मानवतावादी एवं उदार भक्त कवियों के सम्अन्ध में एक बात यह सटकती है, कि उन्होंने सतीप्रधा जैसे अत्यन्त अमानवीय कृत्य के प्रति विद्रोह क्यों नहीं पुकट किया १ सम्भवत: "धार्मिक आगृह इनकी करूणा को सीमित एवं बाधित करता था। वे सती के त्याग बिलदान को देखते थे, सतीप्रधा की अमानवीयता को नहीं।"2

संक्षेप में, भिवत बान्दोलन से प्रभावित एवं प्रेरित हिन्दी के भिवतकाच्य में समाज एवं धर्म की सामन्ती संरचना तथा नारी विरोधी व्यवस्था के विरुद्ध मात्र साधना एवं भिवत के स्तर परहीविद्रोह व्यवतनहींहु ग्राहे, व्विल्कि यह विद्रोह विशुद्ध सामाजिक स्तर तक भी व्याप्त है। "वर्णाश्रम धर्म एवं जाति-प्रथा की जितनी तीव्र बालोचना भिवत साहित्य में है, उतनी बाधुनिक साहित्य में नहीं है।" उ

<sup>। -</sup> कबीर ग्रन्थावली - कामी को और , सं० भगवत स्वरूप मिश्र ।

<sup>2-</sup> मीरा का काव्य - पृ० 48 , विश्वनाथ त्रिपाठी ।

<sup>3-</sup> परम्पराका मूल्यांकन - पू० १।, डाँरामिकनास शर्मा।

भिन्त काल के अन्तिम चरण में विद्वीह का स्वर शान्त पड़ गया। कारण यह था, कि भिन्त वान्दीलन के प्रभाव से हिन्दी भाषी क्षेत्रों में भिन्त एवं साधना के स्तर पर लिंगगत एवं जातिगत, भेद-भाव प्राय: समाप्त हो गया और बिना भेद-भाव के भिन्त का मार्ग सबके लिए सुल गया। सहजता एवं सरस्ता के कारण सगृग भिन्त का प्रकान बद्दा, जबिक नीरस्ता के कन्ते निर्गृण भिन्त की धारा मन्द पड़ती क्ली गयी। सगृग भिन्त की कृष्ण काव्यधारा के किव कृष्ण-राधा एवं गोपियों के घोर शृंगारिक कित्रण में रम गये। इन्हीं की देखा-देखी रामकाव्य में शि शृंगारिकता का प्रवेश हुआ। भिन्त एवं साधना के स्तर पर अन्तर्विरोधों के अभाव एवं सगृग भन्त किवयों में व्याप्त शृंगारिक केतना की इस दशा में विद्रोह का विलोप स्वाभाविक ही था।

# 3- रीतिकालीन कविता : विद्रोही स्वर का अशाव :-

जो शृंगारिक देतना सगृग भिवत काव्य में जन्मी, वह रीतिकालीन किवता की मृद्ध्य विशेषता बन गयी । इस काल के प्राय: अधिकांश किव राज दरबार से सम्बन्धित हो गये । शृंगार वर्णन उनका धर्म एवं कर्म बन गया । शृंगारिक रचनावों को उन्होंने राजावों के मनोरंजन एवं अपने लिए धनार्जन का साधन बनाया । प्रासाद की शब्दता में उलक्षे उनके नेत्रों ने जनसामान्य को तिरस्कृत कर दिया । सामन्ती रंग में रंगी उनकी बुद्धि ने जनता की समस्यावों पर विचार करना वावश्यक नहीं समझा । जिस सामन्ती व्यवस्था के प्रति इन किवयों को विद्रोह करना था, उस व्यवस्था के प्रोक्त सामन्तगण इनके वाश्यदाता थे और ये उनके प्रश्वस्तिकार । उतः विद्रोह इनके वश्च की बात नहीं की । रातः मुक्त किवयों को किवताओं में विद्रोह का जो कुछ बाशास होता है उसका कोई उसका की महत्व किवयों के किवताओं में विद्रोह का जो कुछ बाशास होता है उसका कोई उसका नीई उसकानीय महत्व नहीं है । उनका सारा विद्रोह

प्रणय की स्वच्छन्दता तक ही सीमित है। इनकी 'रीति मुक्तता', जिसे हम रीति - कालीन रवनाशैली के प्रति विद्रोह कह सकते हैं, वह भी बहुत कुछ इनकी प्रणय स्वच्छ - न्दता से ही प्रेरित है। भूषण अनिद की वीर रस की कविताओं में विद्रोह नहीं, आश्रयदाता की प्रशस्ति है।

इस प्रकार रीतिकालीन किवता मैं विद्रोही वैतना प्राय: अनुपर्थित है। उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द्ध के बाद जब हिन्दी प्रदेश नवजागरण की ज्योति से जागृत हुआ और किवयों ने जनसमस्याओं को अपनी किवता का विषय बनाया तब, हिन्दी किवता में विद्रोह का नाद पुन: सुनायी पड़ा।

## 4- अधिनिक काच्य : पुनर्जागरण :-

नवजागरण या पुनर्जागरण शब्द अँग्रेजी के रिनाँसा' शब्द के पर्याय के रूप
में प्रयुक्त हुआ है । पुनर्जागरण या नवजागरण का सामान्य अर्थ है - रूद्धि एवं अज्ञानता
की नींद से जागकर तार्किकता एवं मानवता से युक्त नयी समझ के सुप्रभात में आँख
खोलना । किसी देश या समाज के सन्दर्भ में पुनर्जागरण या नवजागरण - तार्किकता
एवं मानवता से युक्त ज्ञान के प्रकाश से रूद्धि एवं अज्ञानता के अधिकार को नष्ट करके
सविंगीण उत्थान की और अग्रसर होना है।

प्रेस, यातायात, नयी अर्थव्यवस्था एवं पाश्चात्य शिक्षा - जिसे अंग्रेजों ने भारतीयों के शोषण के लिए व्यवस्थित : किया था - के सम्पर्क में जाने एवं अपने सांस्कृतिक गौरव को पहचानने के कारण ! 9वीं सताब्दी तक पहुँचते-पहुँचते, साम्राज्यवादी एवं पूँजीवादी ब्रिटिश सत्सा के द्वारा किये जा रहे शोषण से बदतर होती अपनी रिथति को सुधारने के लिए भारतीय पुरित हो उठे ! "इसी वेतना-भावना और इससे प्रभावित विभिन्न प्रयत्नों को हम भारतीय पुनस्दार श्रेपन्जांगरण जान्दोलन के

नाम से पुकारते हैं। " बिद्धिश शासन में भारतीय जीवन का हर क्षेत्र शोषण एवं उपेक्षा का शिकार हुआ शा। अत: सर्वत्र सुधार एवं जागृति की आवश्यकता थी। यही कारण है कि "जिसे भारत में रिनांसा या पुनर्जागरण कहा जाता है, उसमें सामाजिक नववेतना, राष्ट्रवादिता, समाज सुधार, सांस्कृतिक पुनरून्त्यन एवं राजनैतिक उन्नयन एक में मिले हुए हैं। " 2

पुनर्जागरण या नवजागरण, जीवन के प्रत्येक क्षेत्र तक व्याप्त होते हुए भी,
प्रथम वृष्टि में "सामाजिक एवं धार्मिक सुधार वान्दोलन के रूप में दिखाई पड़ता है।
कारण यह था, कि भारतीय धर्म एवं समाज में देर सारी कुरीतियां, सिद्यां एवं अंध —
विश्वास विद्यमान थे, जिन्हें दूर किये बिना देश में एकता, शिवत एवं वैवारिक दूदता
का संवार सम्भव नहीं था और इसके अभाव में राजनीतिक एवं आर्थिक स्वतन्त्रता की
प्राप्ति की दिशा में कदम बदाने की बात सीची भी नहीं जा सकती थी। इन्हीं
परिरिधितयों में अनेक बुद्धिजीवी एवं विवारक भारत को पुनर्जागृत करने के लिए सामने
आये और उन्होंने जनके संस्थायें स्थापित करके अपने विवारों को जन-जन तक पहुँवाया।
ऐसे विवारकों में राजा राममोहन राय, ईश्वर चन्द्र विद्यासागर, दयानन्द सरस्वती,
स्वामी विवेकानन्द आदि प्रमुख हैं। जिस प्रकार सामाजिक एवं धार्मिक अमानवीयता,
सिद एवं बाउम्बर के विरोध में 19वीं सताब्दी में पुनर्जागरण का सूत्रपात हुजा,ठीक
उसी प्रकार मध्यकाल में भवित बान्दोलन का उदय हुजा था। दोनों में जन्तर यह भ्राप्ति जहाँ पुनर्जागरण तर्क पर वाधारित था,वहाँ भवित बान्दोलन भावना पर

<sup>1-</sup> आधुनिक भारत - पृ० 48, एल० पी० सर्मा ।

<sup>2-</sup> श्वारतीय नवजामरण - प्रणेता तथा बान्दोलन - पृ० 16, गौरी संकर भद्द ।

सड़ा था। भिक्त जान्दोलन साधु-सन्तों द्वारा जारम्भ किया गया था जिनका सामाजिक, आर्थिक एवं राजनेतिक समस्याओं से प्राय: कुछ लेना देना नहीं था। भिक्त एवं साधना ही उनका मुख्य लक्ष्य था। अत: उन्होंने उँच-नीच, खुआ-छूत, जाति-पृथा एवं स्त्री-पृरुषण्यमेद-भाव के प्रति प्राय: भिक्त एवं साधना के स्तर पर ही विद्रोह किया था। लेकिन पुनर्जागरण के कर्णधार प्राय: गृहस्थ, सामाजिक एवं भौतिक सोच के व्यक्ति थे। इनमें जो लोग आध्यात्मिक थे, वे भी जनसमस्याओं पर चिन्तन करने वाले थे। उनका आध्यात्म भौतिकता की यथार्थ भूमि पर आधारित था। उत: उन्होंने सारी रुद्धियाँ एवं अमानवीयताओं का धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर विरोध करने के साथ-साथ, आर्थिक एवं राजनेतिक विसंगतियों को भी उखाड़ फेक्ने का प्रयास किया।

पुनर्जागरण की चिन्तन शैंनी एवं गतिविधि से स्पष्ट है कि वह विद्रोही
प्रवृत्ति से युक्त था। धार्मिक एवं सामाजिक स्तर पर उसका विद्रोह भारतीय धर्म
एवं समाज में व्याप्त आडम्बरों, कुरीतियों, रुद्धियों एवं वंधिविश्वासों के प्रति था,
जबिक राजनैतिक एवं आर्थिक स्तर पर उसने साम्राज्यवादी तथा पूँजीवादी ब्रिटिश
सत्ता के प्रति विद्रोह किया था। नवजागरण या पुनर्जागरण से हिन्दी साहित्य
का भारतेन्द्र युग, द्विवेदी युग एवं छायावाद प्रभावित है। इन युगों की काव्य
रक्ताओं में पुनर्जागरण के समग्र विद्रोही चिन्तन की अभिव्यक्ति हुई है।

# र्वे भारतेन्दु युगीन कविता :-

रीतिकालीन कविता में विद्रोह का जो स्वर मूक हो गया था, वह नव -जागरण वान्दोलन के ष्रभाव से भारतेन्द्र कृतिन कविता में पुन: संकृत हो उठा । राजनैतिक एवं आर्थिक स्तर पर इस युग के कवियों का विद्रोह, ब्रिटिश शासन व्यवस्था के प्रति था, जबकि सामाजिक एवं धार्मिक स्तर पर उनका विद्वीह हिन्दू समाज एवं धर्म की कुरीतियों के विरुद्ध था। जहाँ तक राजनीति एवं अर्थव्यवस्था के प्रति विद्रोह की बात है,तो वह इस काल के आरिम्भ दौर में अस्पष्ट एवं अन्तर्विरोध से युक्त है। कवियों ने जहाँ एक और तत्कालीन शासन व्यवस्था के प्रति राजभिक्त पदर्शित की है. वहीं दूसरी और उसके पति आकृशि एवं रोष का भावभव्यक्त किया है। उनका विदोह राजभवित एवं देशभिवत के मध्य दौलायमान है। वे यह निश्चित नहीं कर पा रहे थे कि इस व्यवस्था को नकारना हितकर है या स्वीकारना । इसका कारण. 1857 के विद्रोह के बाद 1858 में महारानी विक्टोरिया द्वारा जारी आकर्षक घोषणा पत्र के पृति लोगों में बाशा एवं विश्वास तथा महारानी के पृति भवित का उदय था । लेकिन, जब घोषणा पत्र के अनुसार भारतीयों की आकाक्षा पूर्ण नहीं हुई और शोषण तथा दमन की गतिविधि पूर्ववत जारी रही, तो लोगों में उसन्तोष एवं विद्रोह के भाव पनपने लगे। यही कारण है, कि प्रारम्भ में, भारतेन्दु युग के जिन कवियों ने ब्रिटिश सत्ता का गुगगान किया है या उसके प्रति अपना हत्का रोष व्यक्त किया है, उन्होंने ही आगे क्ल कर उसके विरुद्ध अपना तीव्र विद्रोह भी व्यक्त किया है।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने अपनी कविता में देश के गौरवपूर्ण अतीत एवं दयनीय वर्तमान का चित्रण करके देश की दयनीय स्थिति के लिए उत्तरदायी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्वीह का भाव पुकट किया है। यथा --

> "सबसे पहिले जेहि ईश्वर धन-बन दीनो । सबसे पहिले जेहि सभ्य विधाता कीनो ।

विंख सब से पीछे - सोई परत लढ़ाई। हा!हा। भारत दुर्दशा देखी न जाई।। "!

प्रत्यक्षतः तो इस कविता में वेदना एवं पीड़ा ही दिखाई पड़ती है, लेकिन यहाँ वेदना, पीड़ा एवं असन्तोष की राख में छिपे विद्रोह के अंगारों को नजरन्दाज नहीं किया जा सकता।

भारतेन्दु युगीन कवियों ने पराधीनता की जंजीर को तोड़ने एवं ब्रिटिश सत्ता को उखाड़ देने की बात को सीधे - सीधे भी कहा है। इन कवियों को परा -धीनता संसार का सबसे बड़ा दु:ख प्रतीत होती है:

- र्क्ष "जदिष जगत में बहुत दुख दुसह महान।
  पराधीनता के सम तदिष न जान।।"2

इस काल के किवयों ने भारत के आर्थिक शोषण के लिए जिम्मेदार ब्रिटिश अर्थव्यवस्था के प्रति भी बगावत की है। भारत मैं उस समय का रही विलायती लूट के विरुद्ध प्रताप नारायण मिश्र ने अपना विद्रोह - "सर्वसु लिये जात अप्रैज" - कह कर व्यक्त किया है और भारतेन्द्र ने - "धन विदेश विलजात" - एवं " भीवर - भीतर सब

<sup>। -</sup> भारतेन्द्र ग्रंथावली - भाग दो - पृ० 804 ।

<sup>2-</sup> प्रेमधन सर्वस्व - भाग एक - मृ० ६९ ।

<sup>3- -</sup> वहीं - पु 70 1

<sup>4-</sup> लोकोवितशंतक - पूंठ 3, प्रताप नारायग मिश्र ।

<sup>5--</sup> भारतेन्दु नाटक्वली - पृ० 598 ।

रस चूंसे"। - जैसे कथन के माध्यम से प्रकट किया है। प्रेमधन तो वरखे के सूत से निर्मित स्वदेशी वस्त्र द्वारा मानवेस्टर को मात देकर ब्रिटिश अर्थव्यवस्था को तबाह कर देना वाहते हैं:

"क्ला क्ल वरसात् दिन रात

**x x x** 

कात-कात कर सूत मैनिचस्टर को कर दे मात । "2
भारतेन्दु युगीन किवयों का यह स्वदेशी का नारा जहाँ एक और ब्रिटिश अर्थतन्त्र के
पृति विद्रोही विवारों से प्रेरित था, वहीं दूसरी और भारतीय अर्थव्यवस्था को सुदूद
करने एवं भारतीयों में राष्ट्रीयता की भावना भरने की दिशा में एक कदम भी था ।

इस दौर के किवयों का स्वर तत्कालीन धार्मिक एवं सामाजिक कुरीतियों के प्रति भी विद्रोही रहा है। धर्म एवं समाज के क्षेत्र में उनका विद्रोह सुधरमूलक है, अामूल परिवर्तन मूलक नहीं। उन्होंने बेमेल विवाह, बाल विवाह, छुआ-छुत, धार्मिक आडम्बर एवं विधवाओं की दयनीय दशा जैसी कुरीतियों के प्रति विद्रोह करके हिन्दू समाज में सुधार एवं नयी वेतना लाने का प्रयास किया है। प्रेमधन ने बेमेल विवाह पर जबरदस्त वोट की है। बेमेल विवाह से ऋस्त नारी का विद्रोह उनकी कविता में इस प्रकार से प्रकट हुआ है -

"वसी बरस के भया बूद तू जैसे हमार परवाजा रामा हरि हरि हम बारिहै बरिस के अबही बाला रे हारी 1"3

<sup>।-</sup> भारतेन्द्र ग्रन्थावली - भाग दो, पृ० ।।।।

<sup>2-</sup> प्रेसधन सर्वस्व - प्रथम भाग - प्0 633 1

<sup>3-</sup> प्रेमधन सर्वस्व - पृ० 548 ।

बालकृष्ण भट्ट की निम्न किवता में विधवा का विद्रोह पुरुष प्रधान समाज के उस अन्याय एवं दबाव के विरुद्ध प्रकट हुआ है, जो उसे पुनर्विवाह करने से रोकता है:

"आप तो व्याह करो, दस वाही ताह पैन हो व्यिभवारी।

करो अन्याय बाल विधवा पर, अपनी ही अरथ निहारी।।"

भारतेन्दु को मत-मतान्तर एवं जाति भेद स्वीकार नहीं है। वे इन सारे
भेदों को स्वार्थी तत्वों द्वारा निर्मित मानते हैं:

"रिव बहु विधि के वाक्य प्रातन माहि घुसाये। शैव,शाक्त, वैष्णव अनेक मत प्रकट चलाये। जाति अनेकन करि ॲव अरु नीव बनायो सान-पान सम्बन्ध सबनि सो बरज छुड़ायो।"2

इस प्रकार सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों के प्रति इस काल के किवयों का विद्रोह सुधारात्मक है। उसमें, सब कुछ बस्वीकार कर सर्वधा नविनर्गण की बात नहीं दिखाई पड़ती है। राजनैतिक व्यवस्था के प्रति इन किवयों का विद्रोह बारम्भ में अस्पुट एवं बन्तविरोध से ग्रस्त है, लेकिन धीरे-धीरे उसमें प्रखरता बाती गयी है और अन्तत: उसमें तत्कालीन राजनैतिक एवं बार्धिक व्यवस्था को छिन्न भिन्न कर देने का स्वर स्पष्ट रूप से सुनाई पड़ने लगा है।

<sup>1-</sup> हिन्दी प्रदीप - पृ० 28 , दिसम्बर 1880 । 2- भारतेन्द्र नाटकवली - पृ० 640 ।

## १ॅंस देवेदी युगीन कविता :-

दिवेदी युगीन कविता का विद्रोही स्वर भारतेन्द्र युगीन कविता के विद्राही स्वर की अपेक्षा अधिक तीव्र एवं मुखर है। कारण सन् 1900 तक आते -आते ब्रिटिश सत्ता का शोषक एवं अत्याचारी स्वरूप पूर्णत: स्पष्ट हो गया ह उसकी अधीनता में देश की स्थिति को सधारने की काँग्रेस की नरमपंथी सीव ' एवं भिक्षावृद्धित से लोगों का मोह समाप्त हो गया। देश के यक्कों ने ब्रिटिश सत्ता को समाप्त करने के लिए उग्रता एवं आतंक का सहारा लिया। परिणाम यह हुआ कि सारे देश में अंग्रेज़ी शासन के विरोध में विद्रोही स्वर एवं बम के धमाके गुंजने लगे ! सत्ता ने उस पर अंक्श लगाने के लिए 1905 के बंग-विभाजन. 1909 के सधार अधिनियम, 1919 के रौलट जिल एवं 1919 के जलियावाला गोलीकाण्ड जैसे, अनेक हथकण्डों को अपनाया, जबकि देशभक्तों ने 'होम-स्ल- लीग' एवं गदरपार्टी जैसे संगठनों की स्थापना करके सत्ता विरोधी गतिविधियों को जारी रखा । बालगंगाधर तिलक, लाला लाज्यतराय, विपिन चन्द पाल जैसे देश भक्तों ने अधिकार. त्याग. गौरव एवं विद्रोह का भाव लोगों में भर दिया। ऐसी परिस्थिति में द्विवेदी युगीन कविता का उग्र एवं विद्रोही हो जाना स्वाभाविक था। भारतेन्द्र युगीन कविता में विद्रोह की जो विनगारी धीरे-धीरे वमक रही थी वह दिवेदी युगीन कविता में तत्कालीन परिस्थितियों की हवा पाकर शोले के रूप में भड़क उठी । इस काल की कविता में ब्रिटिश व्यवस्था एवं अर्थ -तन्त्र को कि वंश करने का स्वर बहुत प्रसर है।

भारतेन्दु युगीन कवियों की तरह दिवेदी युगीन कवियों ने भी देश के गौरवमय अतीत एवं दयनीय वर्तमान का चित्रण करके तत्कालीन शासन के विरूद अपना विद्रोह व्यक्त किया है। मैथिनीशरण गुप्त के शब्दों में -

है और सब नि:शेष केवन नाम ही अवशेष है।"।

इस दौर के किवयों ने ब्रिटिश सत्ता को पूरे साहस के साथ स्पष्ट ढंग से ननकारा है, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए उसके विरुद्ध सीधी कार्यवाही का ऐनान किया है और स्वतन्त्रता की बलिवेदी पर अपने को समर्पित कर देने का भाव व्यक्त किया है। किव त्रिशून तिनक के उद्घोष - "स्वतन्त्रता हमारा जन्म सिद्ध अधिकार है" - से स्वर मिलाते हुए कहते हैं -

"हमारा जन्मसिद्ध अधिकार, अगर छीनेगा कोई यार।

रहेंगे कब तक मन की मार, सहेंगे कब तक अत्याचार।।"2

श्री हरिराम पुजारी का विद्रोही स्वर दुर्दमनीय है। उनमें मातृ 
श्रीम के लिए हर कष्ट सहने का साहस है:

"टाँग दो शूली पे मुझको साल मेरी सीँव लो । दम निकलते तक सुनो हुँकार वन्देमातरम् । "3

माधव शुक्त ब्रिटिश सत्ता की हर यातना को सहकर भी 'होमस्स' ले लेने की बात करते हैं और अपनी हुँकार से लन्दन को प्रकम्पित कर देने का दम भरते हैं:

१०१ "नछोड़ेंगे, न छोड़ेंगे कभी यह टेक हम अपना ।
निकलती साँस तक बोलेंगे लेंगे होम रूल अपना ।।"3

<sup>।-</sup> भारत भारती - प्0 4, मेरिकीशरण गुप्त ।

<sup>2-</sup> त्रिगून तरंग - पृ० २०. कवि त्रिगून ।

<sup>3-</sup> स्वतन्त्रता की बंकार - पृ० । 2, हरिराम पुजारी ।

<sup>4-</sup> जागृत भारत - पृ० 35, माधव शुक्त ।

"सारी दुनिया काँप उठेगी दोषी दिल हिल जायेगा।

अाज भारती हुँकारों से लन्दन भी हिल जायेगा।"

भारतेन्दु युगीन किवयों की तरह दिवेदी युगीन किवयों ने भी देश की अर्थक विपन्नता का कारण धन निकासी 'या विलायती लूट को माना है। मैथिलीशरण गुप्त ने देश के कच्चे माल को विदेश जाने से रोक्ने एवं उसके उपयोग के लिए देश में कारखाना खोलने की बात कहकर ब्रिटिश अर्थतन्त्र पर सीधा हमला किया है:

> "अब तो उठो हे बन्धुओं, निजदेश की जय बोल दो। बनने लगें सब वस्तुएं कल कारखाने खोल दो। जावें यहाँ से और कच्चा माल अब बाहर नहीं। हो मेडइन के बाद बस अब इण्डिया ही सब कही।"2

ब्रिटिश शासन के उद्योग और अर्थतन्त्र के प्रति द्विवेदी युगीन कियों का विद्रोह उस समय और स्पष्ट हो जाता है जब वे स्वदेशी की बात करते हैं। स्वदेशी के प्रति उनकी दृदता भारतेन्द्र युगीन कियों की अपेक्षा अधिक है। विदेशी वस्तुओं के बहिष्कार के प्रति वे कृत संकल्प हैं:

"स्वदेशी वस्तु को स्वीकार कीजे।

\* \* \* \*

शयथ करके विदेशी वस्त्र त्यार्गे। "3

<sup>।-</sup> जारात भारत - पृ० 25, माधव शुक्न

<sup>2-</sup> भारत भारती - पू0 168, मैथिनीशरण गुप्त

<sup>3-</sup> सरस्वती - जुलाई 1930, 'स्वदेशी वस्त्र का स्वीकार' - महावीर प्रसाद द्विवेदी ।

सामाजिक एवं धार्मिक विसंगतियों के विरुद्ध इस युग के कवियों के विद्रोह का स्ख, तीखा होते हुए भी आमूल परिवर्तनकारी नहीं, बल्कि सुधारात्मक है। पर्दाप्था के विरुद्ध आवाज उठाते हुए श्याम बिहारी मिश्र कहते हैं -

"उठ जाती परदे की दु:खद निंद्ध वाल भी आज दिन। तो प्रमदा जन की दुर्दशा शेष न रहती एक दिन।"

मैथिलीशरण गुप्त ने समाज में व्याप्त विधवाओं के प्रति कृत्सित दृष्टिकोण एवं उनके साथ किये जाने वाले अमानवीय कृत्य के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए विधवाओं को कस्णा एवं पवित्रता की मूर्ति की संज्ञा दी है:

जातिगत भैद-भाव एवं छुत्रा-छूत के विरुद्ध इस काल के कवियों में एक वैवारिक विद्रोह दिखाई पड़ता है! वे इस रुद्धि को तोड़कर समाज में समरसता लाने के प्रक्षधर हैं! श्याम बिहारी मिश्र ने अपनी निम्न कविता में जातिगत भैद-भाव पर प्रहार किया है:

" क्या है चमार या डोम नहीं सुत मेरा १ क्या ब्राह्मन को ही मैंने दिया बसेरा १ क्या अन्त-वशु-जन से बमार की काया, नहिं पाली मैंने देह यथा दुजराया १<sup>\*3</sup>

<sup>।-</sup> भारत विनय - पृ० 59, रयाम विहारी मित्र ।

<sup>2-</sup> हिन्दू - प्0 ।। ?, मैथिलीशरण गुप्त ।

<sup>3-</sup> भारत विनय - प्0 15, श्याम बिहारी मिश्र 1

इस प्रकार दिवेदी युगीन किवता का विद्रोही स्वर व्यापकता में भारतेन्दु - युगीन किवता जैसा ही है, लेकिन तीव्रता, मुखरता एवं स्पष्टता में उससे बद्धकर है।

ग-छायावाद:-

छायावाद हिन्दी साहित्य में पुनर्जागरण का तृतीय एवं अन्तिम चरण है।
"जिस प्रकार बारहवीं एवं तेरहवीं सदी में शुरू होने वाले मध्य युगीन सांस्कृतिक पुनरूत्थान का चरमोत्कर्ष सोलवीं सदी के भिन्तकाच्य में हुआ है, उसी प्रकार उन्नीसवीं सदी के आधुनिक सांस्कृतिक जागरण का चरमोत्कर्ष बीसवीं सदी के छायावादी काच्य में हुआ है। 
छायावाद उस राष्ट्रीय जागरण की काच्यात्मक अभिव्यक्ति है, जो एक और पुरानी सिद्यों से मुक्ति चाहता था और दूसरी और विदेशी पराधीनता से। 2 इसीलिए छायावादी किता में पुरानी सामन्ती रुद्धियों एवं विदेशी पराधीनता से मुक्ति की कामना एवं विद्रोह की भावना विद्रमान है।

समाज की सामन्ती रुदियों के प्रति छायावादी किवयों का विद्रोह भारतेन्द्र एवं द्विवेदी युग की तरह सुधारात्मक एवं सामूहिक न होकर अमूल परिवर्तन की वैतना तथा वैयिक्तकता एवं स्वच्छन्दता की भावना से युक्त है। इन्होंने समाज की रुदियों के साथ - साथ उन नैतिकताओं एवं मर्यादाओं की अधिकाफत की है, जो व्यक्ति की वैयक्तिकता को कुवलती है और उसके आत्मप्रसार में बाधक है। "पंचवदी प्रसंग" में निराला के राम सीता से आत्म प्रसार एवं असीमितता की बात करते हुए, परिवार एवं समाज की लघुसीमा के प्रति जो अस्वि का भाव व्यक्त करते हैं, वह उनकी है निराला की है वैयक्तिकता या स्वच्छन्द वैतना का सामाजिक मर्यादाओं के प्रति विद्रोह है:

<sup>। -</sup> अधिनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - वृ० 48 , डाँ० नामवर सिंह ।

<sup>2-</sup> छायावाद - पृ० १७, डॉ० नामवर सिंह ।

"छोटे से घर की लघु सीमा में बंधे हैं क्षुद्र भाव यह सच है प्रिये प्रेम का पयोनिधि तो उमड़ता है सदा ही नि:सीमित भूमि पर ।" 'प्<u>वेचवटी प्रसंग</u>' <u>निराला</u>

छायावादी किवयों ने स्त्री-पुरुष के प्रणय सम्बन्ध में समाज की मर्यादा एवं नैतिकता को स्वीकार नहीं किया है। स्त्री के समाज-स्वीकृत पत्नी रूप को मर्यादाओं से जकड़ा हुआ एवं स्वच्छन्दता में बाधक समझ कर इन किवयों ने स्त्री को प्रिये, प्रियतमे, सिंख जैसे शब्दों से सम्बोधित किया है। प्रसाद के आसू पर्व प्रेम पिथक , पन्त के 'गृथि' एवं उच्छवास' स्वच्छन्द प्रणय-भावना के परिणाम है।

इस काव्यधारा के किवयों ने नारी को भोग्या से अधिक कुछ न समझने वाली सामन्ती सीच को अस्वीकार कर दिया है। उनका यह कार्य नारी विषयक सामन्ती धारणा के विरुद्ध विद्रोह ही है। युग-युगान्तर से रूदियों में केद नारी की पूर्ण स्वाधीनता की बात करते हुए पंत कहते हैं:

> "योनि नहीं है रे नारी, वह भी मानवी प्रतिष्ठित। उसे पूर्ण स्वाधीन करो वह रहे न नर पर अवसित। "!

समाज द्वारा निन्दनीय माना जाने वाला नारी का वैधव्य रूप छायावादी कवियों के लिए हेय एवं निन्दनीय नहीं है। उन्हेंव्ह'दीन दलित भारत की विधवा; इष्टदेव के मिन्दर की पूजा-सी, दीप शिखा-सी शान्त भाव में लीन दिखाई पड़ती है। "2 उनकी

<sup>।-</sup> ग्राम्या - प्० ८४, पंत ।

<sup>2-</sup> परिमल - पू0 126, 'विधवा', निराना ।

यह सोच विधवा विषयक पारम्परिक मान्यताओं के विरूद्ध बगावत ही है। छायावादी किवियों की नारी विषयक दृष्टि अपने पूर्ववर्ती भारतेन्दु युगीन एवं द्विवेदी युगीन कवियों से अधिक प्रगतिशील है। "द्विवेदी युग की कविता में नारी के प्रति दया का भाव तो है, पर यथोचित सम्मान का भाव नहीं है।"

'सरोज स्मृति' कविता में सामाजिक रूदियों के विरूद्ध निराला का विद्रोह एवं अस्वीकार का स्वर पूर्ण मुखर है:

> "ये कान्य कुब्ज - कुल कुलांगार, साकर पत्तल में करें छेद । उनके कर कन्या अधीद, \* \* \* तुम करो ब्याह, तोड़ता नियम । मैं सामाजिक योग के प्रथम । "2

छायावादी किवर्शों ने जहाँ वैयक्तिक स्वाधीनता के लिए समाज की सामन्ती मर्यादाओं के विरुद्ध विद्रोह किया है, वहीं राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध भी विद्रोह व्यक्त किया है। लेकिन, द्विवेदी युगीन किवर्शों की तरह उनके इस विद्रोह में मुखरता नहीं है। इसका कारण सम्भवत: तत्कालीन राजनीति में गांधी के सत्य-अहिंसा का प्रभावी होना है। इस दौर की किवताओं में देश के भूतकालिक गौरव , 'देशप्रेम' एवं 'जागरण' का जो भाव व्यक्त हुआ है वह पूरी तरह ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह से प्रेरित है। छायावादी किवर्शों में प्रसाद

<sup>। -</sup> छायावाद - पृ० 47, डाँ० नामवर सिंह ।

<sup>2-</sup> रामिवराम - श्रुंसरोज स्मृति ं किवता हूँ, सँ० रामिवनास शर्मा ।

ने देश के गौरव- मय अतीत का चित्रण सर्वाधिक किया है। देश के गौरव-वर्णन एवं उसकी रक्षा के लिए आत्म बलिदान के भाव से युक्त, प्रसाद की निम्न कविता में ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विरुद्ध विद्रोहकभाव पूर्णत: स्पष्ट है:

"वही है रक्त वही है देह, वही साहस है वैसा शान। वही है शान्ति वही है शिक्ति, वही हम दिव्य आर्य सन्तान। जियें तो सदा उसी के लिए, यही अभिमान रहे यह हम निछावर कर दें हम सर्वस्व, हमारा प्यारा भारतवर्ष।।"

'पेशोला की प्रतिध्विन' किवता में प्रसाद ने महाराणा प्रताप के चरित्र के माध्यम से पराधीन भारतीयों को आत्म गौरव का बोध कराया है और "शैर सिंह का शस्त्र समर्पण " किवता में शेर सिंह के माध्यम से ब्रिटिश सत्ता को लजकारा है:

"आज विजयी हो तुम । और हैं पराजित हम तुम तो कहोगे इतिहास भी कहेगा यही किन्तु यह विजय प्रशंसा भरी मन की एक छनना है।"

निराला की - "छत्रपति शिवाजी का पत्र"एवं "जागी फिर एक बार " कविता में गौरव बोध, जातीय एकता का भाव एवं ब्रिटिश साम्राज्यवाद के विस्द विद्रोह की हुँकार - निहित है:

"एकी भूत शिक्तयोँ से एक ही परिवार
फेले सैवेदना
व्यक्ति का सिवाव यदि जाति से हो जाय
देखी परिणाम फिर

<sup>।-</sup> स्कन्द गुप्त - वृ० 133 प्रसाद

स्थिर न रहेंगे पैर पस्त है। सला होगा ध्वस्त होगा साम्राज्य - - - -हिन्दुस्तान मुक्त होगा घोर अपमान से दासता के पाश कट जायेंगे। "

"जागो फिर एक बार" किवता में 'निराला' ने अकाली सिक्खों में ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह जगाया है:

"शैर की माँद मैं आया है आज स्यार जागी फिर एक बार 1<sup>°2</sup>

भारतेन्द् युग एवं द्विदी युग की तरह छायावादी किवता में साम्राज्यवादी शोषण के विरुद्ध विद्रोह का भाव तो व्यक्त ही हुआ है, लेकिन इस काल के उत्तराई में पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध भी स्वर उठने लगे हैं। कारण, कल-कारखानों की स्थापना के कारण इस समय तक देश में ही एक पूंजीवादी वर्ग का जन्म हो गया था, और उसने भी देश की जनता का शोषण करना शुरू कर दिया था। इस काल के उत्तराई में, पूंजीवादी शोषण के विरुद्ध विद्रोध, साम्यवाद की कामना एवं वर्ग संघर्ष को विशेष रूप से उभारा गया है, जिसे मुख्यत: पंत एवं निराला की कविताओं में देशा जा सकता है। पंत ने पूंजीपतियों को श्रीमकों के अम का शोषक ', 'नृशंस' एवं ' जींक' कह कर सम्बोधित किया है -

I - अपरा - प्0 80 - 81 |

<sup>2-</sup> रागविराम - पृं0 58 हैं कविता, "जामो फिर एक बार" हैं, सैं0 रामविलास शर्मा

"वे नृशंस हैं वे जन के श्रमबल से पोषित । दुहरेधनी, जोंक जग के, भू जिनसे शोषित ।"

पूँजीवाद एवं शोषण के विरुद्ध विद्रोह की ज्वाला निराला की "कुकुरमुत्ता" कविता में एकदम प्रसर है। सर्वहारा "कुकुर मुत्ता" के माध्यम से शोषक 'गुलाब' के प्रति निराला का विद्रोह एवं आकृशि कुछ इस प्रकार है:

"अबे ! सुन बे गुलाब भूल मत जो पाई सुशबू, रंगो आब सून चूसा साद का तूने अशिष्ट डाल पर इतरा रहा कैपीटलिस्ट !"<sup>2</sup>

पूँजीवाद एवं शोषण के विरूद जिस विद्रोह की अभिव्यक्ति छायावाद के उत्तरार्द में हुई है, उसी का विकसित रूप आगे का कर प्रगतिवाद में दिखाई पड़ता है।

- 5- सन् 1936 के बाद की कविता : विद्रोह का स्वरूप :-
- इंक इंग्रितवाद :- प्रगतिवाद की स्थिति अपनी पूर्ववर्ती का व्यथाराओं से भिन्न है।
  "वह राजनीतिक जागरण की उपज है, सामाजिक-सांस्कृतिक जागरण की नहीं।"
  "प्रगतिवाद का आरम्भ साहित्य में अर्थिक और राजनीतिक आन्दोलन के रूप में हुआ
  है। देशकी विशेष राजनीतिक परिस्थितियों के कारण - - पहले वाला
  व्यापक सांस्कृतिक-सामाजिक जागरण अब केवल राजनीति में केन्द्रित हो गया।"4

<sup>। -</sup> युग पथ - प्0 3। ई क्ष्मपति किता है, पत । 2- राग विरुग्ग - पू0 145, ई कुक्र मुत्ता किता है सै0 रामविलास शर्मा ।

<sup>3-</sup> बाधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ० ८४, डाँ० नामवर सिंह ।

बीसवीं शताब्दी के वौधे दशक तक अति-अते देश में पूंजीवादी शोषण का स्वरूप स्पष्ट हो गया, जिससे अवने के लिए विस्तान-मजदूर संगठित हुए और मार्क्सवादी चिन्तन को स्वीकृति मिलने लगी। 1930 के बाद कांग्रेंस के अन्दर वामपंथी गृट शिर उठाने लगा । इसी राजनीतिक एवं आधिक पृष्ठभूमि में साहित्य में मार्क्सवादी चिन्तन का प्रवेश हुआ । प्रगतिवाद मार्क्सवाद से प्रभावित है । इसी प्रभाव के क्लते इस काव्यक्षारा ने देश में गतिशील साम्राज्यवादी, पूंजीवादी, एवं सामन्तवादी शक्तियों के प्रति विद्रोह व्यक्त करते हुए सर्वहारा का समर्थन किया है । इस धारा के कवियों का विद्रोह सामृहिक एवं विरुवंसात्मक है । इन कवियों ने सामाज एवं मानव जीवन की सारी समस्याओं को शोषण एवं "आर्थिक सम्बन्धों की विषमता" से सम्बन्धित माना है । अत: इनका सारा विद्रोह शोषण एवं आर्थिक विषमता से सम्बन्धित माना है । अत: इनका सारा

तत्कालीन ब्रिटिश सत्ता के प्रति प्रगतिवादी कविता का विद्रोह काफी तीसा है। इसका कारण, स्वतन्त्रता आन्दोलन में वामपंथी विवारों के प्रभाव का बद्धना तथा महात्मा गाँधी के सत्य-अहिंसां एवं सत्याग्रह से लोगों के मोह का भंग होना है। उदय शंकर भट्ट ब्रिटिश सत्ता को ललकारते हुए तथा देश की जनता को उसके विरुद्ध सत्तीजित करते हुथे कहते हैं:-

"ये और कीट से लक्ष्यासक,
ये और कीट से राजतन्त्र
मेरे आगे क्ष्य ठहर सके,
में महानाश की महामन्त्र !"

<sup>1-</sup> किंग के दी स्थ - विशाल भारत-फरवरी 1939 प्0 1421

गोपाल सिंह नेपाली पराधीनता से मुक्ति पाने के लिए ब्रिटिश सत्ता के विरूद शिक्त संगठित करने की बात कहते हैं:

> "जंजीर दूटती कभी न अशुधार से, दु:ख दर्द भागते नहीं दुलार से। हटती न दासता पुकार से गृहार से, इस गंगतीर बैठ आज राष्ट्र शक्ति की तुम कामना करो किशोर कामना करो।"

प्रगतिवादी किवता ने मात्र साम्राज्यवादी शोषण के विस्दर्शकावाज नहीं उठाई है, बिल्क उसने पूरे पूँजीवादी शोषण के विस्द बगावत की है। शोषण के परिणाम स्वस्प उत्पन्न आर्थिक विषमता एवं गरीबी का जो चित्र 'सुमन' ने अपनी निम्न किवता में प्रस्तुत किया है, वह त्रासद होने के साथ-साथ व्यवस्था के विस्द विद्रोह का भाव पैदा करने वाला भी है। भूषा आदमी गोबर से दाना बीनने एवं कुत्ते के मुँह से रोटी छीनने के लिए लाचार है:

"हत भूता मानव बैठा, गोबर से दाना बीन रहा। और इपट कुल्ते के मुह से, जूठी रोटी छीन रहा।।"2

दितीय विश्व युद्ध के दौरान बद्धी महंगायी से पीड़ित जनता महंगाई का कारण नहीं जानती । वह महंगाईजन्य पीड़ा को अपने पूर्व जन्म का फल समझती है । त्रिलोचनशास्त्री ने इस सारी रियति को भोरहा केवट के माध्यम से प्रस्तुत किया है :

> "बाबू इस महिगाई के मारे किसी तरह अब तो और नहीं जिया जाता और कब तक क्लेगी लड़ाई यह १ ----इस अकारण पीड़ा का भीरहा उपचार कौन-सा करता वह तो इसे पूर्व जन्म का प्रसाद कहता था

<sup>।-</sup> नवीन - प्0 ।, गौपाल सिंह नेपाली ।

<sup>2-</sup> जीवन के गान - पूछ 79, शिव मैंगल सिंह सुमन ।

राष्ट्रों के स्वार्थ और कूटनीति पूँजीपतियों की चाले वह समझे तो कैसे १<sup>\* ।</sup>

प्रगतिवादी कविता का विद्रोह मात्र - 'शोषण के कारण' एवं 'शोषितों की दयनीय दशा' - के चित्रण तक ही सीमित नहीं है। उसने शोषकों के विरुद्ध किसानों मजदूरों का आह्वान करके अपने विद्रोह को वर्ग संघर्ष तक बद्धाया है। शिव मंगल सिंह सुमन किसानों मजदूरों को शोषकों के विरुद्ध प्रेरित करते हुए कहते हैं:

"तुम गर्जो आज,प्रलय होगी, शोषक वर्गों की छ्य होगी।
दुनिया के कोने-कोने में, मज्जूमों की जय-जय होगी।"<sup>2</sup>
'अमीरों की हवेली' पर अधिकार करने के लिए निराला शोषितों को कुछ इस तरह
आहूत करते हैं:

"जल्द-जल्द पैर बदाजो, आजो, आजो आज अमीरों की हवेली किसानों की होगी पाठ्याला धोबी, पासी, चमार, तेली स्रोलेंग अंधेरे का ताला। "3

प्रगतिवादी कविता ने परम्परागत सामाजिक एवं धार्मिक व्यवस्था को पूँजी -वादी अर्थतन्त्र की तरह ही जाम जनता का शौषक माना है। इस धारा के कवियों ने धर्म एवं ईशवर सम्बन्धी अवधारणा के विरुद्ध विद्रोह किया है। सामन्ती व्यवस्था

<sup>।-</sup> धरती - पु० 82, त्रिलीवन शास्त्री ।

<sup>2-</sup> जीवन के गान - प्0 84, सुमन ।

<sup>3-</sup> बेला - प्0 78, निराला ।

चिरकाल से इन्हीं दोनों के सहारे समाज के बहु संख्यकों का शोषण करती आयी है। इसके पोषक अपनी सम्पन्नता और जातीय श्रेष्ठता तथा अन्य लोगों की जातीय न्यूनता एवं आर्थिक विपन्नता को ईश्वरीय विधान बताकर अपने द्वारा किये जा रहे शोषण की तार्किकता स्थापित करते रहे हैं और धर्म के नाम पर लोगों को ठगते रहे हैं। अंकल ने ईश्वर को आत्म प्रवंक्क एवं नरेन्द्र शर्मा ने उसे दु:स, दर्द का जनक कह कर उसकी उपयोगिता पर प्रशन-चिन्ह लगाया है:

"उपर बहुत दूर है शायद, आत्म प्रवंक एक ।
जिसके प्राणों में विस्मृत है, उर में सुख श्री का अतिरेक ।।" ।
जिसे तुम कहते हो भगवान - - - ।
जो बरसाता है जीवन में
रोग - शोक दु:स दैन्य अपार - - - ।
उसे सुनाने की पूकार १" 2

प्रगतिवादी किवयों ने जाति वैषम्य को नकारा है। उनकी दृष्टि में जातीय विषमता आर्थिक विसंगतियों का परिणाम है। शिव मंगल सिंह सुमन जाति धर्म के भेद को भूख की डोर में बंधा हुआ मानते हैं -

> "जाति धर्म के मेद यहाँ सब, बंधे भूख की डोर । हिन्दू मुस्लिम सींच रहे पर अपनी-अपनी और ।"3

संक्षेप में प्रगतिवादी किवता का विद्रोह विश्वेसात्मक, आमूल परिवर्तन की वेतना से युक्त, एवं सामूहिक है। इसका सारा विद्रोह शोषण एवं आर्थिक सम्बन्धों की विषमता से प्रेरित है।

<sup>। -</sup> मध्लिका - प्0 8, वैंक्स

<sup>2-</sup> प्रभात फेरी - पृ० 8, नरेन्द्र शर्मा

<sup>3-</sup> पुलय सुजन - प्0 82, शिवमंगल सिंह सुमन !

१ थे प्रयोगवाद :- मार्क्सवादी सिद्धान्तों पर अत्यधिक बल देने के कारण प्रगतिवाद जहाँ एक और, उसका प्रवार तन्त्र बन गया, वहीं दूसरी और उसकी प्रगतिशालता कृणिकत हो गयी और कलाणक्ष ध्रुंखला पड़ गया । वर्गमृत्य या सामाजिकता के प्रति अपनी अतिशय प्रतिबद्धता के कारण उसने व्यक्ति मृत्यों को नजरन्दाज कर दिया । प्रगतिवाद अपनी इन न्यूनताओं के कारण दितीय विश्व युद्ध के फलस्वरूप राष्ट्रीय एवं अन्तर्राष्ट्रीय परिवेश में उत्पन्न संकट, संत्रास एवं विसंगतियों को स्वर देने में अक्षम हो गया । ऐसी स्थित में अस्तितत्ववाद, मनोविश्लेषण एवं इन्द्रात्मक भौतिकवाद से शिक्त प्राप्त करके प्रयोगवाद नामक एक नयी काव्यधारा अभ्युदित हुई, जिसका समय सन् 1940 से 1950 के मध्य रहा है । इस काव्यधारा के किवयों ने वस्तु एवं शिल्प के क्षेत्र में नये प्रयोग पर बल दिया । फलत: 'प्रयोगवाद' नाम इसके लिए स्द हो गया ।

इस काव्यधारा का विद्रोह प्राय: उन राजनैतिक, सामाजिक एवं आर्थिक विसंगितियों के प्रति है, जो दितीय विश्व युद्ध के परिणाम स्वरूप या तो उत्पन्न हुई थीं या और जिटल हुई थीं। दितीय विश्व युद्ध के कारण स्वतन्त्रता आन्दोलन को काफी झटका लगा और पूरे देश में एक संशय का वातावरण छा गया। ऐसे समय में कुछ लोग अंग्रेजों के खिलाफ आन्दोलन को तेज करना चाहते थे, जबकि गाँधी जी के नैतृत्व में कुछ लोग अंग्रेजों की मजबूरी का फायदा न उठाकर उनका कुछ सहयोग करने के पक्ष में थे। युद्ध के कारण, देश की पहले से ही खराब आर्थिक स्थिति, और खराब हो गयी। बंगाल के अकाल ने लोगों को हिला दिया। मंहगाई एवं दरिद्रता के कारण लोग व्याकुल हो उठे। ब्रिटिश सत्ता द्वारा दमन की प्रक्रिया पूर्ववत जारी रही। इन्हीं बरिस्थितियों ने किवयों को विद्रोह करने के लिए बाध्य किया।

प्योगवाद में दो प्रकार की प्रवृत्ति वाने किव हैं - एक जनवादी प्रगतिशील दूसरे व्यक्तिवादी प्रयोगशील । प्रयोगवाद के प्रगतिशील किवयों का विद्रोह वैयक्तिक न होकर सामाजिक है । उन्होंने शोषण करने वाली जनविरोधी शक्तियों की खिलाफद की है । पूँजीवादी व्यवस्था के प्रति प्रभाकर माक्की का विद्रोह उनकी निम्न किवता में देखा जा सकता है :

"बढ़ती शोषण यन्त्र क्रिया श बीसवीं सदी ने यही दिया श जबिक किसी के घर अनेक जनते हों विद्युद्धीय देख ! तब होगी ही कोई कृटिया जिसमें जनता होगा न दिया - - - - पूँजी के युग का अस्तकान ।"!

पूँजीपतियों के प्रति भारत भूषण अग्रवाल का विद्रोही भाव उनकी मंखूरी के प्रति किवता में संचित है, जिसमें उन्होंने शोषकों को, भविष्य में, शोषितों में पनपने वाली शिक्त से आगाह किया है:

"आज के मन्दिर सुख में, रंगीनी में भूली री अलका।
कुछ तो ध्यान भी है कलका शोषित दल के उठते बलका।।"2
रामिवनास शर्मा की निम्न कविता में विद्रोह की गूंज मुखरित है, जिसमें उन्होंने देश
के 'नोजवानों' को शोषकों, लुटेरों एवं सारी विसंगतियों से देश की रक्षा के लिए
आहत किया है:

<sup>। –</sup> तार सप्तक – पू० 154 + 55, प्रभाकर माचवे सं० अत्रेय ।

<sup>2-</sup> तार सप्तक - पू० 95, भारत भूषण अग्रवाल , सं० अज्ञेम ।

"दुर्भिक्ष महामारी से, दुष्ट लुटेरों से आओ यह अपना प्यारा देश बवाओ नौजवान भारत के।"

शोषण अत्याचार एवं अन्याय के प्रति विद्रोह मुन्तिबोध की कविता की एक सास विशेषता है। निम्न कविता में उनके विद्रोह की ज्वाला दहकती प्रतीत होती है:

"मैं जन्मा जबसे इस साले ने कष्ट दिया। उल्लूका पद्ठा कन्धे पर खड़ा हुआ।।"2

नेमिवन्द्र जैन की 'व्यर्थ' शीर्षक किता में प्रगति के मार्ग में विद्यमान सारे अवरोधों के प्रति विद्रोह की हुंकार सुनाई पड़ती है। उनकी फड़कती बाहें सारे अवरोधों को उखाड़ फेक्ने के लिए उत्तेजित है:

> "किन्तु में हारा नहीं हूं पड़कती है अभी बाँह कि अपने मार्ग के अवरोध सारे तोड़ दूं।"<sup>3</sup>

जहाँ तक प्रयोगवाद के प्रयोगशील कियाँ की बात है, तो उनके द्वारा अपनी वैयक्तिकता की रक्षा, स्वतन्त्र विचारों के सम्प्रेषण एवं नित नये प्रयोग के लिए साहित्यि राजनीतिक आदि सारे मतवादों को अस्वीकार किया जाना उनकी विद्रोहशीलता काहीपरिचायक है। लेकिन "जिस वाद का विरोध प्रयोगशील कियाँ ने किया वही प्रयोग के दौरान प्रयोगवाद बनकर स्थिर हो गया।"

<sup>। -</sup> तार सप्तक - पृ० २४२, रामितनास शर्मा, सं० अनेय ।

<sup>2-</sup> तार सप्तक - पृ० 40, मुक्तिबोध, सं० अत्रेय ।

<sup>3-</sup> तार सप्तक - पृ० 69-70 नेमिवन्द्र जैन, सै० अक्रेय ।

<sup>4-</sup> अधिनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - पृ० 126 - 27, डाँ० नामवर सिंह ।

प्रयोगशील किव वरम व्यक्तिवादी हैं। उनके विद्रोह में व्यक्तिवादिता है। सारी रुद्धियों एवं विसंगतियों के विरुद्ध उनके द्वारा किया गया विद्रोह आत्म रक्षा के लिए है, जनकत्याण के लिए नहीं । "किसान - मजदूर चूल्हे भाड़ में जायें, निम्न मध्यवर्ग का यह बुद्धिजीवी व्यक्ति कुछ और उस्वे बद्ध जाय। इस तरह इस विद्रोही किव का उच्चमध्यवर्ग एवं उसकी समाज व्यवस्था के प्रति सारा अस्तोष और युयुत्स भाव अन्त में इस प्रस्ताव पर खत्म हुआ, कि उसे संरक्ष्म प्राप्त है।"

संक्षेप में, प्रयोगवाद में वस्तु एवं शिल्म के क्षेत्र में नये प्रयोगों पर बल देने वालीजनवादी-प्रगतिशील एवं व्यक्तिवादी प्रयोगशील - दो काव्य धारायें विद्यमान हैं ।
पहली काव्यधारा की विद्रोही केतना जनवादी है, जबिक दूसरी काव्यधारा की विद्रोही
केतना व्यक्तिवादी है। प्रयोगवाद के बाद नयी किता नामक जो काव्यधारा
प्रवाहित हुई, वह बहुत कुछ प्रयोगवाद की इसी जनवादी प्रगतिशील काव्यधारा का
सरल स्वाभाविक विकास है, जिसमें वस्तु एवं शिल्मगत नये प्रयोगों के प्रति आग्रह
नहीं है।

हुगहुँ न्यो क्विता : - नयी किवता प्रयोगवाद का उत्तरवर्ती स्वरूप है। यह उसकी प्रतिक्रिया नहीं, बित्क स्वाभाविक विकास है। किवयों ने किवता में वस्तु एवं शित्य के नये प्रयोग के प्रति अपने आग्रह का परित्याग करके किवता को वादहीन, सरल एवं स्वाभाविक धरातल प्रदान किया, जिसके परिणामस्वरूप नयीकिवता का स्वरूप निर्मित हुआ । यहाँप नयी किवता का विधिवत विकास 1954 में डाँ० राम - स्वरूप व्यविदी एवं डाँ० जगदीश गुप्त द्वारा सम्यादित "नयी किवता " पत्रिका के

<sup>।-</sup> अधिनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ - प्० । ३। - ३२, डाँ० नामवर सिंह ।

पुकाशन से हुआ, लेकिन 1950 के बाद की किता को डाँ० शम्भूनाथ सिंह ने नियी - किता माना है। नियी किता की उत्तरवर्ती सीमा सन् 1960 को माना जा सकता है, क्योंकि वस्तु एवं शित्म की भिन्नता के कारण इसके बाद की किता को 'साठोत्तरी किता' नाम दिया गया है।

राजनैतिक दृष्टि से हम कह सकते हैं कि नयी किवता नेहरू युग की किवता है। स्वतन्त्रता के बाद देश में एक नयी आशा, विश्वास एवं उत्साह का संवार हुआ, लेकिन नेहरू के नेतृत्व वाली सरकार जनता की आशा, विश्वास एवं उत्साह को बरकरार न रख सकी। स्वतन्त्रता एवं प्रजातन्त्र की छत्र-छाया में बद्दे शोषण, आर्थिक विषमता तथा भ्रष्टाचार से लोगों में बुग्ठा, निराशा, वेदना, पीड़ा, आकृशि एवं विद्रोह का भाव पनपने लगा, जिसकी अभिव्यक्ति नयी किवता में हुई है। 'नयी किवता' के शुरूआत में वेदना, पीड़ाबोध, बुग्ठा एवं निराशा के स्वर पृखर हैं और आकृशि एवं विद्रोह के स्वर मन्द हैं। कारण, विसंगतियों को भोगते हुए भी लोगों में स्वतन्त्रता एवं शासन के प्रति मोह एवं विश्वास कायम था। जेसे - जेसे विश्वास एवं आशा के आधार सिसकते गये और मोह-भंग होता गया, वेसे-वेसे नयी किवता में विद्रोह के स्वर प्रखर होते गये।

मुनि रूपवन्द ने 'अधीवराम' किवता संग्रह की 'एक सवाल' किवता में समाजवादी मूत्य, आजादी एवं लोकतन्त्रीय व्यवस्था के प्रति अपना विद्रोह प्रकट किया है, क्योंकि ये सब तथाकियत हैं, उनकी सच्चाई शब्दों तक ही सीमित है:

<sup>। -</sup> प्रयोगवाद एवं नयी केविता - पृ० 145, डाँ० शम्भूनाथ सिंह ।

"जिस देश ने लोक तन्त्रीय व्यवस्था दी
उसने अपने नागरिकों को समान अधिकार भी दिये हैं १
हर पन्द्रह उगस्त को धूम-धाम से मनाने वाली जनता ने क्या कभी
आजादी के साँस भी जिये हैं १
क्या हम झूठी मान्यताओं के किले को आज भी तोड़ सके हैं १
समाजवादी मूल्यों का ढोल पीटते हुए भी
साम्राज्यवादी मूल्यों को छोड़ सके हैं १
"

मुक्तिबोध की किवतायें तो विद्रोही क्यानों से ही बनी हैं। विद्रोह का जैसा तीखापन उनकी किवताओं में है, वैसा तीखापन शायद ही किसी की किवता में दिखायी पड़े। व्यवस्था के शोषक चरित्र के विरुद्ध विद्रोह की एक तीखी वैतना मुक्तिबोध की निम्न किवता में विद्यमान है:

"पृशोषण सभ्यता की दुष्टता के भव्य देश में तोड़ने होंगे मठ गद सब पहुँचना होगा, दुर्गम पहाड़ के उस पार 1"2

राजीव सक्सेना के काव्य संग्रह "आत्मिनवासिन एवं अन्य कवितायें" में भारतीय प्रजातन्त्र के कर्णधार शोषक नेताओं के प्रति विद्रोह का भाव निहित है। वै उन्हें फटकारते हुए कहते हैं:

> "पूर्नों का गुनदस्ता और पत्नों का रस नेकर प्यार का आंसू बहाने वाले जो आध्यात्मिक : मेरी बाँखों के सामने से हटजाओं।"3

He did a did a condi-

<sup>। -</sup> अधिवराम - पृ० 21-22 - मुनि रूप वन्द ।

<sup>2-</sup> वाँद का मुँह टेढ़ा - पृ० 299 - मुक्तिबोध ।

<sup>3-</sup> अत्य निर्वासन तथा अन्य कवितार्थं - पृ० १४ , राजीव सक्सेना ।

राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों से हटकर धार्मिक एवं सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध भी 'नयी कविता' ने आवाज उठाई है। उसने उस ईश्वर पर प्रहार किया है जो धर्म एवं समाज का केन्द्र है और जिसकी आड़ में धर्म एवं समाज के ठेकेदारों ने अनेक कुरीतियों को जन्म दिया है। उसकी दृष्टि में ईश्वर समाज में व्याप्त असमानता का जनक है:

"मर गया ईरवर विषमता का सहायक मर गया आदमी के हाथ में ही आदमी का भाग्य देकर विश्व का देवी विधायक मर गया - - - - साईस की किरणों ने मारा मर गया वहम का पर्दा उघाड़ा मर गया आदमी ने जब तलक पूजा अधिरे में उसे जिन्दा रहा रोशनी के सामने ज्योंही पूकारा मर गया।"

तथाकि धर्म के प्रतीक मिन्दरों, मठों, पोथियों एवं पत्थरों पर प्रहार करते हुए रणजीत धर्म को अमान्य घोषित करते हैं:

"नफरत है मुझे अपने धर्म से
पीथियों और पत्थरों का है धर्म मेरा
नीगे सारी रों एवं माँगी हुई रोटियों का है धर्म मेरा
नफरत है - - - - मठों और मन्दिरों से। "2

इस प्रकार नयी कविता में तद्युगीन राजनैतिक, आर्थिक, धार्मिक एवं सामाजिक विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह की वेतना विद्यमान है। लेकिन जहाँ तक

<sup>। -</sup> ये सपने ये प्रेत - पृ० ।। , रणजीत । 2- - वही - प्० ४१

राजनैतिक - आर्थिक विसंगतियों के विरुद्ध विद्रोह की बात है, तो वह नयी कवितां की शुस्त्रात में कम प्रखर था। जैसे - जैसे समय बीतता गया और स्वदेशी शासन से मोह भंग होता गया, वैसे - वैसे इस कविता का सत्ता एवं अर्थव्यवस्था के विरुद्ध विद्रोही तेवर तीखा होता गया। नयी कविता में स्वदेशी व्यवस्था के विरुद्ध कसमसाने वाला विद्रोही भाव साठोत्तरी कविता में अंग्ड़ाई लेने लगता है। कारण, सन् 1960 तक पहुँचते - पहुँचते निरन्तर जनविरोधी रुख अख्तियार करने वाले व्यवस्थ तन्त्र से जनता एवं कवियों का सारा मोह पूर्णत: समाप्त हो गया और उसके विरुद्ध उनके मन में घृणा, आकृशेश एवं अस्वीकार की तीखी अनुभूति की उत्पत्ति हुई जिससे विद्रोह एकदम प्रबल हो उठा।

# अध्याय - तीन

# 1960 के बाद की हिन्दी कविता : पृष्ठभूमि एवं परिवेश

साठौत्तरी हिन्दी कृतिता से तात्पर्य, हिन्दी की उन कितताओं से है, किनी रक्ता सन् 1960 के बाद है छठे दशक के बाद है हुई है। यदि राजनीतिक शब्दावली में कहना वाहें,तो कह सकते हैं कि नैहरू युग के अवसान के बाद की हिन्दी किता साठौत्तरी कितता है। डाँठ नामवर सिंह के शब्दों में "साठ की जगह बासठ, तिरसठ, चौसठ जो चाहें कह लीजिए, क्योंकि यह कोई पत्र का मुहूर्त नहीं है। राजनीतिक स्तर पर इसे चीनी या पाकिस्तानी हमले से जोड़ने से लेकर भी ज्यादा बहस नहीं है और न बहस है नेहरू की मृत्यु तिथि से इसका तालमेल बिठाने के सवाल को लेकर। विभाजन का आधार कोई भी घटना मानी जाये, तथ्य यही है कि छठे दशक के साथ एक युगान्त की धारणा पुष्ट हो जाती है, जिसे सुविधा के लिए राजनीतिक भाषा में नेहरू युग का बन्त कह सकते हैं।"

साठोत्तरी किंता विरोध, बाढ़ोश, बस्तीकार या विद्रोह की किंता है। इसमें विद्यान विरोध या विद्रोह नेहरू यूग'एवं उसके बाद की राजनीतिक, बार्षिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों का परिणाम है। 1947 से लेकर 1960 तक की स्वतन्त्र भारत की परिशिक्षितयों ने साठौत्तरी किंवता को वाधार दिया है और उसके बाद की परिश्वितयों ने इसे विकत्तित किया है। बत: इन्हें समझे बिना इस किंवता में निहित विद्रोह, बाढ़ोश तथा बन्य मनौभावों को बच्छी तरह नहीं समझा जा सहता है।

राजनीतिक विसंगति :- 15 बगस्त 1947 की ब्रिटेन के साम्राज्यवादी एवं उपनिवेश -

26 जनवरी 1950 को लोकतन्त्रात्मकता, धर्मीनरपेक्षता एवं समाजवाद की भावना से पूर्ण तथा समस्त नागरिकों को सामाजिक, बार्थिक और राजनीतिक न्याय, विवार अभिव्यक्ति, विश्वास, धर्म एवं उपासना की स्वतन्त्रता, प्रतिष्ठा और अवसर की समानता प्रदान करने के संकल्प से युक्त संविधान लागु किया गया। संविधान की मान्यताओं, नियमों एवं सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप प्रदान करने का उत्तरदायित्व काँग्रेस को मिला, क्योंकि स्वतन्त्रता के बाद नेहरू के नेतत्व में काँग्रेस ने ही देश के शास्त की बागडोर सम्भाली और देश की सत्ता पर पाय: उसका ही वर्वस्व रहा। कांगेसी शासन पारम्भ से ही संवेधानिक मान्यतावों नियमों एवं सिद्धान्तों को व्यावहारिक रूप देने में असकत रहा है। इसका मुख्य कारण यह था कि स्वतन्त्रता के पूर्व काँग्रेस विभिन्न विचारधारा वाले लोगों का एक संगठन था. इसकी वपनी कोई निश्चित विवारधारा नहीं थी । छोटे किसान से लेकर जमींदार तक पूँजीपति से तेकर सामन्त तक, सामन्य व्यक्ति से तेकर बुद्धिजीवी तक सब लोग ब्रिटिश सत्ता से अपने निजी हितों की सरक्षा के लिए इसका समर्थन करते थे। खतन्त्रता प्राप्ति के बाद एक राजनीतिक दल बन जाने पर भी इसकी वपनी कोई निश्चित विवासधारा नहीं स्थापित हो सकी बोर पहले की ही तरह इसमें विकिन्न विवारधार, उद्देश्य एवं हित वाले लोग बने रहे। विकिन्न विवारधारा, उद्देश्य एवं हित वाले लोगों का राजनीतिक संगठन होने के कारण कांग्रेस' अपने शासन के दौरान संविधान का विधिवत बनुपालन नहीं कर सकी, व्यॉकि ऐसा करने पर उसके सदस्यों एवं समर्थकों के परस्पर विरोधी विवासी और उद्देश्यों में टकराइट स्वाभाविक थी । इस टकराव

<sup>!-</sup> कारत का सिक्सल : एक परितयः - पृथ् 2! - ठी०डी० वसु -अनुवादक क्रम विश्वीर सर्ग ।

से बक्ने के लिए काँग्रेस ने वास्तिवकता से मुँह मोड़ लिया और अपने हित में समझौता एवं तुष्टीकरण का मार्ग अपनाया।

काँग्रेस समाजवाद का राग भने ही अलापती रही, लेकिन समाजवाद के दरें पर वह एक कदम भी नहीं कल सकी । कारण, स्वतन्त्रता के पहले से ही उसकी पूँजी - पितयों से धनिष्टता रही है और स्वतन्त्रता के बाद उसके कोष में धन पूँजीपितयों की तिजोरियों से आता रहा है । काँग्रेस की तथाकथित समाजवादी घोषणाओं से पूँजीपित कभी चिन्तित भी नहीं हुए । वे इस सच्चाई को भनी भाँति जानते थे कि ये घोषणायें भाषणों एवं कागजों तक ही है । समाजवाद जनता को आकृष्ट करने वाला मुखौटा है, जिसे सत्ता ने अपने मुख पर लगा रखा है । कृष्णकान्त मित्र के शब्दों में - " 1956 में विङ्ला ने सार्वजनिक रूप से कहा कि वे काँग्रेस दल के समाज - वादी विवारों से सहमत हैं । उसके बाद फेडरेशन आँफ इण्डियन वेम्बर्स आफ कामर्स ने भी विङ्ला के वस्तव्य का समर्थन किया । अतः यह पूँछा जा सकता है कि यह काँग्रेसी समाजवाद कैसा समाजवाद है, जिसका समर्थन विङ्ला जैसे पूँजीपित भी करते हैं ।

सामन्ती ताकतों के प्रति भी काँग्रेस का रवेया बड़ा दुलमुल रहा है।
स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद इस वर्ग के विरुद्ध काँग्रेस द्वारा उठाया गया सेद्वान्तिक
कदम जमींदारी उन्मूलन था। लेकिन वह अपने इस कदम को व्यावहारिक रूप देने में
कसपल रही। कारण, सामन्त एवं जमींदार काँग्रेस के एक सबल वंग थे। उसके
इस कदम से इस वर्ग का बहित स्वाभाविक था। बत: जमीदारी उन्मूलन के ऐसे

<sup>।-</sup> शारत की राजनीतिक क्रणानी - पू0 277, क्रणकान्त मित्र ।

नियम बनाये गये, जिसमें बहुत से छिद्र थे। नियम की कमजोरी के वलते जमीं दार वर्ग प्राय: अपनी जमीन को बवाने में सफल हो गये। जमीं दारों की भूमि के अधिग्रहण का कार्य अधिशक रूप में ही सफल हुआ।

वास्तिवकता तो यह है कि स्वतन्त्रता के बाद काँग्रेस ने देश की किसी भी समस्या का प्रयोग अपने हित में किया। उसने उसके समुचित समाधान के लिए कोई ठौस कदम नहीं उठाया, बल्कि ताल्कालिक राहत प्रदान करके जनता को अपनी और आकृष्ट किया और स्वहित में पुनर्प्योग के लिए समस्या को देसे बने रहने दिया। जिल्ला समस्याय देश के विभिन्न भागों में भड़कती रही हैं, वे काँग्रेस की राहत में समाधान दूँढने की नीति का परिणाम है। काँग्रेस के कथन एवं कार्य के मध्य सदैव एक बहुत बड़ी साई विद्यमान रही है। उसने भाषणों, बाँकज़ों एवं नारों से सदैव उसे पाटने का प्रयास किया है। कुछ न करते हुए भी वह जनता को भविष्य में बहुत कुछ कर देने का विश्वास दिनाने में समर्थ रही और जनता भी विकल्पहीनता की स्थिति में एक बार और, इस सैर्य के साथ उसे बार-बार सत्तासीन करती रही।

काँग्रेस ने भारतीय जनतन्त्र के ढाँचे को तोड़ने एवं जनतान्त्रिक मून्यों की अवहेलना करने में कोई कसर नहीं रखा। आजादी के तुरन्त बाद 1949 में हुए तैलंगाना किसान बान्दोलन को कूरता के साथ कुक्त कर उसने अपने जनविरोधी स्थ का जनता को प्रथम साम्रात्कार कराया। 1957 में हुए द्वितीय आम चुनाव में केरल में जनस्त द्वारा कम्युनिस्ट सरकार चुनी गयी। लेकिन वहाँ कम्युनिस्ट सरकार का जनना काँग्रेस को बच्चा नहीं लगा। उसने प्रजातांत्रिक मून्यों को तिलांजित देकर संविधान का तथने पक्ष में प्रयोग किया और सरकार को गिरा दिया। काँग्रेस का स्विधान के उसर यह हमला था। इस कृत्य से उसके तथाकिथत जनतांत्रिक वरित्र की सच्चाई सामने आगयी।

काँग्रेस की नीतियाँ एवं गतिविधियाँ धीरे-धीरे निरंकुशता की और उन्मुख होती क्ली गयीं। देश काँग्रेस की तानाशाही का शिकार हो गया। विपक्षीदल अपनी निर्कलता के कारण उसकी निरंकुशता एवं तानाशाही पर अंकुश न लगा सके। विधि एवं सैविधान ने काँग्रेस की मनमानी के सामने घुटने टेक दिये। डाँठ शिव प्रसाद सिंह के शब्दों में - "हिन्दुस्तान उसकी बपौती है, जागीर है, जिस पर वह जिस दंग से बाहे शासन कर सकती है। काँग्रेस एक ऐसी बद्दान है, जिसे भारत की छाती से हटाना मुश्कल है।"

निरंकुशता एवं तानाशाही की मानसिकता की अपनाने वाली काँग्रेस ने
"अपनी सत्ता को बरकरार रखने के वक्कर में पड़कर राष्ट्र में फेल रही अमानवीयता
एवं विश्व ब्यता पर ध्यान नहीं दिया। परिणाम स्वरूप देश मिथ्यावार, अष्टावार
एवं अत्यावार का अजायक्कर बन गया। "2 स्वतन्त्रता के बाद के लगभग तीन दशकों
के काँग्रेसी शासन के दौरान देश में उभरी अष्ट एवं पीड़क स्थिति पर टिप्पणी करते
हुए तारक अली ने लिखा है " बाने वाली कठिनाइयों के लिए न तो सरकार ने
जनता को तैयार किया है,न - ही उसका समर्थन प्राप्त किया है। भारतीयों का
मुख्य गुण है सहनतीलता। उनके लिए भारी कराधान पहले से असहय बोझ में एक
बोर तिनका है। हर सरकारी विभाग में निष्क्रियता बौर दिलाई है, सिकारिशें
हैं, कुछ लोग जरूरत की बीजें तुरन्त पा जाते हैं, कुछ को महीनों इन्तजार करना
पड़ता है, 'जनता की सरकार' जनता के साथ बेहद रुखी है। लोग बसों की कतार

<sup>1-</sup> वाधुनिक परिवेश एवं निवनेशन - पू० 102, डाँ० शिव प्रसाद सिंह । 2- समकानीन कविता में जनवादी केला - पू० 257 , डाँ० नकछेद ।

में धक्का मुक्की कर रहे हैं और डाक्यरों में, अस्पतालों में, रेलवे के टिकट घरों में, राष्ट्रीयकृत बैंकों में उपेक्षित भारतीय जगमा पसीने में नहाये वीख, विल्ला और बहस कर रहे हैं, पूरा सरकारी तन्त्र उन्हें हिकारत और उपेक्षा से देख रहा है। जनताराज का केवल यह अर्थ रह गया है कि हर किसी की यह हक हास्ति है कि दूसरे को लात मारे, वाहे जिस वीज का ध्वंस करे और पूरी तौर पर दुश्मनी का रवैया अख्तियार किये रहे। 1943 से 1967 तक की देश की बदहाली के सम्बन्ध में डाँ० शिवपुसाद सिंह की टिप्पणी कुछ इस प्रकार है - "पिछने बीस वर्षों का काँग्रेसी शासन भारतीय इतिहास में शर्मनाक शिक्षाकाल के नाम से स्मरण किया जायेगा। इस अरसे में काँग्रेस ने देश को पथम्रष्ट, दिशाहारा और निराश निरीह बनने के लिए मजबूर किया। जनालत, दीनता और अपमान को सहने का स्वभाव बनता गया। हर खतरे के सामने शुतुर्मुर्ण की तरह सिंह छिमाकर समस्याओं के टक्कर से बक्ने की कोशिश जारी रही। "2 ककाल और भूक्षमरिलेसेकस्त हिन्दुस्तान काँग्रेस पार्टी के नेतृत्वभेंहाथ में भीख माँगने का कटौरा लिये कभी अमेरिका के सामने खड़ा होता,तो कभी ब्रिटेन के पिटतु राष्ट्रमण्डलेसामने। "3

स्वतन्त्रता के बाद काँग्रेस की जिस मनमानी, निरंकुशता एवं तानाशाही के कारण देश को बदहाली से गुजरना पड़ा, वह भारतीय राजनीति में विपक्षी दलों हारा अपनी भूमिका का भली-भाँति निर्वाह न कर पाने का परिणाम था। प्रजातंत्रा-त्मक शासन व्यवस्था के समूचित संवालन में विरोधी दलों का महत्वपूर्ण हाथ होता है।

<sup>1-</sup> समकालीन कविंता की भूमिका - पू0 28 - 29, विश्वम्भरनाथ उपाध्याय । 2- बाधुनिक परिवेश और नवलेखन - पू0 42 डाँ० शिव प्रसाद सिंह 3- समकालीन कविंता में जनवादी बेतना - पू0 260, डाँ० नक्छेद

सत्तास्ट् दल पर वे बंकुश का काम करते हैं। उसे वे उनकल्याण-विस्द होने से रोकते हैं और सीवधान के प्रजातान्त्रिक प्रावधानों के उनकुल बलने के लिए विवश करते हैं। लेकिन भारत का राजनैतिक इतिहास बताता है कि यहाँ का विषक्ष निहायत कमजोर एवं पारस्परिक पूट से ग्रस्त रहा है। मार्क्सवादी कम्युनिस्ट एवं भारतीय कम्युनिस्ट परस्पर बारोप प्रत्यारोप करते रहे हैं। छोटे-छोटे बन्य वामपंथी दलों के भी बापसी सम्बन्ध अच्छे नहीं रहे। सोसलिस्ट भी प्रजासोसलिस्ट एवं संयुक्त सोसलिस्ट के स्प में विभक्त रहे। जनसेव एवं मुस्लिम लीग जैसे दल एक दूसरे का विरोध करते रहे और इनका वामपंथी दलों से भी कोई खास तालमेल नहीं हो सका। विपक्षी दलों की पारस्परिक पूट से उत्पन्न दुर्बलता के कारण काँग्रेस ने उन्हें भारतीय राजनीति में कोई खास महत्व नहीं दिया और वे बपनी दुर्बलता के कारण काँग्रेस की मनमानी पर रोक लगा कर विपक्ष की भूमिका का निर्वाह नहीं कर सके। बंकुश के बभाव में काँग्रेस निरंकुश हुई। उसकी निरंकुशता के करते देश की जनता ने उससे अपना मोहभंग प्रकट किया। लेकिन "काँग्रेस के प्रति हुए मोहभंग से जहाँ विरोधी दलों को पायदा उठाना वाहिए था, वहीं वे बापसी कलह में उतकी रहे।"

विपक्षी दल सिद्धान्तत: भने ही काँग्रेस से भिन्न रहे हैं, लेकिन व्यवहारत: वे उसके समस्प ही हैं। जिन बुराइयों से काँग्रेस एवं उसके नेता युक्त हैं, ठीक वहीं बुराइयाँ विपक्षी दलों एवं उसके नेताओं में भी निहित हैं। बन्तर बस इतना है कि काँग्रेस की गतिविधियों को बनता ने देख लिया है, लेकिन विपक्षी दलों की वास्तविकता से वह भनी-भाँति बरिचित नहीं है।

<sup>।-</sup> साठो स्तरी हिन्दी कविता में जनवादी वेतना - पृ० 102, डाँ० नरेन्द्र सिंह ।

विपक्षी दलों में जहाँ तक जनसंद्ध का प्रश्न है, उसे सामन्ती एवं पूँजीदादी शक्तियों से बल मिलता रहा है। अन्य राजनीतिक दल इस पर हिन्दूवादी, पूँजीवादी, दक्षिणपंथी, और साम्प्रदायिक होने का बारीप लगाते रहे हैं। प्रारम्भ में इस दल का कोई व्यापक प्रवार नहीं था। इसे व्यापारियों एवं कुछ उच्ववर्गीय हिन्दुओं का समर्थन प्राप्त था। यह दल सर्वपृथम भारत-वीन युद्ध की प्रतिक्रिया में विकस्ति हुआ। इस युद्ध में भारत की पराज्य को इस दल ने कांग्रेस की नीति की सामियों के रूप में पेश किया, तथा जनता को अपनी देश - प्रेम एवं राष्ट्रीयता की विचारधारा से काफी आकृष्ट किया । परिणाम स्वरूप 1967 के राज्यविधानसभा चुनावीं में इसे उत्तर प्रदेश, मध्य प्रदेश, बिहार, हरियाणा एवं पंजाब में काफी सफलता मिली। 1977 में इस दल का विलय 'जनता पार्टी' नामक नये दल में हो गया, जिसे देश के अधिकांश राजनीतिक दलों ने मिलकर काँग्रेस के विकल्प के रूप में जनता के समक्ष प्रस्तुत किया था । धीरे-धीरे जनता पार्टी दूट गयी और 1980 में जनसंद्र, भारतीय जनता पार्टी नामक नये संस्करण के रूप में पेश हुआ। कारण कुछ भी रहा हो लेकिन सच्चाई यह है कि यह दल समाज के निम्न वर्ग में अपनी पैठ बनाने में सदेव असफल रहा है।

वामपंथी दल, दिलत-शौषित किसानों एवं मजदूरों के हिमायती होने का स्वांग रक्ते रहे हैं। लेकिन वास्तिकता यह है कि वामपंथी दलों का नेतृत्व अधिकांदत: उच्च मध्य वर्ग के उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों से मिलता था। सांस्कृतिक दृष्टि से इनकी मजदूरों एवं अभिकों से निकटता हो ही नहीं पाती थी। " यही कारण है कि सेद्धान्तिक रूप से इनके विचार शोषितों एवं दिलतों के पक्ष में रहे हैं,

<sup>। -</sup> साठोत्तरी हिन्दी, कविता: परिवर्तित दिशाये - पू० 21, विजय कुमार ।

लेकिन व्यवहार के स्तर पर, न तो ये अपने को शीषितों के पक्ष में उतार पाये हैं और न उन्हें व्यापक रूप से संगठित ही कर सके हैं। कम्युनिस्ट पार्टी बार -बार टूटती रही है। इस पार्टी का प्रथम विभाजन 1962 में हुए 'भारत - चीन' युद्ध के मुद्देदे पर 1964 में हुआ। इस द्विभाजन के परिणामस्वरूप भारत के राजनीतिक क्षितिज पर 'भारतीय कम्युनिस्ट पार्टी' एवं मार्क्सवादी कम्युनिस्टपार्टी का उदय हुआ। 1969 में मार्क्सवादी कम्युनिस्ट पार्टी का पुन: विभाजन हुआ। परिणाम स्वरूप तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी का पुन: विभाजन हुआ। परिणाम स्वरूप तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी का पुन: विभाजन हुआ। परिणाम स्वरूप तीसरी कम्युनिस्ट पार्टी कारण भी किसान मजदूर स्थावत दंग से संगठित नहीं हो सके। कम्युनिस्ट पार्टी भी अपने को अवसरवादी राजनीति से अलग नहीं रख सकी।

जनसंग्र एवं वामपंथी दलों के बितिरिक्त भी ढेर सारे क्षेत्रीय दल समय - समय पर भारतीय राजनीति में बने और बिगड़े। ऐसे राजनीतिक दलों में से अधिकांश असन्तुष्ट काँग्रेसियों द्वारा बनाये गये थे। ऐसे राजनीतिक दल भारतीय राजनीति के मंच पर एकाएक उपस्थित होने और एकाएक नेपथ्य में को जाने के अतिरिक्त अपनी किसी भूमिका का निर्वाह नहीं कर सके।

"स्वतंत्रता प्राप्ति के साथ ही राष्ट्रीय काँग्रेस के देशोद्धार, देश के लिए जैन यातना एवं बलिदान के मून्य समाप्त हो गये और वे देशोद्धारक भौतिक लाभ, पदरक्षा व अपने बादिमियों के संरक्ष्म में लग गये।" भारतीय राजनीति का चारित्रिक पतन काँग्रेस की सत्ता में किसी तरह बने रहने की नीति का परिणाम है। ठाँ० नकछेद के शब्दों में "वस्तुत: हजनीति में जो भी विकृतियाँ वायीं, उसका सारा क्रेय काँग्रेस

<sup>।-</sup> नयी कविता के बाद - पूछ 10 . ठाँठ बीम प्रकाश अवस्थी ।

को ही है। " स्वतन्त्रता के बाद भारत की सत्ता काँग्रेस के हाथ में उसके द्वारा स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिए किये गये व्यापक कार्यों के कारण वायी। ऐसी स्थिति में काँग्रेस को चाहिए था कि वह प्रजातान्त्रिक मान्यताओं एवं सेवैधानिक मान्यताओं के वाधार पर देश में एक स्वस्थ राजनीतिक परम्परा विकसित कराती। लेकिन उसने ऐसा न करके, सत्ता पर वपना स्वाभाविक विधकार समझा और उसे हथियाये रखने के लिए विशेष—क्षेत्र, भाषा, जाति एवं सम्प्रदाय के तृष्टीकरण; दलबदल तथा जनतान्त्रिक मूल्यों की ववहेलना का सहारा लिया। निर्वल विपक्षी दल काँग्रेस की इन गतिविधियों पर अंकृष तो न लगा सके,लेकिन प्रतिकृया स्वस्प उन्होंने भी काँग्रेस की कार्यक्षेत्री का देर-संबर इस्तेमाल करना शुरू किया। सत्ता एवं विपक्षी दलों की इस कृया-प्रतिकृया के करते भारतीय राजनीति विकृत होती कर्नी गयी।

काँग्रेस ने समय-समय पर राज्यों की गैर काँग्रेसी सरकारों को गिराने के लिए राज्यपाल का दुरूपयोग किया। अपनी सरकार बनाने के लिए उसने पद एवं धन के प्रलोभन के सहारे दूसरे दलों को तोड़ा और दलबदल कराया। भारतीय राजनीति में दलबदल की प्रक्रिया से राजनीतिक दल जान्तरिक रूप से कमजोर हुए और राजनीति में पदलोलुपता, धनलोलुपता एवं अञ्चावार बद्धा। जाज दलबदल एवं जवसरवाद राजनीति का बरित्र बन गया है। दलबदल रोकने के लिए दलबदल विरोधी कानून बनाया गया, " लेकिन अपनी निर्वलता के क्लते यह कानून भी दलबदल रोकने में सकल नहीं हो सका। अन्तर इतना हुआ कि दलबदल का स्वरूप बदल गया।

<sup>।-</sup> सम्कालीन कविता में ब्लवादी केला - पू0 260 , डाँठ नकछेद ।

कुनाव जीतने के लिए जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद का गणित लगाया जाने लगा । कुनाव क्षेत्र में जाति विशेष की अधिकता के खाधार पर प्रत्याशियों का क्यन प्रारम्भ हुआ और साम्प्रदायिकता को कुनावी हथियार के रूप में अपनाया गया । "मुसलमानों का इस्तेमाल मात्र वोट केंक्र के तौर पर हुआ । धर्मीनरपेक्ष दल भी धर्म निरपेक्षलको नहीं निभा पाये । पिछले सेतालीस वषा में विभिन्न राजनीतिक दलों ने वोट केंक्र को ही नजर में रखा और ऐसे ही प्रत्याशी खड़े किये जिनकी जाति अथवा धर्म को मानने वालों का उस कुनाव क्षेत्र में बहुमत हो । " धर्म और जाति के आधार पर वोट की राजनीति के कारण राजनीति में सिद्धान्तहीनता, स्वार्थपरता, संकीणता, जातिवादिता एवं साम्प्रदायिकता का समावेश हुआ । धीरे-धीरे राजनीतिक दल प्रत्यक्ष – अप्रत्यक्ष रूप में जाति या सम्प्रदाय में बट गये और नेता जनप्रतिनिधि की जाह जाति एवं धर्म प्रतिनिधि बन गये।

किसी भी तरह चुनाव जीतना राजनेताओं का एक मात्र लक्ष्य रह गया।
ऐसी स्थिति में चुनाव जीतने के लिए वे अपिवित्र से अपिवित्र साधन का सहारा लेने
पर भी उतारू हो गये। धन एवं शिक्त चुनाव जीतने के साधन बन गये। फलतः
राजनीति में अपराधियों का प्रवेश हुआ, जिससे राजनीति का अपराधीकरण तथा
अपराधियों का नेताकरण हुआ।

लोकपृतिनिधियों ने राजनीति को वन कमाने का साधन बनाया, जिससे राजनीति के स्तर पर कमीवनधोरी, धूसधोरी एवं घोटालेबाजी का सिनिसना वल पढ़ा, लोकपृतिनिधियों के इस बृहय में लोकसेवक सहयोगी बने । लोकपृतिनिधियों

<sup>।-</sup> स्वतंत्र शारत - पू0 6 बुधवार 6 जनवरी 1992 - लेख-ढाँवा ढहने की परिणति, कुनदीप नैयूयर ।

एवं लोक्सेवकों की सामूहिक अञ्चला के कारण आम आदमी बुरी तरह से श्रस्त हुआ है। "आज पुराने सामन्त भले न रहे हों, किन्तु नेताओं के रूप में नये सामन्त पैदा हो गये हैं, जो जनता की सेवा की आड़ में ऐयासी करते हैं। "

समाज एवं जीवन में राजनीति का हस्तक्षेप कदम - कदम पर दिखाई पड़ता है। "आन्दोलन में राजनीतिज्ञ ही सिक्रिय होते हैं। यूनियन, दल, संघ, सभा का निमणि राजनीतिज्ञ करते हैं। हड़ताल, तालाबन्दी में राजनीतिज्ञों का हाथ होता है। विद्यार्थी-अन्दोलन राजनीतिज्ञ कराते हैं। सुनवाई उसी की होती है, जिसके पीछे कोई राजनीतिज्ञ होता है। ग्रामीण क्षेत्रीं में इनका प्रभाव पनपा है। बीज, क्षियन्त्र, सिवाई के साधन बिना राजनीतिज्ञों की सिफारिश के नहीं मिलते। पुलिस उन अपराधियों को नहीं छेड़ती, जो राजनीति जो से सम्बन्धित होते हैं। ± : · · · · · राज्नेता होना एक प्रलोभनकारी गुण बन गया है। \* <sup>2</sup> \*राजनीति व्यवसाय बन गयी है. मतदान कागजी कंचन का दास हो गया है, चुनाव काले धन का गोरा क्षेत्र बन गया है। "उ सब मिलाकर "स्वतन्त्र भारत में राजनीति कुटा हो गयी है तथा डेमोब्रेसी के स्थान पर मावोब्रेसी श्रिपद्रवतन्त्रश्च का रंग बादा पतीत हो रहा है। " राजनीति के इस वारित्रिक पतन एवं विसंगति के क्लते आम वादिमयों एवं बुद्धिजीवियों को स्वतन्त्रता, सविधान, प्रजातन्त्र, समाजवाद, संसद, वनाव एवं नेता. सब निर्धंक प्रतीत हुए हैं और इनके विरुद्ध उनके मन में घोर वसन्तीष एवं विद्रोह का बाव पनवा है। जिसकी सफल विश्वव्यक्ति साठोत्तरी विवता में हुई है

<sup>।-</sup> दितीय महायुद्धोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास - पृ० 43, वार्थीय ।

<sup>2-</sup> नयी कविता के बाद - पूंछ ।। - 12, डाँठ बीम प्रकाश कवस्थी

<sup>3- -</sup> वहीं - पूर्व 10 - 11

<sup>4-</sup> समकालीन कविता में बनवादी वेतना - पूर्व 152, डाँच नक्डेंद

### भारत - चीन युद्ध :-

भारत के उपर चीन का आकुमण एक जबरदस्त विश्वासद्यात था। 29 अप्रैल 1954 के पंचरील समझौते के आधार पर दोनों देशों के मध्य मेत्री संबंध कायम हुआ था और हिन्दी - वीनी भाई - भाई का नारा दिया गया था। इस समझौते में सहश्रीस्तत्व. सीमा उलंबन न करना एवं आन्तरिक मामले में हस्तक्षेप न करना जैसी बातें सामिल थीं। यही नहीं, भारत ने संयुक्तराष्ट्र संघ के स्थायी सदस्यीं में वीन को स्थान दिये जाने का पक्ष भी लिया था। लेकिन वीन की नीति विस्तार -वादी थी। वह मित्रता के आवरण में शत्रता का भाव पाले बैठा था। लेकिन दुसरी और चीन से भारत का मन इतना साप था कि उसने अपने सरक्षा कवन को दीना कर दिया था. सैन्य तैयारी पर ध्यान देना बन्द कर दिया था। उसके आयुध कारसानों में युद्ध सामग्री नहीं, उपभोग-सामग्री बन रही थी । पडोसी पर इतना विश्वास कर लेना भारत की कूटनीतिक कमजौरी थी । अपनी विस्तारवादी नीति के काते चीन ने अपने पड़ौसी देश तिब्बत पर सन् 1959 में आकृमण कर दिया, जिससे वहाँ के धार्मिक शासक दलायीलामा ने भारत में शरण ली। भारत द्वारा दलायीलामा को शरण दिया जाना चीन को बच्छा न लगा। उत: उसने पंचरील समझौता एवं मेत्री सम्बन्ध की खबहेलना करके 20 अक्टबर 1962 की बवानक भारत की उत्तरी पूर्वी सीमा पर बाकुमण कर दिया। भारत के लिए यह बार वर्यजनक घटना थी । वह किसी भी स्तर पर युद्ध के लिए तैयार नहीं था । 2। नवम्बर 1962 को चीन ने एकतरका यह बन्द कर दिया, जिस पर बाज भी उसका बाधिपत्य

<sup>।-</sup> कारत चीनं और उत्तरी सीमाएँ - पूठ 417, डाँठ राममनोहर लोहिया ।

कायम है। 20 अक्टूबर 1962 के चीनी आक्रमण ने नेहरू की नीतियों को बौना साबित कर दिया। देश की जनता भारत – चीन युद्ध में भारत की पराजय को नेहरू की राजनीतिक एवं क्टनीतिक असफलता के रूप में देखा।

भारत-वीन युद्ध का साहित्य पर काफी व्यापक प्रभाव पड़ा। जहाँ एक और साहित्यकारों ने वीनी विश्वासद्यात की निन्दा की वहीं दूसरी और नेहरू की सुरक्षा नीति पर भी चौट की। शमशेर ने अपनी 'सत्थमेव ज्यते' कविता में लिखा -

"मावो ने सब कुछ सीखा, एक बात नहीं सीखी कि शूठ के पाँव नहीं होते सत्य की जुबान बन्द हो फिर भी वह गरजता है सत्य की कसी मृद्धियाँ सहसा खुनती है तो बांधियाँ बाती हैं काल को अपने को दीर्घ बिलदानों में पहचानने वालों क्या तुम मूर्च नहीं हो 9"

अपनी 'पटक्या' कविता में धूमिल ने नेहरू के पंचशील एवं सुरक्षानीति पर चोट करते हुए लिखा है:

"वह हमें वित्त शान्ति और पंकानि के सूत्र समझाता रहा \* \* \* योजनाएँ कती रही बुन्दूकों के कुरस्सानों में जूने कती रहे।"?

<sup>।-</sup> कुरा भी हूँ में नहीं - कु0 135, शम्सेर वहादुर सिंह

<sup>2-</sup> संसद से सड़क तक - पू0 102. धूमिल

### आर्थिक बदहाली:-

ज़िटिश शासन द्वारा किये गये व्यवस्थित शोषण के कारण स्वतन्त्रता प्राप्ति के सगय भारत की अर्थव्यवस्था अत्यन्त दयनीय एवं जर्जर थी । कै० पी० एस० सुन्दरम् हे शब्दों में - "भारत में ज़िटिश शासन की कहानी वस्तुत: एक साम्राज्यवादी शासन द्वारा जनता के व्यवस्थित शोषण की कहानी है ।" उसकी प्रत्येक व्यवस्था या प्रणाली भारत के शोषण के लिए ही विकसित की गयी थी । बोर्ड आफ रेवेन्यू मद्रास के प्रेसीडेन्ट जान सुल्तीवान का कथन है कि - " हमारी प्रणाली एक ऐसे स्पंज के स्प में काम करती है, जो गंगा के किनारे के प्रत्येक बच्छी वस्तु को सोख लेती है . फिर टैम्स के किनारे पर निवोड़ देती है ।" ज़िटिश व्यवस्था द्वारा भारतीय सम्पत्ति के सोखने एवं निवोड़ने की इसी निवधि प्रक्रिया के कारण 1947 में स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय जो अर्थव्यवस्था हमको प्राप्त हुई,वह अत्यन्त दयनीय थी । कृषि एवं उद्योग दोनों का हास हो कुका था । देश आर्थिक संक्र्य से जुक्क रहा था ।

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद देश के सुव्यवस्थित वार्थिक विकास के लिए भारत सरकार ने सन् 1950 में 'योजना वायोग' की स्थापना की और एक जप्रैल 1951 से प्रथम पंचवर्षीय योजना की शुरुवात के साथ ऐसी योजनावों की एक शुरुवा प्रारम्भ हुई। पंचवर्षीय योजनावों का मुख्य उद्देश्य वार्थिक समृद्धि, बात्म निर्मरता, रोजगार, वार्थिक वसमानतावों में कमी, गरीबी निवारण एवं वाधुनिकीकरण था। "3 लेकिन उपयुक्त दृष्टिकोण के बन्नाव लोकप्रतिनिधियों एवं लोक सेक्कों के भृष्ट वरित्र

<sup>।-</sup> भारतीय वर्धव्यवस्था - पू० ३४ , के० पी० एस० सुन्दरम्

<sup>2-</sup> बाधुनिक भारत का इतिहास - पूo 625, ग्रोबर

<sup>3-</sup> भारतीय वर्धव्यवस्था - पू० 286 , मित्रा एवं पुरी

और जनता के उत्थान के प्रति उनमें हार्दिक नगाव की कमी के कनते पंचवर्षीय योजनाएँ अपने उद्देश्य की प्राप्त करने में असफल रहीं है । प्रथम पंचवर्षीय योजना समिति के सिचव त्री त्रिलोक सिंह पंचवर्षीय योजनाओं की त्रुटियों एवं असफलताओं की और संकेत करते हुए कहते हैं - "हमारी प्रारम्भिक पंचवर्षीय योजनाएँ देश के भीतर के अधिक साधनों को विकसित कर सामाजिक ढाँचे के असन्तुलन को दूर करने, विशाल जनसमूह की प्राथमिक बावश्यकताओं को पूरा करने और कृषि के क्षेत्र में बुनियादी परिवर्तन करने के बजाय विदेशी संसाधनों को जुटाने वाली शांपिंग लिस्ट ही त्रिधक थी।"

भारत में 80% जनसंख्या गाँवों में निवास करती है और उसका जीवन कृषि पर आधारित है। बत: ग्रामीण जनता के वार्थिक विकास के बिना देश के आर्थिक विकास की प्रक्रिया पूरी नहीं हो सकती है। लेकिन 86% ग्रामीण या कृषक जनसंख्या वाले भारत देश की सत्ता एक ऐसे शहरी अभिजात वर्ग के हाथ में वायी, जो जो एवं गेहूँ में बन्तर नहीं जानता था। गाँव की समस्याओं से वह अपने को जोड़ नहीं पाया। गाँव से उसका रिश्ता मात्र वोट तक था। बत: उसने गाँवों पर योजनाओं को केन्द्रत नहीं किया।

होई योजना किसी देश का वार्षिक विदास तभी कर सकती है, जब उसकी सरक्ता देश की परिस्थित, जनसंख्या के स्वरूप एवं वहाँ के समाज में व्याप्त वन्तर्विरोध कों ध्यान में स्क्वर बनायी जाय। लेकिन पंचवर्षीय योजनाओं की सरक्ता में इस तक्ष्य पर ध्यान नहीं दिया गया। स्वतन्त्रता के बाद देश के नेतृत्व की विकास की अवदारणा परिचली देशों के विकसित बौधोगिक ढाँचे पर बाधारित

<sup>।-</sup> सेमीनार - परवरी 83

थी। कम पूँजी एवं अधिक श्रमवाले भारतवर्ष में पूँजी बहुत औद्योगिक दाँव को स्वीकार करने का परिणाम यह हुआ कि जनसंख्या की तुलना में रोजगार के साधन नहीं बद्द पाये, जिससे बेरोजगारी बद्दती चली गयी।

योजनावों के सैवालन एवं विकास के लिए पूँजी की बावश्यकता पड़ती है और पूँजी निर्माण बक्त एवं बनावश्यक धर्व में कटौती द्वारा बहत कुछ सम्भव हो सकता है। कै0 पी0 एस0 सुन्दरमु के शब्दों में - "बार्थिक विकास के लिए कोई राजमार्ग नहीं। बिना राष्ट्रीय परित्याग के आर्थिक विकास की कल्पना नहीं की जा सकती।"। जहाँ तक भारतीय जनता का प्रश्न है, तौ उससे बचत एवं आवश्यकता में कटौती की उम्मीद की ही नहीं जा सकती, क्योंकि स्वतन्त्रता प्राप्ति के समय एवं उसके बाद भी उसका जीवन स्तर निम्न कोटि का रहा है। वह भोजन वस्त्र एवं बावास जैसी मूलभूत बावश्यकताओं की पूर्ति मात्र जीवित रहने भर के लिए ही कर सकी है। उसके लिए उसमें कटोती करके बक्त करना अपने अस्तित्व को समाप्त करना है। लेकिन जहाँ तक नेताओं, पूँजीपतियों एवं नौकरशाहों की बात है, उनका जीवन स्वतन्त्रता के सुप्रभात से ही विलासिता से सराबीर रहा है। वे अपनी बावश्यकताओं में कटौती करके देश के विकास के लिए पूँजी सुरक्षित कर सकते थे और जाज भी कर सकते हैं। बेकिन ऐसा हुआ नहीं। उनके उपर व्यर्थ में वैसा सर्व होता रहा. देश की वर्धव्यवस्था वरमराती रही और उनता गरीबी वे भार से कराइती रही । डाँ० राममनोहर लोडिया के बन्दी में - "मैने हिसाब लगाया कि प्रधान मन्त्री साहब के उपर एक दिन का पत्र्वीस तीस हजार का सर्व

<sup>।-</sup> भारतीय अर्थव्यवस्था - पूर्व 38, केंद्र पीर पस्त सुन्दरम् ।

होता है, वाहे उनकी आमदनी न हो, लेकिन वे धर्व करने के लिये स्वतन्त्र हैं।"
वे आगे लिखते हैं - "आज के समाज एवं युग में बड़ी अच्छी बात यह हो रही है कि
राजनीति में लगे हुए लोगों को आमदनी करने की जरूरत नहीं रहती।। राज के
उपर उनका इतना कच्चा रहता है कि वे धर्व कर सकते हैं - - - - - आठ आना
एक तरफ धेत में मजदूर का एक दिन का और दूसरी तरफ पच्चीस हजार रूपये एक
दिन का, यह है हिन्दुस्तान में गैर बराबरी के झने की पेंग ।"

सृविधा भोगी नेतृत्व वपनी सृविधावों में कटौती करके देश में विद्यमान धन को पूँजी के रूप में संरक्षित नहीं कर पाया। फलत: विकास योजनावों के संवालन के लिए उसे विदेशी अनुदान एवं कर्ज विध्व लेना पड़ा वौर वाज स्थिति यह हो गयी है कि - "सृग पत्थर के बाट की तरह देश के गले में लटका हुवा है।" विकास के नाम पर सृग वादि के रूप में प्राप्त विदेशी पूँजी एवं स्वदेशी पूँजी का देश में बड़ा दुरुपयोग किया गया। पूँजी का एक बड़ा हिस्सा देश की जनता की मूल भूत वावश्यकतावों की पूर्ति का स्थायी साधन न बनकर या तो देश के शासक वर्ग की अनर्गत वावश्यकतावों का साधन बन गया या फिर उसकी जेब में बना गया। विजय कृगार के शब्दों में - "बड़े शहरों में,जहाँ ये नीति निर्माण वौर उनके कार्य - पालक बसे हुए थे, गगन युम्बी इमारतों, आयातितकार, प्रिज, टेलीवीजन, वातानुकृतन यन्त्र, कृतिन नायलान वौर उच्च वर्ग की दूसरी तमाम उपभोकता सामनिव्यों के निर्माण में पूँबी बगने नगी। - + - - - सार्वजनिक क्षेत्र में बड़े - बड़े

<sup>!-</sup> सात क्रान्तियाँ - पूँठ वे , डाँठ राम मनीहर लोहिया

<sup>2-</sup> दितीय महायुद्धीत्ते हिन्दी आहित्य का इतिहास - पृ० 31 वर्षीय

उद्योग जरूर लगाये गये पर ठेके पर काम देने की पूँजीवादी प्रथा बरकरार रही। इससे नौकरशाहों एवं ठेकेदारों के बीच घूस, बेईमानी, निजी ठेकेदारी, इन्तजाम के गलत तरीकों और स्वेच्छाचारिता का चलन बढ़ा। - - - - जो रूपया विकास एवं निर्माण कार्यों में लगना था, वह लोगों की जेब में जाने लगा। परिणाम स्वरूप सरकारी और गैर सरकारी स्तर पर बुरी तरह से अष्टावार फेला। "!

वायोजकों ने पंचवर्षीय योजनाओं के माध्यम से देश के आर्थिक विकास एवं गरीबी की समाप्ति के मध्य जो सम्बन्ध स्थापित किया, वह एक तार्किक विवार पर बाधारित नहीं था। उनकी सीव थी कि जैसे - जैसे बार्थिक किंगस होता जायेगा, वैसे - वैसे गरीबी समाप्त होती जायेगी । लेकिन देश के आर्थिक विकास में देश की प्रति इकाई का जार्थिक विकास निहित हो, यह आवश्यक नहीं है। देश की कुछ जनसंख्या के आर्थिक विकास में भी देश का आर्थिक विकास दिखाई पड़ सकता है। भारत में यही हुआ। आर्थिक विकास की प्रक्रिया में देश के एक वर्ग का आर्थिक विकास होता रहा और दूसरा वर्ग गरीबी में ही फ्सा रहा। मिश्रा एवं पूरी के शब्दों में - "अक्सर वार्थिक समृद्धि का लाक अपेक्षाकृत सम्पन्न वर्ग को होता है बोर देश में वार्थिक असमानतायें बद्ती है। भारत में यही हुआ है।"<sup>2</sup> विकास पुक्रिया एवं बद्ती गरीबी पर टिप्पणी करते हुए सुगत दास गुप्त ने लिखा है -"िकास गरीबी को इसलिए बढ़ा रहा है,क्यों कि उसकी अवधारणा में यही बात निहित है - विकास का मतलब है, अमीरी में वृद्धि । यह अमीरी जीवन की लागत को बदाती है और उसके दाम बद्दे लगते हैं। मून्य स्तर के साथ-साथ एक वर्ग की तनस्वाहें भी बद्ती हैं पर अंगत: । लेकिन जो लोग इस दायरे में नहीं जाते

<sup>।-</sup> साठोत्तरी कविता: परिवर्तित दिशाएँ - पू० ।४-।5, विजय कुमार २- शारतीय वर्षक्या - पू० २४६ , मिश्रा एवं पुरी

वे लोग जरूरत की चीजों के दाम बद्ध जाने के कारण गरीब होते जाते हैं।"।

अायोजन एवं आर्थिक विकास के मूल में निहित खामियों तथा लोकप्रतिनिधियों एवं
लोक सेवकों की धांधिलियों के चलते जनता का योजनानों से हित नहीं हो सका।

"जनता के सिर से योजनाएँ गुजरती चली गयीं और वह मूर्धवत कोसती कलपती ज्योंकी - त्यों बनी हुई है।" बेरोजगारी, गरीबी एवं आर्थिक विकास से उसे निरन्तर जूझना पड़ रहा है।

बेरोजगारी: एक महराता संकट:-

स्वतन्त्रता के बाद बेरोजगारी का ग्राफ निरन्तर उँवा उठता गया है । बेरोजगारी के कारण राष्ट्र का मानव मीत नष्ट हुआ है, क्योंकि रोजगार विहीन युवक कुँठा, निराशा, आष्ट्रोश, रोष आदि मनः स्थितियों से गुजरते हुए कभी विद्रोही हुए, तो कभी पथ अष्ट । बद्दती हुई जनसंख्या को बद्दती हुई बेरोजगारी के कारण के स्प में देखना एक सामान्य प्रवृत्ति रही है । तेकिन आजादी के बाद बद्दी बेरोजगारी का उतना बड़ा कारण जनसंख्या में तीच्च वृद्धि नहीं है। यदिआयोजकों द्वारा रोजगार के पृति एक सकारात्मक दृष्टि अपनायी गयी होती, तो जनसंख्या वृद्धि के बावजूद भी बेरोजगारी का आतिकत कर देने वाला स्वस्प स्वातन्त्र्योत्तर भारत में न निर्मित हुआ होता और रोजगार की स्थित में जनसंख्या नियन्त्रण को बल मिलता । बेरोजगारी निवारण की वर्षा विभिन्न योजनावों में की गयी और इसे भारत में आर्थिक आयोजना का उद्देश्य बताया गया है, लेकिन रोजगार कभी भी आर्थिक आयोजना के मुख्य उद्देश्य के स्प में स्वीकार नहीं किया गया । इस देश में रोजगार पाना व्यक्ति का मुलाधिकार नहीं है । और बेरोजगारी व्यक्ति की निजी समस्या

a de de la

<sup>1-</sup> दिनमान - 16 कास्त , 1980

<sup>2-</sup> विद्रोह और साहित्य - पूछ 137 से देवेन्द्र इस्सर

मानी जाती है। क्त: सरकार की और से बेरोजगारी से सम्बंधित आकड़े एकत्र करने की दिशा में कोई ठोस प्रयास नहीं किया गया है।

बेरोजगारी दूर करने के निए शासन ने किसी ठौस एवं दीर्घकालिक नीति को नहीं अपनाया। सब यह है? कि आयोजक बद्धती हुई बेरोजगारी के प्रति उदासीन रहे हैं। सरकार ने विभिन्न योजनाओं के अन्तर्गत उतने भी रोजगार के नये अवसर पैदा करने की कोशिश नहीं की, जितने कि नये लोग श्रम बाजार में आये। नतीजा यह हुआ कि हर पंचवर्षीय योजना समाप्त होने पर बेरोजगारों की संस्था पहले की तुलना में अधिक हो गयी।

प्रथम पंचवर्षीय योजना के समय से ही वायोजकों ने रोजगार की निवेश एवं वार्थिक विकास के वनुगामी के स्प में देखना शुरू किया था। रोजगार के सम्बन्ध में इस दृष्टिकोण का बड़ा दोष यह है कि यह इस बात पर गौर नहीं करता कि कारी निवेश अपने आप में रोजगार में विस्तार नहीं करता। रोजगार के विस्तार के लिए यह बहुत जरूरी है कि निवेश में वृद्धि के साथ-साथ सही तकनीक अपनायी जाय। वार्थिक विकास के द्वारा बेरोजगारी की समस्या का अपने आप समाधान नहीं होता। यह बहुत सम्भव है कि रोजगार आयोजन की और ध्यान न दिया जाय,तो आर्थिक विकास की गित तेज होने के बावजूद भी बेरोजगारी की समस्या बनी रहै। जनता सरकार के द्वारा तैयार की गयी पंचवर्षीय योजना 1978 – 83 में पहली बार रोजगार एवं वार्थिक समृद्धि के बीच विरोध की सम्भावना को स्वीकार कर रोजगार की वार्थिक वार्थी का सम्भावना को स्वीकार कर रोजगार की वार्थिक वार्थी जना का मुख्य उद्देश्य माना गया। इससे पहले वाली योजनाओं

<sup>। -</sup> भारत की कथ्यास्था - पूछ 295 - मिश्र एवं पुरी

की मान्यता यह थी कि समृद्धि होने से रोजगार के अवसर स्वत: पैदा होते जायेंगे और बेरोजगारी की समस्या समाप्त हो जायेगी। परन्तु,वास्तव में ऐसा हुआ नहीं और समय के साथ बेरोजगारी बद्दती गयी।

यदि हम बन्य प्रकार की बेरीजगारी की नजरन्दाज करके मात्र शिक्षित बेरीजगारी के ही अकिड़ों पर ध्यान दें तो स्वतन्त्रता के बाद का इसका स्वरूप कुछ कम भयावह नहीं है। भारत के श्रम तथा रोजगार मन्त्रालय के अनुसार जहाँ 1951 में 2 लाख 44 हजार शिक्षित बेरोजगार थे, वहाँ 1966 में इनकी संख्या 9 लाख 20 हजार और 1971 में 32 लाख 80 हजार थी। 1980 के बारम्भ में लगभग 34 लाख 72 हजार शिक्षित बेरोजगार थे। 1985 में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या 47 लाख वाती है। यह तो मात्र बांकड़ेबाजी है,शिक्षित बेरोजगारों की संख्या दससे कहीं अधिक रही है। लेकिन यदि इसी बांकड़े को पूर्णत: सत्य माने तो भी बांजादी के बाद के सादे तीन दक्षकों में शिक्षित बेरोजगारों की संख्या में तेजी से वृद्धि हुई है। 1951 की तुलना में 1985 में इनकी संख्या 20 गुनी थी।

#### गरीबी एक त्रासदी :-

स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में गरीबी भारतीय जनजीवन के एक व्यापक हिस्से में त्रासदी के रूप में उभरी है। उसके लिए गरीबी कोई आकि स्मिक एवं नवीन वापदा नहीं रही है,बिक स्वतन्त्रता के पूर्व की सताब्दियों को तो उसने इसी के पैरों तले गुजारा था। बात बस इतनी है कि उसे स्वराज्य, स्वतासन एवं प्रचातंत्र

<sup>।-</sup> भारत की वर्षव्यवस्था - पृ० 192 , के० पी० एस० सुन्दरम्

<sup>2- -</sup> वही -

में भी गरीबी के पंजे में पंसा रहना पड़ा है। स्वतन्त्रता के बाद के लगभग वार दशकों में विद्यमान गरीबी पर टिप्पणी करते हुए मित्र एवं पुरी ने लिखा है: "भारत में आज लगभग वालीस वर्ष के बायोजन के बाद भी जनसंख्या का नगभग 40% भाग गरीबी से ग्रस्त है और भ्यानक बभावों में जी रहा है। " योजनावों की एक लम्बी शृंखला के गुजर जाने के बाद भी गरीबी के ऐसे त्रासद दृश्य का देश में विद्यमान रहना यह स्पष्ट करता है कि योजनावों ने गरीबों की बराबर उपेक्षा की है। पहली दो पंचवर्षीय योजनावों में गरीबी को जलग से विकराल समस्या के रूप में देखने की प्रवृत्तित हमारे नीति निर्मातावों में थी ही नहीं - - - - "गरीबी की रेखा" के गणित की शृंदआत तीसरी योजना के समय में अर्थात सातवें दशक के बारम्भ में हुई। " अबिक गरीबी निवारण का अधिक आयोजना के उद्देश्य के रूप में स्पष्ट रूप से पहली बार उत्लेख पाँच्यी पंचवर्षीय योजना की प्रारम्भिक रूपरेखा में किया गया था। " जे जिस योजना को देश की समस्या के समाधान के साधन के रूप में अपनाया गया हो, यदि उसमें ही गरीबी निवारण को ग्रीवित स्थान न दिया जाय, तो गरीबों का गरीब बना रहना स्वाभाविक ही है।

वायोजकों की सोवधी कि देश की आर्थिक समृद्धि रिसाव के द्वारा जनसंख्या के सभी वर्गों तक पहुँचेगी और गरीबी स्वतः समाप्त हो जायेगी। "यदि विवार करें तो स्पष्ट होगा कि परतन्त्रता के दिनों में मैकाले ने जनसामान्य में शिक्षा के प्रसार

<sup>।-</sup> शारत की अर्थव्यवस्था - पूछ 264, केंछ पीछ एसछ सुन्दरम्

<sup>2-</sup> साठौत्तरी हिन्दी कविता - परिवर्तित दिशाएं - पूछ 13, विजय कुमार

<sup>3-</sup> भारतीय वर्थव्यवस्था - पूठ उठा, मित्र एवं पूरी

<sup>4- -</sup> वहीं - 🕫 पू0 278

के निए जिस फिल्ट्रेशन ह रिसाव ह पदित को अपनाया था, उसी को स्वतन्त्रता के दिनों में आयोजकों ने जनसामान्य में समृद्धि के प्रसार के लिए स्वीकार किया। लेकिन जैसे उसके द्वारा शिक्षा का प्रसार नहीं हो सका था, ठीक उसी प्रकार से समृद्धि का भी प्रसार नहीं हो पाया। समाज के धनी वर्ग को आर्थिक विकास का अवस्य लाभ मिला, क्यों कि वे अपनी क्षमता के क्लो आर्थिक समृद्धिया विकास के रिसाव को वृसते गये, जबकि दलित या निर्धन वर्ग अपनी अक्षमता के कारण ऐसा न कर सका। अतः वह निर्धन ही बना रहा। आर्थिक विकास एवं औदौरिक उत्थान से कुछ नीग समृद्ध हुए, लेकिन गरीबी नहीं दूर ही सकी। अर्थशास्त्री डाँ० दीनानाथ रांग्गेकर भारतीय समाज में गहराते हुए आर्थिक संकट पर टिप्पणी करते हुए कहा है: भारत आज अपने को एक अधूरी खोद्योगिक कृतिन और एक सोस्ती हो चुकी प्राचीन संस्कृति के अवज्ञापूर्ण प्रतिरोध के बीच ठहरा हुवा पा रहा है। यह उसी जटिल देत का एक पहलू है, जो एक अधिनिक औद्योगिक क्षेत्र के विकास तथा गरीबी ग्रस्त कृषि क्षेत्र की लंगडाहट के बीच दिसाई पड़ता है। गाँवों में यह देत हरित कृतिन्त के कारण और गहरा हुआ है, क्योंकि इसके परिणाम स्वरूप भूमिहीन मजदूरों और सीमान्त किसानों की संस्था काफी बढ़ी है। शहरी गरीबी वस्तुत: देहाती गरीबी का ही उच्छिष्ट है। नेकिन गाँवों में रहने वाले गरीब संख्या में ज्यादा बिखरे हुए और उसंगि उत है। गाँवों में गरीब का कोई सहारा नहीं है। सरकार वहाँ जो कुछ करती है, उससे बन्तत: अमीरों और शिक्तशाली लोगों को ही पायदा होता है। हमारी पूरी प्रणाली भूमिपतियों, व्यापारियों, साह्कारों और राजनीतिक खेंदारों का पक्षपात करती है और ऐसा जिन कारणों से होता है, हमारे राजनेता इन्हें बित्कृत ही छेड़ना नहीं वाहते।"

<sup>।-</sup> रविवार - 15 - 21 बगस्त , 82

अकँ के बताते हैं कि 1977 - 78 में 52.82% ग्रामीण जनसंख्या तथा
38.19% शहरी जनसंख्या गरीबी रेखा के नीचे जीवन थापन कर रही थी। शहरी
एवं ग्रामीण दोनों प्रकार के गरीबों को एक साथ लेने पर सन् 1977-78 में देश की
कुन जनसंख्या का 48.13% भाग गरीबी रेखा के नीचे था। छठी थोजना में यह
स्वीकार किया गया है कि देश की आधी जनसंख्या एक लम्बे असें से गरीबी रेखा
से नीचे जीवन गुजाररही है। ग्रामीण क्षेत्रों में गरीबी की सीमा रेखा से नीचे
जीने वालों की संख्या प्रतिवर्ष पाँच लाख की दर से बद्दती गयी है। योजना आयोग
के एक अनुमान के अनुसार 1979 - 80 में गरीबी की सीमा रेखा के नीचे जीने वाली
आबादी 33.90 करोड़ थी, जो कि दुनिया के किसी भी एक देश में गरीबी की
सीमा रेखा से नीचे जीने वाली विशालतम आबादी है। विकास की मौजूदा बेमेल
नीतियों के कारण इस संख्या के सन् 2000 तक 50 हजार तक पहुँच जाने की बार्सका

# विषमता की बढ़ती साई:-

स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में भारतीय समाज में किनास के साथ-साथ वार्थिक विषमता बद्गी गयी है। बायोजना के प्रारम्भिक दो दशकों में उत्पन्न हुई बार्थिक विषमता की स्थिति पर टिष्मणी करते हुए के0 एन0 राज ने कहा था -"बाज बाय एवं सम्पत्ति के वितरण की असमानता बदी हुई है और उस समय की तुलना में ज्यादा है, जब बायोजन दारा बार्थिक विकास की प्रक्रिया शुरू हुई थी। 3

<sup>1-</sup> भारतीय वर्षेव्यवस्था - पुर 279 , मित्रा एवं पुरी

<sup>2-</sup> साठौरतरी हिन्दी कविता - परिवर्तित दिशाएँ - पू० 18, विजय कुमार

<sup>3-</sup> मारतीय वर्धव्यवस्था - पू० 300 , मित्रा एवं पुरी

विकास के साथ - साथ बद्दी वाली बार्थिक विषमता का कारण यह था कि जहाँ सारी पंववर्षीय योजनाओं में विकास पर जोर दिया गया, वहीं बार्थिक असमानता को कम करना किसी भी बायोजना का उद्देश्य नहीं रहा । बायोजकों की धारणा यह रही है कि विकास के साथ - साथ असमानतायें अपने बाप कम होती जायेगी । लेकिन "यदि विकास का स्वस्प सामाजिक ढांचे की बार्थिक विसंगतियों से नहीं जूझता, तो विकास के साथ-साथ अमीरी और गरीबी के बीव की दूरी भी कुमशः बद्ती जाती है ।"। स्वतन्त्रता के बाद भी भारत में सामाजिक ढांचे की बार्थिक विसंगतियां पूर्ववत बनी रहीं, जिसके कन्ते यहाँ सबको बार्थिक विकास का समान नाभ नहीं प्राप्त हुवा और अमीरी तथा गरीबी की मध्य की खाई बौड़ी होती कनी गयी ।

जहाँ तक ग्रामीण क्षेत्रों की आर्थिक विषमता का प्रश्न है, वह मूलत: भूमि के स्वामित्व की विषमता का परिणाम है। शासन द्वारा किये गये भूमि सुधार के देर सारे दावों के बावजूद भी कृषि भूमि का अधिकारा भाग मात्र कुछ लोगों के ही अधीन रहा है। 1971-72 में जहाँ 40% ग्रामीण जनसंख्या के पास कृषि भूमिका केवल 1.58 भाग था वहाँ 5.44% लोगों के स्वामित्व में 39.43% कृषि भूमि थी। 2 भूस्वामित्व की इस विषमता के कारण भूमिहीन,कृषि - मजदूर एवं निर्धन बने रहे, बस्य भूमि वाले कृष्क थोड़ी बाय अजित कर सके तथा बड़े कृष्क निरन्तर विकसित होते गये। ग्रामीण क्षेत्रों की ही तरह शहरी क्षेत्रों में भी आर्थिक विषमता की जड़

<sup>1-</sup> साठोत्तरी हिन्दी कविता: परिवर्तित दिशार्थे - पृ० 13, विजय कुमार 2- भारतीय वर्थव्यवस्था - पृ० 301 . मित्र एवं पुरी

गहराती गयी है। वर्ष 1975 -76 में शहरी क्षेत्रों के सबसे सम्पन्न 10% परिवारों के पास वहाँ की कुछ सम्पत्ति का 46.28% था, जबिक नीचे के 60% परिवारों के पास कुल सम्पत्ति का केवल 11.66% था। स्वतन्त्रता के बाद के वर्षों में वार्थिक विषमता का दृश्य गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक स्पष्ट दिखायी पड़ा है। अधिक विषमता की खाई गाँवों की अपेक्षा शहरों में अधिक वोड़ी है। वहाँ यदि एक और कूड़े से दाना बीन कर खाने वाले लोग हैं, तो दूसरी और भीजन पर अपव्यय करने वाले नोग भी हैं। कोई झुगगी झोपड़ी एवं खुने आकाश के नीचे रात - दिन बिता रहा है, तो कोई भव्य भवनों में भी रह रहा है। कोई विधड़ों में घूम रहा है, तो कोई वेशकीमती वस्त्राभूषण भी पहने है। कहने का तात्पर्य,शहरों में सम्पन्नता-वियन्तता का एक बद्भुत संगम है, जो गाँवों में नहीं दिखाई पड़ता।

स्वातन्त्रयोत्तर भारत में देश की जनता ने जिस आर्थिक बदहाली—शोषण, गरीबी, बेरोजगारी, भुजमरी, आर्थिक विषमता आदि को क्षेत्रा है उसकी साठोत्तर किवयों ने अपनी किवता में जहाँ एक और सच्ची तश्वीर पेश की है, वहीं दूसरी और आर्थिक बदहाली के लिए जिम्मेदार तत्त्वों को बेनकाब भी किया है। भारतीय जनमानस का मोहभा : आम चुनाव विद्रोह एवं आन्दोलन :-

स्वतन्त्रता के बाद जनता ने देश का शासन काँग्रेस के हाथ में सौपा। लेकिन उसकी जनविरोधी गतिविधियों के कारण जनता का उससे मोहका होने लगा। काँग्रेस से जनता के मोहका की शुक्तात 1957 के द्वितीय वाम चुनाव में दिखायी पड़ती है और इसके बाद उसका मोहका निरन्तर दूह होता गया है। वाम चुनावों के परिणामों

<sup>!-</sup> शास्तीय वर्षेच्यवस्था - पूछ 256 . मित्र एवं पूरी

पर दृष्टि डालें तो, स्पष्ट होता है कि 1957 के द्वितीय आम कुनाव से लेकर 1977 के छठें आम बुनाव तक कांग्रेस का मत प्रतिशत निरन्तर घटता गया है। अनेक राज्यों में उसकी सरकार का तम्बू उखड़ा है और केन्द्र में भी उसकी स्थिति दयनीय होती गयी है।

1957 के दितीय बाम चुनाव में केरल में कम्युनिस्ट पार्टी की बहुमत मिना और उसकी सरकार बनी । इस बाम चुनाव में बान्ध्र प्रदेश, उड़ीसा एवं पश्चिमी बंगाल में कम्युनिस्ट पार्टी का प्रदर्शन बच्छा रहा । मतप्रतिशत घटने के बावजूद केन्द्र तथा राज्य में कांग्रेस की ही सत्ता रही ।

1962 में हुए तीसरे आम वृताव में साम्यवादी दल ने कांग्रेस को जबरदस्त
टक्कर दी। लोकसभा में 29 स्थानों पर कब्जा करके उसने अपने को कांग्रेस के विपक्ष
में खड़ा कर दिया। मध्य प्रदेश एवं राजस्थान में भी कांग्रेस को सत्ता सुरक्षित
रखते हुए भी नुक्शान उठाना पड़ा। कांग्रेस की साजिश बोर सच्चाई से विपक्षी
दलों ने जनता को जैसे - जैसे अवगत कराया वैसे - वैसे वह कांग्रेस को तिरस्कृत करती
गयी।

1967 में हुए बीधे बाम चुनाव में कांग्रेस धराशायी हो गयी। जिटल पिरिस्थितियों से संत्रस्त जनता ने कांग्रेस को पराजय का मुँह दिखा दिया। केन्द्र में उसके बहुम्त के शासन का तम्बू उखड़ गया। मिली जुनी सरकार बनी, जिन्में पृथ्वान मन्त्री पद कांग्रेस के पास ही रहा। कांग्रेस को पंजाब; राजस्थान, उत्तर पृदेख, बिहार, परिचनी बंगाल, उड़ीसा, केरल, मद्रास बादि बाठ राज्यों में बपना बहुम्त सीना पड़ा। "'कांग्रेस मर गयी • • • • इसकी बिक्त वपरिमेय थी,

<sup>1-</sup> समझालीन कविता में जावादी केतना च पू० 141 - 142 . 260 दिनाव के विक्रि हों। डाँठ नक्केंद

इसका कुहक असीम। • • • • • यह चिरादिम मिश्रित जन्तु की तरह विभिन्न जानवरों के अंगों से बना था। गधे का मृह, शेर का जबड़ा, हाथी के पैर, छिमकली की अधि, गिरिगिट का रंग। \* \* भूछ और अपमान की ज्वाला में झूलस्ते इस देश के कूढ़ हाथों में कांग्रेस की गर्दन जा गयी, और उसने पागल बनमानुष की तरह अक्झोरना शुरू किया। कांग्रेस का दम घूट गया और वह गिर गयी। \*2

1967 में केन्द्र में श्रीमती इन्दिरा गाँधी के नेतृत्व में बनी संयुक्त या सविद सरकार अपना कार्यकाल पूरा नहीं कर सकी । फलत: सन् 1971 में मध्यावधि चुनाव के रूप में पाँचवा आम चुनाव हुआ । विकल्महीनता के करते ही मोहमंग को सीने में दबाये भारतीय मतदाताओं ने न बाहते हुए भी कांग्रेस को शासक के रूप में चुना । श्रीमती इन्दिरागाँधी प्रधान मन्त्री बनीं । उनके नेतृत्व में कांग्रेस सरकार ने 1971 से 77 तक के अपने शासन के दौरान जनता की बाकांक्षाओं के अनुकूल कार्य न करके अपनी निरंक्षाता एवं तानाशाही का ही परिचय दिया । आपात रियति के रूप में उसने जो दमनक्क क्लाया, उससे जनता में उसके प्रति धीर घृगा उत्पन्न हो गयी ।

1977 में छँठा बाम कुनाव हुआ । इसमें जनता का अभूतपूर्व कांग्रेस विरोधी स्थ सामने बाया । जनता ने कांग्रेस की पूरी तरह सत्ता से बाहर कर दिया । 1947 से 77 तक के तीस वर्षीय शासन के जूमे को जनता ने अपनी गरदन से उतार दिया । कांग्रेस के स्थान पर उसने "जनतापाटीं" को देश की सत्ता सौंपी । जनता पार्टी की सरकार भी एक प्रकार से मिली जुनी सरकार थी, क्योंकि वह स्वतन्त्र दल न होकर विधिमन विवारधारा वाले दलों का संगठन थी । इसमें संगठन कांग्रेस,

<sup>1-</sup> बाधुनिक परिवेश और नवलेखन - पू० A3-44 डॉ० शिवप्रसाद सिंह 2- वहीं पू० 42 - 43

भारतीय लोकदल, जनसंघ, समाजवादी दल और वन्द्रशेखर के नेतृत्व में विद्रोही कांग्रेसियों का विलय हुआ था। पारस्परिक मतभेद के कारण यह सरकार भी अपना कार्यकाल पूरा न कर सकी और 1980 में मध्याविध चुनाव के रूप में सातवाँ आम चुनाव सम्पन्न हुआ।

1980 के सातवें आम चुनाव में काँग्रेस को पूरी सफलता मिली। जनता का काँग्रेस से बेहतर शासन क्लाने का दावा करने वाले विपक्षीदलों से भी मोहभंग हो गया। इस आम चुनाव में काँग्रेस को पुन: चुनना उसकी मजबूरी थी। जनता को सारे दल अञ्टावार के दलदल में पैसे दिखायी पड़ने लगे। सबकी छवि उसकी दृष्टि में एक-सी हो गयी, किसी पर उसे भरोसा नहीं रह गया।

"जो पीदी स्वतन्त्रता के बाद जन्मी, वह पिछने दशक में ही क्यस्क हुई ।
यह पीदी वार आम चुनावों के माहौल में फ्ली फूली पीदी है और राजनीति इसके
तिए जिसी यूटोपिया को सिद्ध कर दिखाने का सिद्धान्त अथवा आदर्श न होकर उसके
पल-पल कठिन होते जाते जीवन संधर्ष को तेज करते जाने की प्रक्रिया का नाम है ।"
राजनीति के इसी दोगलेपन के कारण जनता में जो असन्तोष एवं मोहभा का भाव
उपजा उसको उसने समय-समय पर हुए आम चुनावों में मतदान के माध्यम से ही नहीं
दश्या, बल्कि बान्दोलन के रूप में भी प्रवस्ति किया । वाहे नक्सक्वाड़ी किसान
आबदोलन हो, यह फिर ज्यादकारा नारायम का युवाबान्दोलन तथा पीठरठसीठ
विद्रोह, ये सब सत्ता की गलत नीतियों के कारण उपजे क्सन्तीष एवं मौहभा के
परिणाम थे।

<sup>1-</sup> कविता से साक्षात्कार - पूछ 165, मलयज

## नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह :-

स्वतन्त्रता के बाद के वर्षी में देश के अन्दर यदि सबसे ज्यादा कोई उपेक्षित रहा है, तो वह है क्षक वर्ग। कहने के लिए तो देश में स्वतन्त्रता के बाद जमींदारी उन्मूलन हुआ. लेकिन भूमिहीन क्षक व्यवहारत: इसका कोई लाभ नहीं पाप्त कर सके, क्योंकि जमींदारी उन्मलन में इतनी सामियाँ थी और उसको लाग करने में इतना विलम्ब हुआ कि जमीदारों ने अपनी भूमि को पाय: बवा लिया। जमीदारी भी हो गया और जमीदारों के पास जमीन भी बनी रह गयी । भूमिहीन क्षक का छोटे क्षक स्वतन्त्रता के बाद भी जमींदारों- जो जमीदारी उन्मुलन के बाद बड़े क्षक के नये संस्करण के रूप में उभरे— की भूमि पर बटाईदार या क्षक मजदर की तरह पहले की ही तरह कार्य करते हुए शीषित होते रहे । भूस्वामित्व विहीनता के कारण, भूमि पर कुषक की असली भूमिका का निवृहि करते हए भी उन्हें वपने अप की तलना में बहुत कम हिस्सा प्राप्त होता रहा, जबकि जमीदार अपने भुस्वामित्व के बल पर बिना कुछ किये भी उत्पादन का अधिकाँश भाग हड़पते रहे । किप उत्पादत में ऐसी हिस्सेदारी के क्लते क्षकों की दशा दयनीय होती करी गयी । अन्तत: पश्चिमी बंगाल के नक्सलबाठी के किसानों से न रहा गया और उन्होंने मार्च 1967 को बान्दोलन छेड़ दिया । यह बान्दोलन बांक्सवादी कम्यनिस्ट पार्टी के नेतत्व में बारम्भ हवा बोर शीध ही इसने बनींदार एवं पुलिस के जिलाफ सहस्त्र विद्वीह का रूप धारण कर लिया । वपने परिश्रम से कमायी गयी फ्लन पर क्षकों ने अधिकार कर लिया । सारे भूमिहीन क्षक एवं चाय बागान के मजदूर इसमें सामिल हो गये। शासन के समझ कुषड़ों का पेसा उग्र स्व था, जिस्की तसने क्यी कल्पना भी नहीं की थी । नक्सनवाड़ी क्षक विद्रोह यहिंप क्वन दिया

गया, लेकिन पिर भी उसने देश के समस्त किसानों के समक्ष अपने अधिकार हेतु जूझने की मिसाल पेश की तथा पूँजीवादी एवं सामन्तवादी शक्तियों को अक्झोर दिया। पी० ए० सी० विद्रोह:-

उत्तर प्रदेश में स्वतन्त्रता के बाद गोविन्द व लाभ पन्त के मुख्य मंत्रित्व काल में पी० ए० सी० नाम एक दर्द सैनिक बल का गठन किया गया। इसके गठन का उद्देश्य साम्प्रदायिक दंगों एवं विद्रोहीं को रोकना था, जिसे रोकने में सामान्य प्रित्स नाकामयाब हो जाती थी। इस दर्द सैनिक बल के कार्य पर टिप्पणी करते हुए रिववार साप्ताहिक ने लिखा था - 'पवास से सत्तर तक के बीस वर्षों में उत्तर प्रदेश में साम्प्रदायिक दंगों, छात्र, मजदूर, किसान बान्दोलनों तथा सामान्य वशान्ति एवं उपद्रवों के दो दशक रहे हैं। इन दशकों में पी० ए० सी० के बामिसपाही को वर्ष में बौसतन 325 से 350 दिनों तक इस्ट्री करनी पड़ी"।

इतना भारी बोब उठाने वाले इस कई सैनिक बल की दशा बड़ी दयनीय थी। इसके जवानों की नियुक्ति के सारे मापवण्ड सेना के जवानों की तरह थे, लेकिन इनके वेतन, सुविधाये, सेवाशतें उनकी तुस्ता में निम्नकोटि की थी। यही नहीं, अधिकारीमण इनसे अपने व्यक्तिगत नौकर की तरह भी काम लिया करते थे। पीठ एठ सीठ के जवानों ने अपने साथ हो रहे अत्यावारों का विरोध तथा अपनी मांगों को प्रस्तुतीकरण सरकार के समझ प्रजातान्त्रिक ढंग से किया। लेकिन सरकार ने उनेक्षा का भाव अपनाते हुए जनवरी 197% में इनके संगठन को अवैध घोषित कर दिया। अस: उत्तर प्रदेश की पीठ एठ सीठ मई 1973 में विश्वर कर बागी हो

<sup>!-</sup> रविवार साम्ताबिक - 21 - 27 जून, 1987 , पूo 33

गयी और पी० प० सी० की यह बगावत आने वाले दिनों में देश के तमाम सूबों के पुलिस एवं सशस्त्र अर्द सैनिक बलों के विरोध का आधारिबन्द बली ।" "मई 1973 में 1857 के सिपाही गदर के ठीक 116 वर्ष के बाद पी० ए० सी० के सिपाहियों ने लखनऊ में दूसरे गदर की घोषणा की । 22 मई 1973 की वर्द रात्रि में पी० ए० सी० के जवान अपनी बैरकों से बाहर निकल आये। " देखते-देखते यह विद्रोह रामपुर, गोरखपुर, वाराणसी, बरेली, कानपुर आदि नगरों तक पैल गया। इस विद्रोह को दबाने के लिए सेना का प्रयोग हुआ। पी० ए० सी० एवं सेना के मध्य हुए आमने-सामने के युद्ध में दोनों तरफ के सैनिक घायल हुए। अन्तत: सेना अपने पूरे बल प्रयोग द्वारा इस विद्रोह को कुक्सने में समर्थ हुई।

#### युवा जान्दोलन :-

भारत के जिहार राज्य में मार्च 1974 में खड़ा होने वाला यूवा जान्दोलन, जो बाद में देश के कई राज्यों में फेल गया, वैश्विक स्तर पर अपने काल की कोई अकेली घटना नहीं थी। 1965 से 75 के मध्य का एक दशक ही समग्र विश्व में यूवा जान्दोलन का काल रहा है। "इस काल में भारतीय यूवा पार्टी ही नहीं, प्राय: समूची पूँजीवादी दुनिया की युवा पीदी की कल्याणकारी विश्वासों से भारी शास्था भंग हुई, पूँजीवादी दुनिया में यूवक सड़कों पर निकल खाये - शिक्षा व्यवस्था, शासन्तन्त्र, उद्योगपतियों की धाँघलेबाजी बोर जमानवीय दुष्टिकोण को दुनौती देते हुए बर्लिन बोर पेरिस, मिलान बोर स्टाक्होम, टोकियो बोर अंकारा, वेस्त बोर लापरज, स्वालियर बोर पटना, भोपाल बोर कानपुर - सेकड़ों शहर परिवर्तन की मांगों से गुँज उठे। "3

<sup>1-</sup> रविवार साप्ताहिक 21 - 27 क्न 1987, पृ**0** 33

<sup>2- -</sup> वहीं - पू0 33

<sup>3-</sup> जालीचना - जनवरी - मार्च, अप्रैल - जून, 1981, पू0 131

1971 के पाँचे आम चुनाव के बाद श्रीमती इन्दिरागाँधी के नेतृत्व में सत्ता में आने के बाद काँग्रेस शासन ने जो निरंकुश रख अपनाया, उससे स्वतन्त्रता एवं जनतंत्र की सारी अवधारणायें विपरीत नजर आने नगी । वारों और असन्तोष व्याप्त हो गया । 1973 में गुजरात में असन्तृष्ट युवा आत्र अपनी माँगों को लेकर सड़क पर उत्तर आये । इसके एक वर्ष बाद 13 मार्च 1974 को बिहार के युवकों ने शासन के अत्यावारों के खिलाफ अपना जान्दोलन ज्यप्रकाश नारायग के नेतृत्व में, उनके सम्पूर्ण कृतित के नारे के साथ आरम्भ कर दिया ।

बी जयपुकाश नारायण के नेतृत्व का सम्बल पाकर यह बान्दोलन के तल विहार के युवकों का ही नहीं, बिल्क सम्पूर्ण भारत के युवकों का बान्दोलन बन गया गुजरात की धरती में बंकुरित होने वाला यह युवा बान्दोलन बिहार की धरती एवं जयपुकाश नारायण के नेतृत्व की उर्वरता पाकर इतना पल्लिक्त हुआ कि देखते ही देखते उत्तर प्रदेश . महाराष्ट्र, पश्चिमी बंगाल तथा मध्य प्रदेश में फेल गया । वैसे तो, जयपुकाश नारायण के नेतृत्व वाला यह बान्दोलन युवकों पर ही आधारित था, नेकिन प्रत्यक्ष कप से मजदूर किसान, शासकीय, अशासकीय कर्मवारी भी इसके समर्थक थे । 'सम्पूर्ण कृतिन एवं सरकार ठप्प करो के नारे के साथ प्रवल होते इस बान्दोलन को देखकर सरकार बोखला गयी । बिहार के सम्प्रद्भा नामक स्थान पर बान्दोलनकारी कान्नों के जुनूस पर पुलिस ने गोली कलायी । 8 बप्रैल 1974 को जयपुकाश नारायण की बगुवार्ष में पटना में एक मौन जुनूस निकाला गया, जिसे वसप्रव बनाने के लिए पुलिस ने भारी बल प्रयोग किया । बान्दोलनकारियों ने बिहा विद्यान सभा भग करने की माँग की । वपने को जनवादी बताने वाली कम्युनिस्ट पार्टी ने बान्दोलनकारियों की इस माँग के खिलाए उ जुन को एक जुनूस निकाला ।

बाद में इसी दल ने जयप्रकाश नारायग पर हमला बोलने का नारा देकर अपना जनविरोधी एवं कांग्रेस समर्थक स्ख पूरी तरह स्पष्ट कर दिया।

जान्दोलन को और सिक्टिय, व्यापक एवं गम्भीर बनाने के लिए ज्यपुकाश नारायण ने एक कार्यक्रम की घोषणा की - "अगस्त से 'कर नहीं' आन्दोलन प्रारम्भ होगा , जुनूस व सभाएँ होंगी । 9 अगस्त को 8 अगस्त ६६४२ - भारत छोड़ो दिवस की याद में क्रान्ति दिवस मनाया जायेगा और 15 अगस्त जनस्वराज दिवस होगा ।" इस कार्यक्रम के एक साथ अनुपालन से आन्दोलन तीव्रतर हो उठा । उत्तर प्रदेश में युक्कों ने जहाँ 'नया मोर्चा' गठित करके जयप्रकाश नारायण के इस आन्दोलन को आगे बदाया वहीं 'नोहिया विवार मंच' ने इसे महाराष्ट्र में गित प्रदान की ।

इस युवा जान्दोलन को एक नयी गति तब मिली, जब शासन की शोक गितिविधियों के विस्त विद्रोही स्वर जन-जन तक पहुँवाने वाले साहित्यकार पणीश्वर नाथ रेणु को पुलिस ने गिरफ्तार कर लिया। इस गिरफ्तारी से साहित्यकारों, छात्रों, पत्रकारों एवं जन्य बुद्धिजीवियों में हलकल मव गयी। स्थान - स्थान पर रेणु की गिरफ्तारी के विरोध में प्रदर्शन हुए,लेकिन साहित्यकारों का एक वापलूस वर्ग भी था, जो उपने धर्म को भूनाकर सत्ता की हाँ हजूरी में लगा रहा।

8 सितम्बर को बोलते हुए जयप्रकाश नारायण ने कहा - "बिहार वान्दोलन की तार्किक परिणति दिल्ली से सीधी टकर लेने में है। कब तानाशाही को केन से बेठने नहीं दिया जायेगा। 3 वबद्बर से कोई ट्रेन नहीं गुजरने दी जायेगी, करें नहीं कोगी, सरकारी दफ्तर में काम नहीं होंगे और दकाने भी बन्द रहेंगी। कब हमारी दिल्ली से सीधी लड़ाई है, बिहार सरकार से ही नहीं। 3 वबद्बर के हमारे

<sup>।-</sup> युवा राजनीति - पृ० 67 , शीनाथ शर्मा

कार्य क्रम से बिहार सरकार एक हफ्ते के बन्दर धराशायी हो जायेगी।" 2 अक्टूबर 1974 को जयप्रकाश नारायग ने लाखीं प्रदर्शनकारियों को दिल्ली में उतार दिया, जहाँ बिहार विधान सभा भैंग करने का प्रधान गन्त्री को ज्ञापन दिया गया और 4 नवम्बर 1974 को पटना में एक विशान रेलो के आयोजन की घोषणा की गयी। 4 नवम्बर 1974 को हुई इस विशाल रेली के साथ पुजिस ने अपना बर्बर स्ख अपनाया, जिससे काफी लोग घायल हुए। "वार नवम्बर को भारत सरकार ने जो कुछ पटना में किया, वही अंग्रेज सरकार करती, तो भारत पर सौ वर्ष तक और शासन कर सकती थी।"2

#### अपात काल :-

युवा बान्दोलन पूरी तीव्रता के साथ वन ही रहा था कि इसी बीव 12 जून 1975 को राजनारायण बनाम इन्दिरागाँधी मुकदमें में सुनाये गये अपने निर्णय में इनाहाबाद उच्च न्यायालय के न्यायमूर्ति श्री जग्मोहन नान सिन्हा ने इन्दिरागाँधी के चुनाव को बवेध घोषित कर दिया। फलत: 25 जून 1975 को दिल्ली के रामलीना मेदान में आयोजित रैली में जयप्रकाश नारायण ने इन्दिरागाँधी से त्याग पत्र की माँग की। युवा बान्दोलन एवं उच्च न्यायालय के निर्णय से बातिकत श्रीमती गाँधी ने 26 जून 1975 को बान्दोलन एवं उच्च न्यायालय के निर्णय से बातिकत श्रीमती गाँधी ने 26 जून 1975 को बान्दिक बापात रिथित नागू कर दी। बान्दोलनकारी छात्रों, एवं साहित्यकारों को मीसा के बन्तर्गत जेन में डान दिया गया। बापात कान की घोषणा से लेकर 18 जनवरी 1977 को हुई छठे बाम चुनाव की घोषणा तक का कान

<sup>। -</sup> युवा राजनीति - पृ० 71, शीनाथ सर्मा

<sup>2- -</sup> वहीं - पू0 75

प्रशासिनिक आतंक कर काल था। इस बीच समाचार माध्यमों पर सेंसर लगा रहा, जिना कारण बताये लोगों को जेल में डाजा गथा और पुलिस प्रशासन की स्वेच्छावारिता। बदी। आम चुनाव की घोषणा के बाद जेल यातना भोग रहे नेताओं को रिहा किया गया। 23 जनवरी 1987 को, विकिन्त दलों के नेताओं ने मिलकर जनता पार्टी का गठन किया। 16 मार्च एवं 20 मार्च 1977 को हुए आम चुनाव में जनता ने इस नवगठित पार्टी को प्रचण्ड बहुमत देकर सत्ता सोंपी और काँग्रेस को धराशायी कर दिया। साठोत्तरी कविता ने मोहभंग एवं असन्तोष के कारण पनपे आन्दोलनों एवं विद्रोहों का समर्थन किया है, उसके स्वर से स्वर मिलाया है और देश की छद्म चुनावी राजनीति पर तीसी बोट की है।

# सामाजिक - सांस्कृतिक परिवर्तन :-

स्वतन्त्रता के बाद भारत में स्वीक्त पूँजीवादी व्यवस्था, बोद्योगिकीकरण एवं बाद्यनिक शिक्षा के प्रवार-प्रसार ने यहाँ की सामाजिक सांस्कृतिक मान्यतावों को काफी प्रभावित किया, लोगों की सोच एवं जीवन शैली बदली, एक - एक करके पारम्परिक मून्य छिन्न - मिन्न हुए बौर बाधुनिकता के नाम पर जहाँ एक बौर, उपयुक्त एवं तार्किक बातें अपनांबी गयीं, वहीं दूसरी बौर ढेर सारी बनुपयुक्त एवं वतार्किक बातों को भी स्वीकृति मिली। व्यक्ति से लेकर समाज तक, विन्तन से लेकर कार्य व्यापार तक बौर दर्शन से लेकर धर्म तक, हर जगह, कहीं जावह यकता के तौर पर, कहीं फेक्न के तौर पर बदलाव बाया। जनसंख्या का स्वरूप बदला, परिवार विखण्डित हुए, यौन सम्बन्ध उन्मुक्त हुवा, बहली लता फेक्न बनी बौर धर्म तथा ईरवर सम्बन्धी पारम्परिक विवार ढह गये।

# जनसंख्या का नगरीन्युख पलायन :-

स्वतन्त्रता के बाद ग्रामीण जनसंख्या का नगरों की और बड़ी तीव्रगति से पनायन हुआ। सत्तर के दशक तक ग्रामीण जनसंख्या की भीड़ नगरों में स्पष्ट स्प से दिखायी पड़ने लगी। जनसंख्या के नगरों न्यूस पनायन पर टिप्पणी करते हुए डाँठ वाष्णीय ने लिखा है - "1960 और 1971 के बीच तीन करोड़ व्यक्ति नगरों में आकर बसे हैं। 1971 में नगरों की आबादी 11.12 करोड़ के लगभग थी, उगले दश वर्षों में उसके 16 करोड़ हो जाने की सम्भावना है। "ग्रामीण जनसंख्या का नगरों में बाने का मुख्य कारण रोजगार की तलाश रही है। ग्रामीण संसाधन ब्ह्ती हुई जनसंख्या की जीविका एवं शवश्यकता की पूर्ति में अक्षम होने लगे। फलत: खतन्त्रता के बाद पेदा हुए नोग, जो सत्तर के दशक तक युवा हो गये थे, रोजगार की तलाश में औद्योगिक नगरों एवं सरकारी केन्द्रों में जाने लगे। इन नोगों में शिक्षित एवं बिश्वित दोनों तरह के युक्क रहे हैं। जीविकार्जन के लिए नगरों में आये युक्कों ने पाया, कि एक सद्यन संवर्ष के बाद भी दो जून की रोटी कमा पाना किन्त है। शिक्षत युक्कों को जीविकान उपलब्ध करा पाने वाली विद्यालयीन, महाविद्याल यीन एवं विश्वविद्यालयीन शिक्षा व्यर्थ साबित होने लगी।

शहरों में बद्दती हुई जनसंख्या के परिणाम स्वरूप आवास की समस्या उत्पन्त हुई । किसी तरह दो जून की रोटी कमाने वाने लोग न तो अच्छे घरों को किराये पर ले सके और न अपने लिए अच्छा स्वच्छ घर बना सके । उत्त: हुआ यह कि शिर खुमाने और रात गुजारने के लिए खाली पड़े गन्दे स्थानों पर शुम्मी श्रोपड़ियों की बिस्तयाँ बस्ती करी गयीं। उहाँ के सीलन एवं गन्दगी युक्त दम घोदू वातावरण

<sup>।-</sup> द्वितीय महायुदोत्तर, हिन्दी साहित्य का इतिहास - पू० 49, वार्कीय

में रहना लोगों की मजबूरी रही है। भारतीय नगर एवं महानगर विषम जीवन शैली के नमूने हैं। जहाँ सड़को स्कार सुस्ति ज्ञात आवासों में घोर विलासिता के साधनों के साथ जीवन यापन करने वाले लोगों की जिन्दगी के कामद दृश्य हैं, तो दूसरी त्रोर की वड़ में सने, अर्दन मन, कवड़े से दानाबीन कर पेट करने वाले तथा सुले ताकाश के नीचे गर्मी, सर्दी एवं बरसात की जिताने वाले लोगों की जिन्दगी की तासद ताक्वीर है।

## वैयिक्तक विखण्डन :-

नगरों, महानगरों की पूँजीवादी एवं उपभोगवादी संस्कृति ने गाँव के स्वस्थ परिवेश से जीविकार्जन के लिए जाने वाले युवकों को वैयक्तिक स्तर पर विखण्डित कर दिया । उनकी भावनाओं की सत्विकता एवं कोमलता, वहाँ की थान्त्रिक जीवन पढ़ित से बूर-बूर हो गयी । उसने पाया कि यहाँ मनुष्य एकदम मशीन है, जिसे एकदम सधे सधाये दंग एवं निश्चित रास्ते पर क्लते रहना है।

परिवार के सहानुभूतिपूर्ण वातावरण से अन्य हुए लोगों ने नगरों एवं महा नगरों की मायावी दुनिया में अपने को एकदम अकेला पाया । उसे यह अनुभव हुआ कि
न-तो यहाँ उसके अपने व्यक्तित्व की पहचान है और न उसकी पीड़ावों के प्रति कोई
संविद्यत होने वाला है । उनसंख्या के महासमुद्र में हर और मत्स्य न्याय है, हादसा
देखी और गुजर जावों की सोच है और सौदेखाजी की संस्कृति है । एक और वैश्व
की कार्चोंच है और दूसरी और रात-दिन संवर्ष करके भी अस्तित्व को न बचा पाने
का संबद्ध है । कदम - कदम पर अपमान और अवमानना है । ऐसी स्थिति में कुण्ठा
निराशा, अकेलायन, व्यक्ता बोध, संबास, पीड़ा, अवमानना, मानस्कि तनाव जैसे
नगरीय महानगरीय भाव बोध से गुजरना व्यक्ति की विवशता हो गयी है । इस

मानिसक क्लेश से राहत पाने के लिए वह अपने को मद्मपान, जुआ, वेश्यावृत्ति, अश्जील साहित्य के अध्ययन तथा सतहे मनोरंजन में लिप्त रखता है। ये साधन उसे उसकी मानिसक पीड़ा से कोई स्थायी राहत नहीं, बित्क एक क्षणिक विमुक्ति ही दिला पाते हैं। ये सारी स्थितियाँ ऐसी हैं, जिससे व्यक्ति वैयक्तिक स्तर पर विखण्डित हुआ है, उसका स्वस्थ भावबोध मरा है और उसे अपने व्यक्ति होने की गरिमा के एहसास से वीवत होना पड़ा है।

#### पारिवारिक विखण्डन:-

स्वतन्त्रता के बाद भारतीय संयुक्त परिवार बड़ी तेजी से विखण्डित हुए हैं
त्रीर उनका स्वस्प एकाकी होता वला गया है। संयुक्त परिवार की अवधारणा
कृषि आधारित समाज की देन थी। गाँव में कृषि के लिए जिस जनसमूह की आवश्यकता
होती थी, उसकी पूर्ति एक संयुक्त परिवार ही भली-भांति कर सकता था। आजीविका
के और कोई साधन नहीं थे, फलत: ग्रामीण जनसंख्या संयुक्त परिवार के रूप में इकाईबद्ध होकर कृषि कार्य में लगी रहती थी। धीरे - धीरे कृषि पर जनसंख्या का दबाव
बद्धा और वह विश्वाल जनसमूह को आजीविका प्रदान करने में अक्ष्म हो गयी।
औद्योगीकरण की प्रक्रिया के फलस्वरूष नगरों में आजीविका के नये साधन उपलब्ध हुए।
शासकीय कार्य के सम्पादन की बावश्यकता ने भी लोगों की जीविका के लिए साधन
उपलब्ध कराया। फलत: लोग आजीविका हेतु कृषि आधारित ग्रामीण संयुक्त
परिवार छोड़कर बोद्योगिक कारखानों एवं सरकारी कार्यालयों में बाने लगे। इसी
अलगाव से पारिवारिक विखण्डन की शुरूवात हुई।

कृषि में लोग सामूहिक रूपसे कार्य करते थे और उससे प्राप्त आय पर उनका सामूहिक बिष्कार रहता था, जिससे वे उसका सामूहिक उपभोग भी करते थे। लेकिन सरकारी कम्यालियों एवं बोद्योगिक कारखानों में कार्य करने वाले लोगों की बाय उनके

व्यक्तिगत परिश्रम का फल होती है। उतः वे अपनी व्यक्तिगत आय को संयुक्त परिवार के उपर वर्ध करके अपनी पत्नी एवं बच्वों के उपर वर्ध करना वाहते हैं और अपने वैयक्तिक उत्थान के इच्छुक रहते हैं। संयुक्त परिवार में रहकर अपनी निजी कमाई का स्वच्छन्द उपभोग सम्भव नहीं हो पाता. उतः नोग अपने बीवी बच्चों के साथ संयुक्त परिवार से अनग होते गये हैं। इस प्रकार, हम देखते हैं कि श्रोद्योगिकरण के परिणामस्वरूप पनने व्यक्तिवादी, स्वच्छन्दतावादी एवं उपभोगवादी विन्तन ने भारतीय संयुक्त परिवार की अवधारणा को तोड़ दिया है। पारिवारिक विख्ण इन की इस प्रक्रिया से हानि – लाभ दोनों हुए हैं।

#### योन स्वच्छन्दता:-

भारतीय समाज में विवाह को धार्मिक कृत्य, एक संस्कार एवं जन्मजन्मान्तर का सम्बन्ध मानने की जो अवधारणा थी, वह स्वतन्त्रता के बाद धीरे-धीरे अस्वीकृत होने नगी और विवाह को पार स्परिक सम्बौता एवं कामजन्य शारीरिक आवश्यकता की पूर्ति का साधन मानने का विवार जोर पकड़ता गया। विवाह के सम्बन्ध में पनपी इस अवधारणा ने उसकी जातीय सीमा को तोड़ दिया। शिक्षा बोद्योगीकरण एवं सम्पर्क की बन्य परिस्थितियों के कारण विभिन्न जाति धर्म के युवक एवं युवतियाँ एक दूसरे के सम्पर्क में बायीं, जिस्से उनके मध्य प्रणय सम्बन्ध स्थापित होने के अवसर उत्पन्न हुए और अन्तर्जातीय विवाहों को बन मिला। विवाह को मात्र समझौता एवं जैकिक बावश्यकता की पूर्ति का साधन मानने के परिणाम स्वस्प तलाक एवं सम्बन्ध विकेद की घटनाए बद्दती गयी।

नगरों महानगरों में पूँजीवादी एवं उपभोगतावादी संस्कृति का जो एक लक्क स्वरूप सामने बाया, उसके करते यौन सम्बन्धों की सारी वर्जनाएँ समाप्त हो गयी। यौन-सम्बन्ध उन्मुक्त, स्वच्छन्द एवं उच्छूंकल हो गये। यह उन्मुक्तता, स्वच्छन्दता एवं उच्छूंक्वता लोगों को अप्राकृतिक यौन सम्बन्धों की और भी ले गयी। स्वच्छन्द यौन सम्बन्धों को फेशन के तौर पर स्वीकार किया गया। फलत: भूग हत्या एवं बलात्संग सामान्य बात हो गयी।

# नारी स्वातन्त्र्य:-

स्वतन्त्रता के बाद धीरे-धीरे स्त्रियों की दशा में सुधार जाता गया है।
पर्दा प्रथा, जो नारी के व्यक्तित्व के उत्कर्ष में बाधक थी, धीरे-धीरे समाप्त होती
गयी है। घर की दीवारों को नांध कर स्त्रियों ने जीवन के हर क्षेत्र में पदार्णण
किया है। स्त्री-शिक्षा के प्रसार के कारण उनमें गुणवत्ता जायी है, जिससे सरकारी
कार्यालयों, व्यक्तिगत संस्थाओं, विकित्सा, इंजीनियरिंग, प्रशासन, शिक्षा,
राजनीति जादि सभी क्षेत्रों में भागीदारी निभाने में वे सक्षम हुई हैं। शासन ने
स्त्रियों को पुरुषों के सम्बद्ध स्थान प्रदान किया। "हिन्दू उत्तराधिकार कानून
दारा स्त्री कम पर, स्त्री कम विधकार तथा पुत्री को - - - - - अपने
पिता की सम्पत्ति में उसके भाइयों - - - - - - के समान अधिकार दिया गथा।
स्त्री एवं पुरुष के मध्य शासन द्वारा स्थापित समानता की नीति एवं शिक्षा के प्रसार
के कस्ते स्त्रियों को अपने व्यक्तित्व को निक्षारने एवं समाज में अपनी पहवान बनाने
का अवसर मिला। वे अब पुरुषों की कनुगामी नहीं रहीं, बत्कि सहगामी एवं
वगुमामी की स्थिति तक पहुँच गर्यों। इतना होते हुए भी यह नहीं कहा जा सकता
कि सारी स्त्रियों की दशा में व्यापक सुधार हुवा है। लेकिन यह बात जरूर है कि

<sup>1-</sup> वाधितक भारत - पूठ 463 - 464 , एलठ पीठ शर्मा

सुधार के लिए अवस्द मार्ग सुन गया है। कुछ भी हो नेकिन इस सच्चाई से भी
मुँह नहीं पोड़ा जा सकता है कि पूँजीवादी एवं उपभोगतावादी संस्कृति के कृत्रिम
आकर्षण ने नारी को उपभोग का साधन बनने के लिए सहर्ष तैथार कर लिया है।
आज की नारी के भोग्या स्प एवं रीतिकालीन नारी के भोग्या स्प में अन्तर बस
इतना है कि जहाँ रीतिकाल में पुरुष ने नारी को भोग्या बनाया था, वहाँ आज
नारी समुदाय का एक बड़ा हिस्सा, कारण कुछ भी हो, स्वेच्छा से भोग्या बना
है। नारी के प्रति उपभोगवादी दृष्टि में भी कोई बदलाव नहीं आया है, यदि
कोई बदलाव है, तो वह है वर्जनावाँ से मृक्ति का। वर्जनावाँ के दृट जाने के कारण
नारी के प्रति उपभोगतावादी दृष्टि उच्छुक्त एवं स्वच्छन्द हो गयी है।

#### अश्लीलता : पेशन के रूप में :-

देश में फैली पूँजीवादी एवं उपभेगवादी संस्कृति ने अस्तीलता को धन कमाने के एक हथियार के रूप में अपनाया है। उसने चतुर्दिक अस्तील पत्र-पित्रकार्जों एवं फिल्मों का ऐसा मायाजाल रवा है जिसमें नारी का नम्म एवं अर्धनम्म शरीर ही आकर्षण का केन्द्र है। हताश, निराश एवं कृण्ठा ग्रस्त युवापीदी ने जहाँ क्षणिक उत्तेजना के लिए इनको अपनाया, वहीं सम्पन्न नोगों ने अपनी भोगवादी एवं विलासितापूर्ण वृत्ति की तृष्टि के लिए इनमे रुचि दिखायी है। अस्तीलता मात्र पत्र-पत्रिकार्जों एवं फिल्मों तक ही सीमित नहीं है। वह व्यक्ति की वेश-भूषा, शब्द एवं कार्य व्यापार तक ब्याप्त है। लोगों ने अस्तीलता को वायुनिकता के नाम वर फेक्स के रूप में बोद्द लिया है।

# मूल्यहीनता एवं सीदनेहीनता :-

स्वतन्त्रता के बाद भारत में जो पूँजीवादी एवं उपभोगवादी संस्कृति पनपी उसने नगरों एवं महानगरों के वातावरण में मून्यहीनता एवं संवेदनहीनता का विष घोज दिया, जिसका प्रभाव ग्रामीण वातावरण पर भी हत्का ही सही लेकिन पड़ रहा है। अधिकाधिक उपभोग करने, विलासिता के साधन जूटाने एवं एक भारी पूँजी एक्त करने की होड़ ने घुसघोरी. बेईमानी. लूट-ग्रसोट. तस्करी. शूठ-परेब, हत्था. डकेती. तथा बनावार को जन्म दिया है बोर सच्वरित्रता. परिश्रम, सादगी, न्याय एवं मानवता के महत्व को अञ्जा दिया है। उपभोग, विजासिता एवं धन की आकर्षक दिनया के पीछे दौड़ने वाला हर व्यक्ति इतना कुर एवं हिंसक हो गया है कि किसी के द: ख-दर्द, पीड़ा एवं विवशता को समझने की उसकी वेतना कुक गयी है। साध्य में निहित स्वार्थपरता के जिए साधन की पवित्रता की तिलांजित दे दी गयी है। इस लूट-ससोट वाली संस्कृति में नैतिकता बेईमानी हो गयी है और कथन तथा कार्य के मध्य एक भयंकर अन्तराल दिखायी पड़ रहा है। नगरौँ एवं महानगरों में जड़ जमाये बैठी इस अनपरेब वाली संस्कृति से साक्षात्कार करने वाले गामीण परिवेश के सीधे साधे व्यक्ति के लिए अन्टावार ही सबसे बड़ी सब्वाई है और सदावार असबसे बड़ा हुठ। उसके समक्ष दो ही मार्ग हैं - या तो वह इन सबसे बुपचाप समझौता करते या फिर बिना मुँह छोले मूल्यहीनताजन्य अन्तहीन पीड़ा को सहै।

# जातियों का राजनी तीकरण एवं उनकी परम्परागत विशेषता में परिवर्तन :

भारतीय समाज की एक महत्वपूर्ण विशेषता उसकी जाति व्यवस्था है।
जाति विभाजन का बाधार कार्य विभाजन रहा है और जातियों का परस्परिक
सम्बन्ध कार्य-सम्बंधों पर बाधारित रहा है। बोधोगीकरण, बावागमन के साधन
एवं शिक्षा के प्रसार के कारण लोगों में जागस्कता बायी, जिस्से अब वे अपने जातीय
पेशे पर ही बाधारित नहीं रहे। उन्होंने उन कार्यों को भी करना बारम्भ किया,

जो उनके जातीय कार्य नहीं थे, लेकिन आर्थिक दृष्टि से लामकारी थे। स्वतन्त्रता के बाद कृमशः जातियों के मध्य विद्यमान छुआछूत को भावना गिटती गयी। जेसे - जेसे नोगों में राजनीतिक वेतना विकिसत हुई, वेसे-वेसे उनमें जातीय वेतना भी पृष्ट होती गयी। लोग अपने जातीय हित के पृति अधिक सवेत होने लगे। देश की कृगावी राजनीति ने देश की जातियों का राजनीतिकरण कर दिया। जातियों को वोट वेंक के रूप में संगठित किया गया। परिणाम यह हुआ कि देश में जातिवाद पनपने नगा और जातीय संघर्ष की स्थिति उत्पन्न होने लगी। आज को स्थिति में स्वातन्त्र्योत्तर भारत के समाज का सबसे बड़ा दुर्भाय उसमें पनपा जातिवाद है। धर्म एवं ईश्वर सम्बन्धी धारणा में परिवर्तन:-

स्वतन्त्रता के बाद तीव्रगति से हुए औद्योगीकरण, शिक्षा के विकास एवं वैवारिक आदान प्रदान के कारण लोगों में तार्किक्ता आयी । समाज के शिक्षित एवं प्रबुद्ध लोगों ने धर्म एवं ईश्वर को तर्क की कसोटी पर कसना आरम्भ किया । परिणाम यह हुआ कि दोनों के सम्बन्ध में प्रचलित अन्ध मान्यताओं को नकारा जाने लगा । धर्म एवं उपासना से सम्बन्धित कर्मकाण्डीय आडम्बर को छोड़ा गया । पुरोहित वर्ग के दबाव को भी अस्वीकार कर दिया गया । भाग्यवादी एवं पूर्वजन्मवादी अवधारणा को त्याग कर लोगों ने अपने पुरुषार्थ पर बन दिया । फलत: अपनी किसी भी दुर्गति को ईश्वरीय विधान, पूर्व जन्म का फल या भाग्य मान कर सन्तोष कर जाने की प्रवृत्ति से लोगों को मृक्ति मिली और दुर्गति या विसंगति के प्रति उनके मन में तीव्र असन्तोष पनपा तथा उससे छुटकारा पाने के लिए संघर्ष का मार्ग अपनाया । संसार में कुछ भी देवी नहीं रह गया, बन्धि हर वस्तु का भौतिक, रसायनिक एवं जैविक विश्लेषण होने लगा । नीत्से के कथन – श्रीवर मर गया – ने लोगों के मन मस्तिष्ठ में गहराई तक धुसी ईरवर की जड़ को यदि उखाड़ा नहीं, तो हिला जरूर दिया। ईरवर मरा कि नहीं मरा, ईक्ट्यर का अस्तित्व है या नहीं है, स्थिति वाहे जो है, लेकिन नीत्से के इस कथन से नोगों की हर बीज को ईरवरीय मानकर जिम्मेदारी से हटने एवं संघर्ष से विमुक्त होने की जो प्रवृत्ति थी दूटने लगी ।

साठौत्तरी किवता ने इन सागाजिक - सांस्कृतिक परिवर्तनों को स्वीकार किया है, लेकिन आँख मूँद कर नहीं। उसने व्यक्ति के व्यक्तित्व को दबाने वालो तथा उसका शोषण करने वानी पारम्परागत सामाजिक सांस्कृतिक मूल्यों पर जितनी वोट की है उतनी ही वोट उसने उन आधुनिक मूल्यों मान्यताओं एवं सामाजिक सांस्कृतिक स्थितियों पर भी की है जो व्यक्ति के व्यक्तित्व को दबाती है उसका शोषण करती है।

#### अध्याय - चार

## साठोत्तरी हिन्दी कविता: राजनीतिक विद्रोह का पर्याय

साठौत्तरीकिता का विद्रोही स्वर काफी तीखा, व्यापक एवं प्रभावकारी है। फलत: विद्रोह इस दौर की किता की खास विशेषता हो गयी है। इस किता में निहित विद्रोह स्वातंत्र्योत्तर भारत में निरन्तर जिटल होती राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक विसंगतियों के कारण जन-जीवन में उत्पन्न हुए मोहमंग एवं असन्तोष तथा किवयों के मन में पनपे वाष्ट्रिनक्बोध का परिणाम है। स्वतंत्रता के बाद भारतीय राजनीति की गतिविधियां जनाकांकां के विपरीत, एवं धातक सिद्ध होती रही हैं। वीन के साथ हुए युद्ध में देश की पराजय से भारतीय राजनीति की कूटनीतिक असफलता सामने जायी। निरन्तर बढ़ते वार्थिक संकट से जनता त्रस्त होती रही। समाज जहां एक और सड़ी-गली मान्यतावों से जकड़ा र हा,वहीं दूसरी और स्वस्थ मूल्यों का पराभव भी होता रहा। ऐसी विषम परिस्थित में विसंगतियों के विश्व विद्रोह एवं अस्विकार का स्वर उठाना किवयों की विवकाता एवं उनके किवका की वावश्यकता थी।

यहाप इस दौर के कवियों में जनजीवन की राजनीतिक, वार्थिक, सामाजिक वादि सभी जिटलतावों के प्रति वपना विद्वाही रख जाहिर किया है, लेकिन पिर भी उनका विद्वाह राजनीति के प्रति वपेक्षाकृत अधिक व्यापक और सम्राक्त है। यही कारण है कि साठोत्तरी कविला के विद्वाह को सामान्यत: 'राजनीति के प्रति विद्वाह के रूप में देखा जाता है। राजनीति के प्रति साठोत्तर कवियों के विद्वाह की तीक्ष्णता एवं

व्यापकता अपेक्षाकृत अधिक होना अकारण नहीं है। वे भलीभाँति जानते हैं, कि आज के परिवेश में राजनीति का सर्वत्र दखल है। जनता को आर्थिक राजनीतिक एवं सामाजिक न्याय दिलाना राजनीति या शासन का उत्तरदायित्व है। आर्थिक एवं सामाजिक विसंगतियाँ, सत्ता की नीतिगति खामियौं एवं कार्यीविधिगत अन्दाचारौं की दैन है। राजनीति की सच्चरित्रता से ही सर्वत्र अमन वैन की बहाली संभव है। अत: उन्होंने राजनीति पर अपने विद्रोह को अधिक केन्द्रित किया है। साठौत्तरी किवता: हाथ की तरफ उठा हुआ हाथ -

स्वातन्त्र्योत्तर भारत में सन् 1960 के बाद का समय देर सारी विसंगतियों से युक्त रहा है । देश की जनता को जीवन के हर क्षेत्र में इन विसंगतियों से युक्त पड़ा है । क्लत: उसके मन में पूरे परिवेश के प्रति घोर असन्तोष, बाकृत्रेश, एवं विद्रोह का भाव पनपा है । पग-पूरा पर बत्याचार, बन्याय, शोषण एवं क्रन्टाचार का साक्षात्कार करते हुए जनवादी कवियों ने पाया, कि बाज के माहौल में जीवन की सबसे बड़ी सच्चाई विद्रोह है बौर अपने बिस्तत्व को अस्करार रखने के लिए उसकी बावश्यकता है । परिवेश के दबाव से पनपे इस विचार से कवियों की कविताग्रत्यारम्परिक सौच बदल गयी । कविता की परिभाषा बदली, कविता का उद्देश बदला, इसे यों कहें कि कविता का पूरा सैविधान ही बदल गया । युगीन बावश्यकता एवं सच्चाई, विद्रोह कविता का साध्य बन गया बौर कविता उसका साधन बन गयी । कवियों ने कविता को व्यवस्था के विसद सद्धाई का हथियार बनाया । उन्होंने उसका कभी बस्त्र के रूप में प्रयोग किया, कभी शस्त्र के रूप में ! व्यवस्था के विसद संबर्ध में कविता को लाठी से लेकर मिसाइल की क्षिम्हा में उतारा गया है । पूर्ववर्ती कवितावों में भी विद्रोह के स्वर है, परन्तु साक्ष्रक्रिकी की स्वर में विद्रोह का बौर विलेश कर राजनीति के

प्रति विद्रोह का पर्याय बन गयी है।

'आलोकधन्वा' ने 'गोली दागो पोस्टर' किवता में, किवता को किवता नहीं, बिल्क व्यवस्था के विरुद्ध गोली दागने की समझ बताया है। किवता में निहित यही समझ 'लेखनी एवं हल को' तथा'लेखक एवं किसान' को एक साथ खड़ा करके संधर्ष के लिए तैयार करती है:

"यह किता नहीं है

यह गोली दागने की समझ है।

जो तमाम कलम कलाने वालों को

तमाम हल कलाने वालों से मिला रही है।"

हिन्दी किता के इतिहास में सर्वप्रथम साठोत्तर दौर की किता ने ही शोकों को उनके बत्याचार के जुर्म में सजा सुनायी है। उसके द्वारा सुनायी गयी सजा कोई साधारण सजा नहीं, बित्क सजाये मौत है। यहले की किततावों में जान देने की बातें हैं, जान लेने की नहीं। जान लेने की बात यदि कहीं है भी, तो वह सजा के ऐलान के तौर पर न होकर, छापामार कार्यवाही के तौर पर है। वेगुगोपाल की निम्न किता में हिन्दुस्तानियों के मुसोलोनियों की मौत की सजा का ऐलान कुछ इस प्रकार है:

<sup>।-</sup> बालोक धन्ता - गोली दागी पोस्टर -, वाम - 2 । २- व हाथ होते - प्० 69 , केगुगोपाल ।

साठोत्तरी किवता शोषण और अत्यावार की वक्की में पिसते बेक्सूर निर्बल लोगों के पक्ष में दृद्ता से खड़ी होने वाली तथा उनके समर्थन में जोरदार वकालत करने वाली किवता है। यह किवयों के लिए धन कमाने एवं सत्ता की वापलूसी करके पद न लाभ पाने का साधन नहीं है। यह किवता आदमी को उसकी अहमियत शिक्त एवं अधिकार का बोध कराने एवं उसे प्राप्त करने के लिए संधर्षरत होने की प्रेरणा देने का मन्त्र है:

किवता क्या है १ कोई पहनावा है १ कुर्ता पायजामा है १ ना भाई ना किवता शब्दों की बदालत में मुजरिम के कटघरे में खड़े केक्सूर बादमी का हलफनामा है क्या यह व्यक्तित्व बनाने की छाने कमाने की चीज है १ ना भाई ना किवता भाषा में बादमी होने की तमीज है ।

इस दौर की कविता शोषण, बत्यावार एवं विसंगतियों से घिरे हुए आदमी के बाक़ोश एवं विद्रोह को व्यक्त करती है, उसका काम जीवन-संवर्ष को तीव्र करना एवं

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - मृतासिकारस्वाही - धूमिल

जीवन यथार्थ को पेश करना है। उसमें परियों एवं राजारानी की कथा नहीं है। वह धरती की व्यथा से सम्पृक्त है और उसे दूर करने की उर्जा से युक्त है:

> किता घेराव में किसी बोस्तायें हुए बादमी का संक्षिप्त एकालाय है।

विद्रौही तैवर के कारण साठी त्तरी किवता का अनुभूति के स्तर पर वादमी से रिश्ता बदल गया है। यह किवता कान से सुनी जाने वाली किवता नहीं, बिल्क पेट से सुनी जाने वाली किवता है। कहने का तात्पर्य, यह किवता पेट की समस्या से जूझने वाली किवता है। इसका कार्य मनोरंजन करना नहीं है। इसे आदमी नहीं गाता, बिल्क यह आदमी को गाती है। यह आम आदमी की समस्या को प्रस्तुत करती है, उन समस्याओं के मूल में निहित सच्चाई को अनावृत्त करती है:

"इस वक्त जबकि कान नहीं सुनते हैं कि किताएँ कि किता पैट से सुनी जा रही है, आदमी गजन नहीं गा रहा है गजन आदमी को गा रही है।"<sup>2</sup>

साठो स्तरी कविता का विद्रोह एवं उनवादी चरित्र केदार नाथ सिंह के सब्दों में कुछ इस प्रकार है:

"कविता क्या है हाथ की तरफ उठा हुउन हाथ देह की तरफ

<sup>। -</sup> संसद से सङ्क तक - कविता. ए० ८ , धूमिल २- संसद से सङ्क तक - कविता १५० ए० ६१ , धूमिल ।

बुकी हुई जात्मा मृत्यु की तरफ धूरती हुई जांखे।

यहाँ केदारनाथ सिंह ने किवता को शोषकों के हाथों के विरुद्ध उठा हुआ हाथ, देह को शिक्त देने वाली आत्मा तथा मृत्यु यानी समुपिस्थत आपित्त पर आग उगलती आँख के रूप में स्वीकार किया है। आज के परिवेश में किवता का यह विद्रोही स्वरूप ही हितकर है। साठौत्तर दौर की किवता में मौम की तरह मुलायिम्यत नहीं, फौलाद की तरह सख्ती है। यह जन विरोधी व्यवस्था के उपर कें जाने की मुद्रा में तना हुआ पत्थर है:

"यह किता नहीं पत्थर है बिलकुन ठीक फेके जाने को तना।" - ज्ञानेन्द्रपति

कुमार विकल के लिए कविता हथियारों का जड़ीरा है। उसके बारे में सोचते हुए उन्हें हथियारों के नाम याद बाते हैं। यह कविता हथियारों का विकल्प है, सबस्त्र विद्रोह का प्रेरक है:

> "जब मैं अपनी कविता के बारे में सोचता हूँ तो मुझे कई हथियारों के नाम याद बाते हैं।" 2 - एक सामरिक -चुम्पी - कुमार विकल ।

साठोत्तर किव की लेखनी किविता के रूप में युद्ध का मानिक बनाती है, जिसे पीड़क व्यवस्था के विरुद्ध लड़े जाने वाले युद्ध में प्रयुक्त किया जाना है। इस किविता में लड़ाई की योजना है, जिसकी सफलता में ही सामान्य जन के मिवष्य की सुरक्षा सम्भव है:

<sup>1-</sup> यहाँ से देखों - पूछ १, कविता सवा है - केदारनाथ सिंह 2- प्रमतिस्थित कविता के मील प्रत्यह = पूछ 278, संठ डाँठ रणजीत

"मेरे हाथों में यह जो कलम है कल की लड़ाई का नक्शा तैसार करने में लगी है।" -'परेड के घोड़े' कुमारेन्द्र पारसनाथ सिंह

साठौत्तरी कविता वर्तमान सामाजिक राजनीतिक तन्त्र के षड्यन्त्र की खिलाफ्त करती हुई, जन सामान्य के समर्थन में खड़ी है:

"विपक्ष में
सिर्फ किवता है
सिर्फ किवता है
सिर्फ हज्ज्ञाम की सुली हुई 'किसमत' मे एक उस्तुरा'
चमक रहा है। - 'संसद से सड़क तक'- नक्सलबाड़ी - धूमिल
बाज की स्थिति में " दुनिया का सबसे - - - - - - विद्रोही

शब्द कविता है।" - जनशरिक्त - विजेन्द्र

## जनविद्रोह एवं साठौत्तरी विवता :

भारतीय जता ने स्वतन्त्रता प्राप्ति को मात्र सत्ता परिवर्तन नहीं समझा था। उसे विश्वास था, कि स्वतन्त्रता के बाद उसे वे मूलभूत सुविधायें एवं विधिकार व्यावहारिक रूप में प्राप्त होंगे, जो मनुष्य को वालिए और जो गुलासी के दिनों में उपलब्ध नहीं थे। लेकिन स्वतन्त्रता मात्र सत्ता परिवर्तन ही सिद्ध हुई। जनता विदेशी गुलामी से मुक्त होकर स्वदेशी गुलामी के किन्ने में पंत गयी। स्वदेशी सत्ता जनता को सब्बबाम दिखाती रही, भाषणों से उसका पेट भरा जाता रहा और अकिलों से देश की समृद्धि का मानवित्र गद्दा जाता रहा। सेढान्तिक रूप में सब कुछ बेहतर था, लेकिन क्यावहारिक रूप में हर स्थिति बदतर थी। स्वतन्त्रता एवं परतन्त्रता के मध्य 15 बगस्त 1947 की पेतिहासिक तिथि ही विभाजन रेखा रही हे,वन्यथा कोई भी बद्धन ऐसे नहीं रहे हैं, बो बाम जनता को स्वतन्त्रता का बोध करा वाते। कृष्ट एवं बीका की पूरानी स्थिति नये रूप में बरकरार रही। जनता काली हालत के सुधार की प्रतीक्षा शासन के आश्वासन के आधार पर करती रही, लेकिन अन्तत: सारे आश्वासन प्रवंकना साबित हुए। भूखी एवं शोषित जनता का सत्ता एवं स्वतन्त्रता से मीह भंग हो गया। उसका सारा असन्तोष विद्रोह के रूप में पूट पड़ा अपना अधिकार पाने के लिए वह विद्रोह एवं आन्दोलन के मार्ग पर वल पड़ी। ऐसे विद्रोह एवं आन्दोलन साठोत्तर काल में काफी संख्या में उभरे हैं।

सत्ता ने विद्रोह के कारणों को समाप्त करने के स्थान पर विद्रोहों को ही समाप्त करने की कौशिश की । ऐसा करने के लिए उसने उन्हीं साधनों को बिस्तयार किया. जिन्हें परतन्त्रता के दिनों में ब्रिटिश सत्ता ने अपनाया था। स्वतन्त्रता के तुरन्त बाद सन् 1949 में तेलंगाना में हए किसान विद्रोह की क्रता से कका कर सत्ता ने यह साबित कर दिया कि उसमें एवं ब्रिटिश सत्ता में कोई अन्तर नहीं है। इसे छोड़ भी दिया जाये,तो सत्तर के दशक से तो देश के विभिन्न भागों में विद्रोह एवं बान्दोलन की बन्तहीन शुंखना की शुरुवात दिखाई पड़ती है। चाहे नक्सलबाड़ी का किसान विद्रोह हो या उ० प्र0 का पी० प0 सी० विद्रोह. जयपुकार नारायण की युवाकान्ति हो. या शाषायी बान्दोलन ये सब शासन की गलत नीतियों के परिणाम रहे हैं। साठौरतरी कविता में इन सारे उनान्दोलनों एवं विद्रोहों को अभिव्यक्ति मिली है। इसने जन विद्रोहों से कदम मिलाया है, उसका समर्थन एवं वकालत की है तथा शोका धर्मी सत्ता को लकारा है। साठोस्तरी कविता जनविद्रोहों के धरातल पर ही पनपी है। जनविद्रोहों एवं जनान्दोलनों से बावाज मिलाकर इस कविता ने सत्ता के पृति अपने विद्रोह को पुकट किया है, जिसे हम निम्न रूप में देस सकते हैं :

# । - नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह: भूख में तनी हुई मुठ्ठी का नाम:-

सन् 1967 में बंगाल के नक्सलवाड़ी गाँव में भड़का किसान विद्रोह. आजादी के बीस वर्ष बीत जाने के बाद भी देश की रीद्ध समझे जाने वाले किसानों की दशा की बदतर होने से न रोक पाने वाली स्वदेशी सत्ता के मुख पर एक तमावा था। विद्रोह ने स्वदेशी सत्ता की छत्रष्ठाया में किये जा रहे क्षक शोका का सुनासा किया और यह स्पष्ट कर दिया कि देश का किसान अब शोषण को और अधिक नहीं सह सकता है। ज़नींदारों के स्वामित्ववाली भूमि पर अपने परिश्रम से उगाई गयी प्रसल पर किसानी द्वारा कब्बा करने से इस विद्रोह की शुक्तात हुई। विधि व्यवस्था की स्थापना के नाम पर प्रशासन द्वारा जमींदारों के पक्ष में किसानों पर बल प्रयोग किया गया। अत: उन्होंने सशस्त्र विद्रोह का रास्ता पकड़ लिया। वाय बागानी के शोषित श्रीमकों एवं उन्य श्रीमहीन क्षकों के सीम्मिलित हो जाने के कारण यह विद्रोह व्यापक एवं समाक्त हो गया । सुसुप्त ज्वालामुखी की तरह भड़के इस विद्रोह से प्रजातन्त्र की गीद में पल रहे सामन्तवाद एवं पूँजीवाद की जड़े हिल गयीं। सत्ता की शक्ति ने विद्रोह को क्वन कर अपने को सामन्तों एवं पूँजीपतियों के क्षेमें में 'सड़ा कर दिया। 1949 के तेलगाना किसान विद्रोह की परम्परा में जन्मे इस क्षक विद्रोह ने अपनी असपलता के बावजूद भी "संसद को बाहर जाने की बावाज दी।"

साठोत्तरी कि विता पर 'नक्सलबाड़ी विद्रोह' का प्रभाव बड़ा व्यापक रहा है। उसने कि विता को एक नई सुराक दी और कि वियों के मन को सक्सीर कर उन्हें सौक्ने के लिए विवश किया। पलत: कि विता एवं राजनीति का मुकाबला आमने-सामने का हो

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - नक्सलबाड़ी - धूमिल ।

गया और किव "अपनी किता के लिए दूसरे प्रजातन्त्र की तलाशां" में जुट गया।

उसने नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह एवं उसी के परिप्रेक्ष्य में किसान जीवन एवं ग्रामीण

परिवेश की पीड़ावां को अपनी किता में स्थान देकर शोषणधर्मी सत्ता के विरूद

अपने आकृशि एवं विद्रोह को मुखरित किया। नामवर सिंह के शब्दों में - "सन्

1967 के बाद सही है कि एक महत्वपूर्ण परिवर्तन हुआ और आकृशि को एक स्पष्ट

राजनीतिक दिशा मिली, जिसका सम्बन्ध नक्सलबाड़ी आन्दोलन से है। दिशाहीन

व्यवस्था विरोध का अन्त हो गया और राजनीतिक वेतना आयी - - - - उस

आन्दोलन के दौरान नगरोन्मुख हिन्दी साहित्य ग्रामोन्मुख किया गया, जो बहुत बड़ी
देन है।"

धूमिल की एक कविता है 'नक्सलबाड़ी'। अपनी इस कविता में उन्होंने व्यवस्था पर तीसा प्रहार करते हुए दूसरे प्रजातन्त्र की तलाश की बात कही है, वियोक यह प्रजातन्त्र निर्धिक है, यह 'प्रजा' यानी सामान्य जन के अधिकारों को सुरक्षित रखने में अक्षम है। उस व्यवस्था की अमानवीय नीतियाँ ही नक्सलबाड़ी जैसे विद्रोह के कारण है। विद्रोह के माध्यम से उन्नरी जनकिंद्राओं का उसने सम्मान नहीं किया, बन्कि उसे कुक्ता है:

जंगल से जिरह करने के बाद
उसके साथियों ने उसे समझाया कि भूस
का इलाज नींद के पास है !

मगर इस बात से वह सहमत नहीं था

विरोध के लिए सही शब्द पटोलते हुए

उसने पाया कि वह अपनी जुड़ान -

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - नक्सनबाड़ी - धूमिल ।

सहुवाइन की जाँघ पर भूल आया है;
पिर भी हकलाते हुए उसने कहा भूबे अपनी किवता के लिए
दूसरे प्रजातन्त्र की तलाश है।

इस पूरे तन्त्र में कृषक जनता अकेली है। कोई भी राजनीतिक दल उसकी रहनुमाई का नाटक अपनी आवश्यकता तक ही करता है। अन्ततः वह भी व्यवस्था के पक्ष में वला जाता है। राजनीति के इस दोगलेपन का शिकार नक्सलबाड़ी विद्रोह भी हुआ था। धूमिल के शब्दों में:

वह सक् समझौता बन गयी है कल तुमने संसद को बाहर जाने के लिए लावाज दी थी नहीं अब वहाँ कोई नहीं है मतलब की हबारत से होकर सबके सब व्यवस्था के पक्ष में क्ले गये हैं। लेखपाल की भाषा के लम्बे सुनसान में जहाँ पाली और बंजर का पर्क मिट कुता है चन्द खेत हथकड़ी पहने सड़े हैं।<sup>2</sup>

धूमिल जनता को सत्ता एवं राजनीति के छद्म रूप से सावधान रहने के

<sup>। –</sup> संसद से सड़क तक – नक्सलबाड़ी – धूमिल । 2– – वही –

उसकी बाँधों में कमका हुआ भाई वारा किसी भी रोज, तुम्हारे वेहरे की हरियाली को बेमुरोब्बत बाट सकता है।

अपनी 'पटकथा' किता में धूमिल ने देश में जनता के दो रूपों का जिल्ल किया है। उसका एक रूप वह है, जो भूस की आग को पेट में दबाये हुए, हाथ में भीस का कटीरा लेकर दया के लिए रिरिया रहा है और उसका दूसरा रूप वह है, जो भूस के सहारे मुद्दुठी ताने नक्सलबाड़ी के रूप में सड़ा है। धूमिल को जनता का नक्सलबाड़ी रूप ही पसन्द है, क्योंकि वह अपने हक के लिए सत्ता से दो - दो हाथ करने के लिए तैयार है:

एक ही संविधान के नीवे
भूख से रिरियाती हुई फेली हथेली का नाम
दया है
और भूख में
तनी हुई मुठ्ठी का नाम
नक्सलबाड़ी है।<sup>2</sup>

ज्यूड़ी भी नक्सलबाड़ी विद्रोह से प्रशावित हैं। उनकी कविता कार्देव सिटक इस प्रशाव का बड़ा स्पष्ट उदाहरण है। जपनी इस कविता में ज्यूड़ी ने जपने पात्र 'बलदेव सिटक' के माध्यम से शासन को चुनौती दी है। सत्ता के प्रति क्लदेव सिटक के मन में उपजा विद्रोह शासन के शोषण एवं बत्याचारों की उन्हीं परिस्थितियों का परिणाम है, जो नक्सलबाड़ी विद्रोह के मूल में थी। संतरी का चौला छोड़कर जपने

<sup>। –</sup> संसद से सङ्क तक – नक्सलबाड़ी – धूमिल ।

<sup>2-</sup> संसद से सङ्क तक - प्र0127 - धूमिल ।

असली रूप में लौटने के बाद 'बलदेव खिटक' का रूप बड़ा उग्र हो गया है। वह व्यवस्था पर आकृमण करने की दशा में है। जगूड़ी के शब्दों में:

> लेकिन वे जब पायर करेंगे तो यह तय है कि इस बार कोवे नहीं मरेंगे यानी इस बार निशाना व्यवस्था पर लगेगा।

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने भी नक्सलबाड़ी विद्रोह की अपनी कविता का विषय बनाया है। विद्रोह की असफलता पर उन्हें आश्चर्य है। उनकी आकाक्षा थी कि विद्रोह का पानी स्तरे का निशान पार करके विप्लवकारी बने:

> लेकिन यह कैसी विडम्बना है कि : पानी कभी सतरे का निशान पार नहीं कर पाया हर बार पछाड़ सा-साकर शान्त हो गया है एकाथ पृश्ते दूटे है एकाथ गाँव डूबे हैं नक्सलबाड़ी, श्री काक्लम, मुसहरी।<sup>2</sup>

2- पी0 प0 सी0 विद्रोह: 'वर्दी से बाहर निकल कर रोटी की माँग'-

उत्तर प्रदेश में 22 मई 1973 को हुआ पी० प० सी० विद्रोह भी सत्ता द्वारा किये जा रहे शोषण का परिणाम था। पी० प० सी० जवानों की समस्याओं की उपेक्षा, जब शासन निरन्तर करता रहा, तो उन्हें अपने हितों की सुरक्षा के लिए सशस्त्र विद्रोह का सहारा लेना पड़ा। यहापि शासन ने सैनिक कार्यवाही करके इस विद्रोह को कुबल दिया, लेकिन तत्कालीन कविता ने इस विद्रोह को जन्दा रखा।

<sup>। -</sup> बची हुई पृथ्वी - पृ० । ०। , लीलाधर उपूड़ी ।

<sup>2-</sup> कुवानी नदी - कुवानी नदी खतरे का निशान - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ।

और विद्रोहियों की माँगों का समर्थन किया। धूमिल ने अपनी अविता' निहत्थे आदमी से कहा' में पी० प० सी० विद्रोह की 'वर्दी से बाहर निकल कर रोटी की माँग' कहा है:

> सुबह जब बड़ी बन्दूक छौटी बन्दूक का नाश्ता कर रही थी मेने निहत्ये आदमी की गाँव की तरफ जाते हुए देखा -पगडंडी पर खाली हाथ जाते हुए भाई ! वर्दी के बाहर निकल कर रोटी की माँग की थी १ या किसी नागरिक प्रत्याशा में छोटे भाई के ज़िर पर प्रहार करने से मना किया था १

# 3- युवा बान्दोलन: समुपूर्व क्रान्ति का प्रयास

जयप्रकाश नारायण के नेतृत्व में, सम्पूर्ण कृतिन के उद्देश्य से, सन् 1974

में शुरू हुआ युवा अन्दोलन, स्वतन्त्र भारत का पहला जनविद्रोह था, जिसमें कांग्रेसी
सत्ता को उलट देने की वेतना निहित थी। इस आन्दोलन ने कांग्रेस के 30 वर्षीय
शासन को 1977 के आम चुनाव में धराशायी करके थूल चटा दिया। युवा शक्ति
के सहारे सहे इस आन्दोलन में देश के जन-जन का आकृशि एवं विद्रोह निहित था।
हिन्दी किवता भी इस आन्दोलन से आन्दोलित हुए बिना नहीं रह पायी। नागार्जुन
की किवता - 'कृतिन्त सुम्ह्माई है' इसी आन्दोलन से सम्बन्धित है:

<sup>।-</sup> सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र - पू० ६४ - धूमिल ।

कृतित सुग बुगाई है

करवट बदली है कृतित ने

मगर वह अब भी उसी तरह लेटी है।

एक बार इस और देख कर

उसने फिर से फेर लिया है

अपना मृह उसी और

'सम्पूर्ण कृतित' और समग्र विप्लव के मंजु घोष

इसके कानों के अन्दर

खीब भर रहे हैं या गुदगुदी

यह आज नहीं कल बता सक्गा।

#### 4- वापातकाल: एक नारकीय यान्त्रणा -

युवा जाक़ोश से भयभीत तत्कालीन काँग्रेस शासन ने 26 जून 1975 को जान्तिरक जापातकाल की घोषणा करके सिवधान की जाड़ में जान्दोलन को कुकलने के लिए कूर कदम उठाया। विरोधी नेताजों एवं जान्दोलनकारी युवाजों को सूठे जारोपों के तहत नारकीय यान्त्रणा सहने के लिए जेल में डाल दिया गया। लाठी, गोली एवं जाँसू गेस के प्रयोग से तमाम जान्दोलनकारी मारे गये और घायल हुए। नागार्जुन ने अपनी कविता कृतिन्त सुग बुगाई है में जापातकालीन पुलिस यान्त्रणा का निम्न चित्र प्रस्तुत किया है:

मोटे सलाखों वाली काली दीवार के उस पार लट्ठ्यारी साधारण पुलिसमैन नहीं है ---- नक्किन्य संत्रणा देकर तथाकियत 'अभियोग कबून करवाने वाले एलेक्ट्रिक कण्डक्टर हैं।<sup>2</sup>

<sup>। -</sup> नागार्जुन - चुनी हुई रक्नाएँ - भाग दो, पू० 163 2- वहीं पू० 221

कवियों एवं अन्य साहित्यकारों ने आपातकाल के दौरान शासन द्वारा

किये गये अत्याचारों का सुन्ध विरोध किया है। यह बात जरूर है, कि कुछ साहित्य कार अपने कर्तव्य से विमुख होकर सत्ता की वापलूसी में भी लगे रहे और विद्रोही

कियाों के सिलाफ षड्यन्त्र करते रहे। अनेक कियाों एवं लेखकों को जेन में डाल

दिया गया, लेकिन उनकी विद्रोही केतना सत्ता के आपात कालीन अत्याचारों से

मुरद्धायी नहीं। नागार्जुन ने अपनी किवता 'सूरज सहम कर उगेगा' में आपातकालीन

वातंक का चित्रण करते हुए लिखा है, कि सूरज जैसा संगोलीय फिण्ड भी भारत के

बाक्रोंच पर बापात् काल से सहम कर उगेगा। उनका यह लाक्षणिक कथन आतंक की

क्यंकरता की और संकत करते हुए स्पष्ट करता है, कि सरे, तेपतपाये एवं निर्दोष

लोग इससे प्रभावित है:

लगता है
हिन्द के जासमान में
सूरज पर भी लागू होंगे
जापात कालीन स्थिति वाले आर्डिनेंस
लगता है
हिन्द के जासमान में
जब सूरज सहम कर उगेगा।

वापात् काल के दौरान समाचार पत्रों पर बड़ा सकत प्रतिबन्ध था, जिसके काले सत्ता के वत्याचार उसमे नहीं छ्ये जब कि व्यर्थ की सबरें छ्यती रहीं। लेकिन साहित्यकारों की लेखनी पर कोई प्रतिबन्ध कारगर नहीं हुआ। वे वाततायी सासन की पोल सोलते रहे। उसम कमल ने बड़े व्यंग्यात्म दंग से लिखा है:

<sup>। -</sup> नागार्जुन की वुनी कवितायें - भाग दी , पू0 221 ।

असवारों की सबर थी
कैलीफोर्निया की एक कृतिया ने तेरह बच्चे एक साथ जने
असवार में सबर थी
युवराज ने कंगालों में कम्बल बाँटे।

x x x x

एक सबर जो कहीं नहीं थी
किरतगोड़ा को फाँसी हो गयी
एक सबर जो सबर नहीं थी
भूमेया को फाँसी हो गयी।

#### 5- भाषायी जान्दोलन : चन्द वालाक लोगों की वाल -

हिन्दी भाषी क्षेत्र में शुरू हुए उग्रीजी हटाजी जान्दोलन एवं तिमलनाडु में भड़के हिन्दी विरोधी जान्दोलन को किवयों ने सत्ता की वाल के रूप में देखा है। इस जान्दोलन के मूल में जाम जनता की स्वस्फूर्त केतना नहीं, बिल्क नेताजों का राजनीतिक स्वार्थ कार्य कर रहा था। ब्रिटिश सत्ता ने जिस प्रकार भाषायी विवाद को खड़ा करके देश की जनता को विश्वस्त किये रखा, उसी प्रकार का प्रयास स्वतन्त्रता के बाद स्वदेशी शासन ने भी किया। राज्य का पुनर्गठन भाषायी जाधार पर करके देश की जनता को भाषायी हितों तक सीमित कर दिया गया। राजनीतिक पार्टियों ने भाषायी उन्माद को बद्दाकर लोगों को अपने हित में प्रयुक्त करना शुरू किया। धूमिल ने अपनी किवता – "भाषा की एक रात " में भाषायी जान्दोलन के मूल में निहित राजनीतिक षड़यन्त्र का खूलासा किया है। उनका मानना है कि सत्ता के वालाक लोग भाषा के निरर्थक उन्माद में लोगों को उल्बा कर भूव एवं शोषण के मुद्दे पर उन्हें वपने विरुद्ध एक होने से कलग कर देते हैं:

<sup>।-</sup> वपनी कैवल धार - पू0 । ७, वस्ण कमल ।

"वन्द वालाक लोगों ने
जिनकी नरमक्षी जीम ने पसीने का स्वाद वस लिया है
वहस के लिए
मूस की जगह
भाषा को रस दिया है
उन्हें मालूम है कि भूस से
भागा हुआ आदमी
भाषा की जीर जायेगा
उन्होंने समझ लिया है कि
एक मुक्सड़ जब गुस्सा करेगा
अपनी ही अँगुलियाँ
वहायेगा।"

अपनी इसी किवता में धूमिल ने भाषायी उन्माद फैलाने वाली राजनीति के विरूद अपना आकृशि व्यक्त करते हुए लोगों को उससे सावधान रहने का अभिमत दिया है:

> "जो भाषावार हमलों से हलकान मेरे भाई ! क्या तुम्हे जब भी उसी का भरोसा है जिसके जिल्कार में हमारी लिट्टी वावल है इडली है दौसा है 9

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - भाषा की एक रात , धूमिल ।

हाय ! जो असली कसाई है
उसकी निगाह में
तुम्हारा यह तिमलदु:स
मेरी इस भोजपुरी - पीड़ा का
भाई है
भाषा उस तिकड़मी दिरान्दे का कौर है
जो सड़क पर और है।"

# व्यवस्था तन्त्र: साठौत्तरी हिन्दी कविता की दृष्टि में -

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जो व्यवस्थातन्त्र देश में स्थापित किया गया, वह जनता के मध्य अपनी सार्थकता सिद्ध नहीं कर सका। जनता को राहत देने के स्थान पर उसने उसे बाहत किया। व्यवस्था के "दरस्त के साथे में धूप लगने" से जनता इतनी व्याकुल हो गयी, कि उसे छोड़ कर "कहीं उम्र भर के लिए क्ले जाने" के जैसे विकल्प पर भी सौकना उसकी विक्शता हो गयी। इस पीड़क व्यवस्था पर बाकुमण, एवं उसके य्यार्थ रूप का सुलासा करते हुए साठौत्तरी कविता ने बौस्लाहटपूर्ण भाषा में उसके प्रति अपना विद्वीह व्यक्त किया है। व्यवस्थातन्त्र का कोई ऐसा पूर्जा नहीं है, जिस पर इस कविता ने प्रश्न विन्ह न लगाया हो और जो इसकी बाकु मकता एवं विद्वीह का किकार न हुवा हो। बाजादी के बाद देश ने बाजादी संसद,संविधान, प्रजातन्त्र, समाजवाद बादि के जिस छद्दम रूप का साक्षात्कार किया

<sup>1 -</sup> संसद से सङ्क तक - भाषा की एक रात - धूमिल
2 - साथे में धूप - पृ० । 3, दुष्यन्त कुमार
3 - वहीं -

है, उसकी सच्चाई को साठोत्तरी किवता में पूरी ईमानदारी एवं साहस से व्यक्त किया गया है:

## ।- आजादी : गुलामी का स्वदेशी संस्करण :-

साठौत्तरी किवता आजादी के 13 वर्ष के बाद की किवता है। उसकी पृष्ठभूमि में जहाँ आजाद भारत के डेट दशक का भयावह इतिहास है, वहीं उसके परिवेश में आजादी का कूर वर्तमान भी है, जिसमें उसने अपनी अधि खोली हैं और अपनी जीवन यात्रा को जारी रखा है। बाशा एवं विश्वास को धेर्य के साथ अपने हृदय में सम्भाले हुए जनता ने एक लम्बे समयान्तर के बाद यदि आजादी के विश्वय में कुछ जाना, तो बस इतना जाना कि वह शब्द, सीवधान एवं कुछ खानदान तक सीमित है। सामान्य जनता के लिए उसके द्वार बन्द हैं। "आजादी" शब्द जनता को लुमाने का साधन एवं गुलामी का स्वदेशी संस्करण है। परतन्त्रता का कुहासा स्वतन्त्रता के आकाश तले विद्यमान है। देश "आजादी एवं गांधी के नाम पर कल रहा है / जिससे न भूस मिट रही है न मौसम / बदल रहा है।"

शोषण, जन्याय, जत्यावार, घूसखोरी, हत्या, अष्टावार एवं अराजकता के ग्राप की निरन्तर बद्धती उंवाई ने बाजादी का जो यथार्थ प्रस्तुत किया, उसके किवियों का मन क्षुन्य हो गया, उसके प्रति उनकी आस्था मंग हो गयी। बाजादी की बाड़ में फेले हुए व्यापक बनावार के पीछे उन्हें एक बदद उस शासक वर्ग का हाथ नजर बाया, जिसने देश के शीर्ष पदीं पर बैठकर बाजादी का सदेव अपने हित में प्रयोग किया और जनता के लिए उसे तथाकियत बना दिया। सव्यशाची ने अपनी निम्न

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - पूठ 16, 🖁 अकालदर्शन 🖁 धूमिल ।

किवता में आजादी के नरक का खुलासा किया है, जिसमें देश की जनता जीवित रहने के लिए विवश है। अपने विद्रोही स्वर में उन्होंने शासक वर्ग से आजादी की उपलिख्यों पर प्रश्न करके उत्तर के रूप में जो सच्चाई प्रस्तुत की है, वह भारत की विकृत आजादी एवं विकृतियों के लिए जिम्मेदार तत्त्वों के मुख पर तमाचा है। आजादी की ये उपलिख्या गुलामी के जुल्म से भी कूर हैं। वे शासक वर्ग पर प्रहार करते हुए कहते हैं कि तिरंगा पहराना एवं बन्दे मातरम् दुहराना देश-भिक्त नहीं है। देश को शोषण विहीन एवं अन्दाचार मुक्त बनाने में ही देश-भिक्त निहित है:

> "वासिर क्या दिया है तुमने वाजादी के नाम पर लूप और लाटरी जनता को बूट से कुक्लती पुलिस और अच्ट अफ्सर भूस आगजनी रिश्वत हत्या लूट, गिरहकटी काले कानून, बूठी बदालतें, बहुरूपिया शासन बगाव विवशता और गुलामी तुमने हर आदमी को जानवर पर्व हर औरत को वेश्या बना दिया है देश भिक्त का मतलब सिर्फ तिरंगा फहराना और वन्देमातरम् दुहराना ही तो नहीं होता 9°1

राजनीतिक एवं प्रशासनिक स्तर पर देश में च्याप्त अन्टाचार के वातावरण में आजादी, प्रेम, देशभिक्त एवं आदमीयत की क्यानकाजी से लोगों को नफरत हो गयी है। उन्हें नफरत में ही सच्चाई दिखाई पड़ती है, अन्य वीजें हुठी प्रतीत होती

<sup>। -</sup> सुबह होने से पहले - पृ० 84, सव्यशाची

है। यही नफरत धूमिल की कविता में विद्रोह बन कर पूटी है:

"धुर से ढंके हुए आसमान कें नी वे लगता है हर बीज झूठ है आदमी देश आजादी और प्यार सिर्फ नफरत सही है ।"

धूमिल को भारत की बाजादी एक दिरद्र परिवार की बीस वर्षीया क्वारी बिटिया प्रतीत होती है, क्योंकि एक लम्बे समय के गुजर जाने के बाद भी वह अभाव से ग्रस्त एवं सोभाग्य से रहित है। उसकी अभावग्रस्तता एवं क्वारेपन है दुर्भाग्य है के लिए देश के शासक जिम्मेदार हैं, क्योंकि उन्होंने हिज्ड़ों की तरह ताली पीटने एवं निर्श्य वार्तालाप के सहारे जनता को लुभाने के ब्रितिरक्त कोई कार्य नहीं किया है। उन्होंने ही बाजादी को ऐसे मोड़ पर लाकर सड़ा किया है, जिसके एक बीद अधकार - पूर्ण अतीत है और दूसरी और बाधारहीन भविष्य। धूमिल के मन में ऐसी बाजादी के कारण अपार क्षोश्न है और बाजादी को इस दुर्गित तक पहुँचाने वालों के प्रति तीसा विद्रोह है। इसीलिए वे बड़ी जुड़ाक भाषा में कहते हैं:

"वर्तमान की बजबजाती हुई सतह पर हिजड़ों की एक पूरी पीदी लूप एवं अध्वकूप के मसने पर बहस कर रही है। बाजादी इस दरिद्र परिवार की बीस साला बिटिया मासिक धर्म में दूबे हुए क्वारेपन की बाग से बंध क्तीत एवं लेंगड़े शविष्य की विलम शर रही है।"2

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - पृ० 95 , धूमिल ।

<sup>2- -</sup> वहीं - पृ0 34

ंबीस साल व्यतीत हो जाने के बाद' भी धूमिल को आजादी का अर्थ समझ में नहीं आता है। आजादी का प्रतीक तिरंगा अपने तीन रंगों में शोर्थ शान्ति एवं समृद्धि का अर्थ समेटे हुए तथा कु में गतिशीलता का भाव लपेटे हुए भले ही जहरा रहा है, लेकिन जनता के जीवन में इन सबका नितान्त अभाव है, वह आतंक से प्रकम्पित है। उसके वारों और अन्याय, अत्यावार एवं जंगल राज्य कायम है। वह वृपवाप सारे अत्यावारों को जानवरों की तरह सह रही है। धूमिल अपने आप से पूंछते हैं, कि क्या आजादी इसी तिरंग का नाम है ९ धूमिल अपने इस प्रश्न के माध्यम से उत्तर भी दे देते हैं कि तिरंगा है राष्ट्रध्वज है आजादी नहीं है। सब को अपना अधिकार प्राप्त हो यही आजादी है, लेकिन जनता को इससे वीवत रखा गया है और समय - समय पर तिरंगा फहरा कर उसमें आजाद होने का भ्रम पैदा किया जाता रहा है:

"बीस साल बाद मेरे वेहरे में वे अधि वापस लोट आयी है जिनसे मेने पहली बार जंगल देखा है \* \* \* \* \*

बीस साल बाद में अपने आपसे एक सवाल करता हूं जानवर बनने के लिए कितने सब्ब की जरूरत होती है 9 बीस साल बाद

वपने वाप से सवाल करता हूँ क्या बाजादी सिर्फ तीन थके हुए रंगों का नाम है जिन्हें एक पहिया दौता है या इसका कोई सास मतलब होता है 9"

<sup>।- -</sup> तही - बीससालबाद

धूमिल ने अपनी 'पटकथा' कविता में देश की तथा कियत आजादी पर प्रहार किया है। वे कहते हैं, कि देश में हर जगह टूटन, वीरानी, अधकार एवं मलवा विद्यमान है। ऐसे भयावह वातावरण में आजादी को अर्थ कहाँ दूँदा जाय, उसकी सार्थकता का अनुभव कैसे किया जाय 9 -

"में सोकता रहा
वोर घूमता रहा
दूटे हुए पूलों के नीवे
वीरान सड़कों पर
वांसों के
वन्से रेगिस्तान में
पटे हुए पालों की
क्यूरी जन्यात्राजों में
दूटी हुई वीजों के देर में
में सोयी हुई बाजादी का वर्ध
दुद्धता रहा।"

राजनसल वौधरी का स्वतन्त्रता का प्रतीक तिरंगा तीन रंगों का एक विधड़ा प्रतीत होता है। उनकी इस समझ में सच्चाई है। यदि वौधीस वर्ष तक प्रतीक्षा करने के बाद भी त्राजादी मात्र शब्दों में ही सीमित रह जाय, उसका व्यवहारत: अनुभव न हो, तो उसके प्रति आस्था मर जायेगी और उसके सारे प्रतीक विधड़े के रूप में ही प्रतीत होंगे। तिरंग को विधड़ा कह कर राजन्मल वौधरी ने इस आजादी को निर्थंक धोषित कर दिया है:

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - पू0106 - धूमिल

"तीन रंगों का एक विश्वड़ा अपने ही रक्त से रंगे गये आकाश में पहराने के लिए वौबीस वर्ष पहले जो बीत गया है उसे दुहराया क्यों जाये।"

## 2- संसद: हिन्दुस्तान का सबसे बड़ा कब्रगाह

संसद देश की सर्वोच्च संस्था है, वह देश की धक्कन है और देश की उन्नित एवं सुशहाली का सारा दारोमदार उसी पर है, क्यों कि नीति एवं विधान वहीं कनते हैं। वे उन सांसदों द्वारा बनाये जाते हैं, जो जनता के प्रतिनिधि होते हैं, जिन्हें जनता कुकर फेक्ती है और जिन्हें उसे उपने कल्याण की उम्मीद भी रहती है। लेकिन सच्चाई तो यह है, कि स्वतन्त्रता के बाद यदि देश की किसी से धोधा हुआ है, तो अपनी संसद एवं सांसद से। सांसद सेढ़ान्तिक रूप से ही जनता के प्रति निधि हैं, व्यवहारत: वे स्वार्थ के प्रतिनिधि हैं। उनकी घोर स्वार्थपरता के कारण संसद की लोकोपकारिता विवादास्पद हो गयी है। संसद में उब तक अधिकांश संख्या सामन्ती एवं पूँजीवादी प्रवृत्ति के लोगों की ही रही है। कुछ लोग, जो जनसामान्य से निकल कर संसद में पहुँच उनमें से भी अधिकांश वहाँ पहुँच कर अपने जमीनी रिश्ते को कून गये। इस प्रकार जनसामान्य की पीड़ा को भोगने के स्तर पर सम्बन्ध वाले लोगों की संख्या संसद में नाम मात्र की रही है। सब मिला कर संसद पर शक्तिशाली एवं सम्पत्तिशाली लोगों का ही वर्वस्व रहा है। उनका जनता से सम्बन्ध मात्र वोट तक है। जनता उन्हें कुनती नहीं, बन्कि वे अपने को कुनवा लेते हैं। संसदीय प्रणाली का

<sup>। -</sup> मुक्ति प्रसंग - पूठ 16 - राजकमल बोधरी ।

प्रयोग उन्होंने अपनी स्थिति को सबलतम बनाने में किया है। जनता के समक्ष वे समय-समय पर ऐसे चारे फेंक्ते रहे, जिसमें उल्ला कर वह आपस में लड़ती रही और उनके अपने निजी हितों की पूर्ति में कोई बाधा नहीं पहुँची। साठोत्तर कवियों ने बदक्लन एवं बदिनयत संसद की कर्लई खोलकर अपनी कविता में भारतीय राजनीति के प्रति तीखा विद्रोह दर्ज किया है।

निर्भय मिलक के मन में भारतीय राजनीति एवं शासन व्यवस्था के पृति बड़ा तीसा विद्रोह है। कृष्ट एवं बाकृश की बितशयता के कारण उनका यह विद्रोह कहीं कहतीं करलील भाषा के माध्यम से भी व्यक्त हुआ है। उन्होंने संसद को भारत की सबसे बड़ी कब्रगाह कहा है,क्यों कि जनता की सारी सुंध - सुविधायें सांसदों द्वारा वहीं दफन कर दी जाती हैं और वह उनसे विकत रह जाती है। निर्भय मिलक मृत्यु के बाद अपनी लाश को किसी रजस्वला स्त्री के कपड़े में लपेट कर तथा मूत्र एवं वीर्य से अभिषक्त कर पार्कियामेन्ट में फेंक देने की बात करते हैं। संसद में बम एवं पत्थर फेक्ने की बात तो बहुतों ने की है लेकिन वहाँ लाश फेंक कर उसके विरूद विद्रोह करने की यह सीव नितान्त नयी है:

"सुनो दोस्तों"

मेरे मरने के बाद

मेरी लाश पर वीर्यपात कर मूत देना

और किसी रजस्वला स्त्री के कपड़े में लपेट कर पेंक देना पार्लियामेंट
सक्तुव इत्ह्या. बड़ा कब्रगाह और कहा मिलेगा समूचे हिन्दुस्तान में"

<sup>। -</sup> निर्श्य मिलक - सम्मानी पीदी ।

धूमिल ने अपनी "संसद से सड़क तक" की यात्रा के दौरान विक्रिन्न मुकामों पर 'संसद' के विरुद्ध विद्वौही व्याख्यान दिये हैं। उनकी यह यात्रा भारतीय राजनीति की विसंगतियों के प्रति जंग का ऐलान है। उन्होंने अपने इस काव्य संग्रह की कविता पटकथा में संसद के उपर अकु हमला किया है:

"मुझसे कहा गया कि संसद देश की धड़कन की प्रतिबिष्म्बत करने वाला दर्पण है ज्ञता को जनता के विवासी का नैतिक समर्पण है लेकिन क्या यह सब है 9 या यह सब है कि उपने यहाँ संसद तेली की वह घानी है जिसमें बाधा तेल है और आधा पानी है और यदि यह सब नहीं है तो वहाँ एक ईमानदार बादमी को अपनी ईमानदारी का मलाल क्यों हे 9"

यहाँ धूमिल ने संसद को 'बाझा तेल' एवं 'बाधा पानी' से युक्त तेली की घानी बताकर उसकी विवश्वसनीयता एवं अब्दता को स्पष्ट किया है। वहाँ ईमानदार बादमी की ईमानदारी उसके लिए परेषानी बनी हुई है। संसद का चरित्र उनवादी नहीं, बल्कि

<sup>।-</sup> संसद से सड़क तक - प्र612.7 - धूमिल ।

जनविरोधी है। "रोटी और संसद " किवता में धूमिल ने भारतीय संसद से एक प्रश्न किया है। उनका यह प्रश्न संसद को निरूत्तर एवं बेनकाब कर देता है। यह छोटी-सी किवता देश में व्याप्त शोषण में संसद की भूमिक क्रिस्तासा करती है:

"एक आदमी
रोटी बेलता है
एक आदमी रोटी खाता है
एक तीसरा आदमी भी है
जो न रोटी बेलता है, न रोटी खाता है।
वह सिर्फ रोटी से खेलता है
में पूंछता हूँ
यह तीसरा आदमी कौन है 9
मेरे देश की संसद मोन है।"

रौटी बेलने या रोटी पैदा करने वाली देश की उनता हैं और रोटी खाने वाले शोषक — पूँजीपित और नौकरशाह हैं। इन दोनों वर्गों के अतिरिक्त एक तीसरा वर्ग भी है, जो रोटी से खेलता है — वह वर्ग है राजनेताओं का, जो संसद की खाड़ में ऐसा करता है। शोषकों के उपर उसका वरदहस्त रहता है। रोटी के साथ खेल वे इन्हों के माध्यम से करता है। लेकिन रोटी से खेलने वालों के बारे में पूँछ जाने पर संसद वृप रहती है, कोई उत्तर नहीं देती, क्योंकि ये सारे खिलाड़ी या तमाशायी उसी के सदस्य हैं। जब सब-के-सब उसी खेल में लिप्त हैं, तो उत्तर कौन दे ? धूमिल की यह किवता स्पष्ट कर देती है, कि देश की बदहाली के मूल में संसद और सांसद हैं।

<sup>। -</sup> कल सुनना मुझे - रोटी बौर संसदं - धूमिल ।

रमेश गौड़ की किवता "कहीं कुछ नहीं होता" में संसद पर जो बाघात
किया गया है, वह कम तीसा नहीं है। उन्होंने इस किवता में सदन को पशुओं का
'बाड़ा' बता कर जहाँ एक और उसकी निक्यता एवं बराजकता की और सकति किया
है, वहीं दूसरी और सांसदों को 'जवारा सांड़' कहकर उनके आततायी रूप को भी
स्पष्ट किया है। जैसे जवारा सांड बाड़े के जन्दर उन्माद में किसी भी वस्तु को
चबाता या नष्ट करता रहता है, ठीक उसी प्रकार सदन के जन्दर सांसद भी देश की
अस्मिता, सिवधान, राष्ट्र ध्यज की धिज्जयाँ उड़ाते रहते हैं। अपनी इसी किवता
में उन्होंने "सदन में विभीषणों के राजितलक" होने की बात कहकर मिन्त्रयों की
राष्ट्रभिकत पर भी प्रश्न चिन्ह लगाया है:

"मेड़ों का जुनूस पूरे जोर से गाता है
राष्ट्रीय गान सदन में विश्वीषणों का राजतिलक हो रहा है
और
सदन के बाड़े में अवारा साँड़ क्बा रहे हैं
देश का नक्शा और संविधान और राष्ट्रध्वज।"

कैलाश वाज्येयी ने संसद को लक्ब्ब खों का निवास बताकर यह स्पष्ट किया है कि शारतीय संसद 'वादमखोर संस्कृति' की पोषक है, उससे जनकत्याण की सम्शावना नहीं है:

> "कुछ तकड़बन्धे संसद से निकल कर महुँच गये हैं घर रक्षेत्र के बोर इधर कोई सुकरात रोज जंधा हो जाता है सीकर्षे गिनते हुए जेन के 1"<sup>2</sup>

<sup>।-</sup> निष्य - पृ० । ४६ - रमेश गौड़

<sup>2-</sup> देहान्त से हटकर - पृ० 52 - वैलाब वाज्येयी ।

उदय प्रकाश ने अपनी किता महापूर्ष में संसद एवं पूँजीपतियों के रिश्तों की घनिष्टता की और संकेत किया है। संसद एवं पूँजीपतियों के मध्य नेतागण सेतृ के समान हैं। उन्हीं के माध्यम से उनकी वहाँ तक पहुँच बन पाती है, जिससे वे नीतियों को बहुत कुछ अपने हित में निधारित करवा लेते हैं। पूँजीपतियों की तिजोरी की दोलत के सहारे सदन की आसान्दी तक पहुँचने वाले नेतागण अपनी नमक हलाली का परिचय देते हुए उनके लिए ऐसे काम करते हैं, जो देश की बहुसंख्यक जनता के हित के विपरीत होते हैं। इस प्रजातान्त्रिक संसद की प्रवृत्तित पूर्णत: प्रजीवादी है:

"महापुरूष की धौती का एक छोर नगर सेठ की तिजोरी में है दूसरा संसद की कुर्सी में ।"

#### 3- प्रजातन्त्र : आदमी के खिलाफ आदमी का सुला मह्यन्त्र -

स्वतन्त्रता के बाद भारत में प्रजातान्त्रिक शासन की स्थापना की गयी।
सेढ़ान्तिक रूप से यह जनता का जनता के द्वारा जनता के लिए शासन है। जनता
की सम्प्रभुता पर बाधारित इस शासन प्रणाली में मूलाधिकार, समता, स्वतन्त्रता,
व्यस्क मताधिकार, विक्थितित की स्वतन्त्रता बादि ऐसे प्रावधान हैं, जिससे जनता
को सामाजिक, बार्षिक बौर राजनीतिक न्याय मिल सके, उसका किसी भी स्तर
पर शोषण न किया जा सके; शासन उसके सेवक के रूप में कार्य करे बौर सत्ता पर
जनता का विध्वार रहे। भारत में जनतन्त्र या लोकतन्त्र का जो ब्यावहारिक
स्वरूप सामने बाया, वह उसके सेढ़ान्तिक रूप से एकदम विपरीत है। भारतीय जनतन्त्र में

<sup>।-</sup> सुनो कारीगर - पू० १।, उदय प्रकास ।

जनता ही तिरस्कृत है। लोक प्रतिनिधि एवं लोक सेवक ही शोषक की भूमिका

िमा रहे हैं। धन एवं बल का ही बोल बाला है। सत्ता पर सम्पित्त एवं शिक्त

का ही नियन्त्रण है। सामाजिक, आर्थिक एवं राजनीतिक न्याय से जनता विक्त

है। उत्पादन के साधन एवं शासन पर कुछ लोगों का ही कब्जा है। जनता जनतन्त्र

के हाश्रिये पर है। साठौत्तर किवयों ने भारतीय जनतन्त्र के इस विकृत एवं दयनीय

स्प को यथार्थ चित्र प्रस्तुत करते हुए उसकी चिकृति एवं दयनीयता के लिए उत्तरदायी

तत्वों पर तीसा प्रहार किया है और उनके विरुद्ध लोगों के मन में अपनी किवता के

माध्यम से विद्रोह की बेतना जागृत की है।

साठौत्तर कियों में, भारतीय प्रजातन्त्र के व्यावहारिक स्वरूप की विसंगतियों पर सबसे तीसा प्रहार धूमिल ने किया है। परिमाण की दृष्टि से भी उनकी इस तरह की किवताओं की संख्या अधिक है। अपनी "शहर में सूर्यांस्त" किवता में धूमिल ने लिसा है कि भारत में प्रजातन्त्र में ड्रिया नेताओं की जुबान पर जिन्दा है। मेड्या की जुबान पर किसी जिन्दगी का जिस्तत्व कितने समय तक रहता है, यह सर्वविदित है। नेतागण एवं उनके मातहत नौकरशाह सुनेजाम प्रजा न तान्त्रिक मूल्यों की अवहेलना करते हैं। यहाँ प्रजातन्त्र एक जाकक नारा है, आवश्य न कता पड़ने पर, जिसे जनता के मध्य उछाल कर उसे इस अम में डाला जाता है कि देश में सब कुछ उसी का है, उसी के लिए हैं:

"उन्होंने जनता जोर जराय पेशा जोरतों के बीच की सरत रेखा को काटकर स्वास्तिक चिन्ह बना लिया है जोर हवा में एक कमदार गोलशब्द फेंक दिया है - जनतन्त्र जिसकी रोज सेकड़ों बार हत्या होती है और हर बार वह भेड़ियों की जुबान पर जिन्दा है।"

धूमिल ने 'पुजातन्त्र' को एक षड्यन्त्र कहा है। यह षड्यन्त्र बड़ा दु:खद है, क्यों कि यह देश के कुछ नोगों है नेताओं है द्वारा देश की उस जनता के विरुद्ध रवा गया है, जिसने उन्हें अपना समझा है और उन पर विश्वास किया है। सच्वाई तो यह है कि इस देश के पुजातन्त्र में पुजा के तन्त्र जैसी कोई स्थिति है ही नहीं। यदि किसी राष्ट्र के लिए किसी शासनतन्त्र की आवश्यकता होती ही हो और भारत में पुचलित शासनतन्त्र को भी कोई नाम देना आवश्यक ही हो, तो यहाँ की स्थिति को देखकर कहा जा सकता है कि यहाँ वनतन्त्र' है; जिसमें कोई न्याय नहीं है, शिक्त ही न्याय का पर्याय है। धूमिल ने अपनी निम्न किवता में भारतीय पुजातन्त्र की इन्हीं विसंगतियों पर प्रहार करते हुए कहा है कि इस देश में क्यूर्युग्रस्त क्षेत्र में गस्त करती हुई सैनिक टुकड़ियों के जूतों से जनतन्त्र - जनतन्त्र' निकल रहा है। उनके इस व्यंग्यात्मक कथन का तात्पर्य यह है, कि इस प्रजातन्त्र में जनता शक्ति की दहशत के बीव जी रही है:

"न कोई प्रजा है न कोई तन्त्र है यह बादमी के खिलाफ बादमी का सुनासा फड्यन्त्र है।

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - शहर में सूर्य स्ति - धूमिल ।

और कर्फ्यू में शान्त ठण्डी सड़क पर सैनिक दस्तों के जूतों से कितनी सफेद और मार्मिक ध्वनि निकल रही है जनतन्त्र - जनतन्त्र - जनतन्त्र ।"

'जनतन्त्र के सूर्योदय में 'किवता में धूमिल ने भारतीय जनतन्त्र को जनता हुआ बताया है। इस जनतन्त्र का सूर्योदय यानी शुरुआत ही वालबाजियों से भरा हुआ है। यह वालबाजी वमकते हुए रंगों यानी दिखावटी आदशों के रूप में है। पूजा - तन्त्र का यथार्थ बड़ा वीभत्स एवं भयावह है:

"रक्तपात कहीं नहीं होगा सिर्फ एक पत्ती टूटेगी एक कन्धा हुक जायेगा फड़कती मुजावों बोर सिसकती हुई बाँधों को एक साथ लाल फीते में लपेट कर वे रख देंगे काले दराजों के निश्चल एकान्त में जहाँ रात में सिवधान की धारायें नाराज आदमी की परकायी की देश के नक्शे में बदल देती है

<sup>। -</sup> सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र - पृ० 36, धूमिल ।

सिरक्टे मुर्गे की तरह पड़कते हुए
जनतन्त्र में
सुबह
सिर्फ वमकते हुए रंगों की वानबाजी है
अखबारों की धूप और
वनस्पतियों के हरे मुहावरे
तुम्हें तसल्ली देंगे
और जनते हुए जनतन्त्र के सूर्योदय में
सरीक होने के निर्द्र
तुम वृपवाप अपनी दिनवर्या का
पिछना दरवाजा स्रोल कर
बाहर आ-जाओं गे।"

अपनी 'पटकथा' कि विता में धूमिल ने प्रजातन्त्र पर जबरदस्त वोट को है।

उन्होंने लिखा है कि इस जनतन्त्र में घोड़ा और घास थानी शोषक एवं शोषित को
शोषण करने एवं शोषित होने की छूट है। यह स्थिति जनतन्त्र को अवधारणा के

विपरीत है। देश में प्रजातन्त्र तमाशा बन गथा है। मदारियों की तरह शासक वर्ण

प्रपनी आकर्षक एवं लुशावनी भाषा के माध्यम से जनता को इस तमाशे में उलकाये रखता
है:

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - जनतन्त्र के सूर्योदय में - धूमिल ।

केसी विडम्बना है
कैसा बूठ है
दर असन अपने यहाँ जनतन्त्र
एक ऐसा तमाशा है
जिसकी जान
मदारी की शाषा है।

अपनी इसी किवता में धूमिल ने आगे लिखा है, कि यह देश जनतान्त्रिक जंगल है, जहाँ अपराधों की छूट है। इस जंगल की हरियाजी अपराधों पर ही आधारित है। इस तन्त्र में अपराध एवं अन्याय बेरोकटोक घटित होते रहते हैं, जिसका शिकार प्रजा यानी आम जनता होती रही है:

"गरज यह कि अपराध

अपने यहाँ एक ऐसा सदाबहार पूल है

जो आत्मीयता की खाद पर

लाल भड़क पूलता है

मेने देखा कि इस जनतान्त्रिक जंगल में

हर तरफ हत्याओं के नीवे से निकलते हैं

हरे-हरे हाथ, और पेड़ों पर

पत्तों की जुबान बनकर लटक जाते हैं

वे ऐसी भाषा बोलते हैं जिसे सुनकर

नागरिकता की गोधूनि में

घर लोटते हुए मुसाफिर

अपना रास्ता भटक जाते हैं। "2

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - प्र0105 - धूमिन 2- - वहीं - प्र0109

अपने काव्य संग्रह कल सुनना मुझे की किवता 'पुजातन्त्र के विरुद्ध' में धूमिल ने पुजातन्त्र के विरुद्ध अपने विद्रोह का एकदम सुलासा कर दिया है। उन्होंने इस किवता में अपना हाथ पुजातन्त्र के उपर उठा दिया है, क्योंकि इस तन्त्र में भूख और शोषण का कोई समाधान नहीं है। जनता को तमाम विसंगतियों से निरन्तर जूबते रहना पड़ा है और अब सारी स्थितियाँ बदिशत के बाहर हैं:

पेट और प्रजातन्त्र के बीच का सम्बन्ध
उसके पाठ्यक्रम में नहीं है

\* \* \*
पेट से लड़ते - लड़ते जिसका हाथ
अपने प्रजातन्त्र पर उठ मधा है।

राजकमल वौधरी ने अपनी लम्बी कविता 'मृक्ति प्रसंग' में लोगों को लोकतन्त्र से अलग हो जाने, उसे छोड़ देने की बात कही है, क्योंकि यह प्रजातन्त्र बड़ा घातक है। यह जनता पर सीधा प्रहार करके उसे विनष्ट नहीं करता बल्कि प्रेमपूर्ण छन के माध्यम से लोगों की कमर को तोड़ देता है, उन्हें नपुंसक, निष्क्रिय एवं पोरूषहीन बना देता है:

"वादमी को तौड़ती नहीं है लोकतान्त्रिक पदितयाँ केवल पेट के बल /
उसे बुका देती हैं धीरे-धीरे वचाहिज धीरे-धीरे नपुंसक बना लेने के लिए उसे शिष्ट राजमक्त देश प्रेमी नागरिक बना लेती हैं / वादमी को इस लोकतन्त्रीय संसार से वलग हो जाना वाहिए। 2

<sup>1-</sup> केन सुना मुंबे भा प्रवातन्त्र के विरुद्ध - धूमिन 2- मुक्ति प्रसंग - पुरु 32 - राज्यमन वीधरी

केदारनाथ अग्रवाल ने प्रजातन्त्र को भाषण तन्त्र की संज्ञा दे डाजी है। कारण, इस तन्त्र में हर कार्य भाषण तक ही सीमित रहता है, वह मूर्त रूप कभी नहीं धारण करता। में कर्रणा और इम करेंगे, जैसे भविष्य काजीन वाक्यों के प्रयोक्ता नेताओं के पास यदि कुछ है तो भाषण है, और वही उनके पास हर समस्या के समाधान का महामन्त्र है, जिससे उनकी अपनी समस्या का समाधान तो हो जाता है, लेकिन जनता की समस्यायें बरकरार ही रहती हैं:

"देश में लगी आग को लक्ष्मा जी नेता शब्दों से बुझाते हैं वास्थारा से उसर को उर्वर और देश को आत्म निर्मर बनाते हैं लोकतन्त्र का शासन भाष्णतन्त्र से क्याते हैं।"

सर्वेशवर दयाल सबसेना को यह तन्त्र ढोंग, विश्वासधात एवं बदबू से युक्त दिसाई देता है। उनकी दृष्टि में इसका महत्व पेर काट देने वाले जूते से अधिक नहीं है, जिसे कोई लाठी में टाँग कर अनुपयुक्त होते हुए भी जूता पास रहने के गर्व से बागे बद्दा जा रहा है:

<sup>।-</sup> मार स्वार की धार्षे - केंद्रार नाथ बग्रवाल ।

आकियाँ निकलती हैं दोंग की विश्वासधात की बदबू आती है हर बार एक मरी बात की। नोकतन्त्र की जूते की तरह नाठी में लटकाये भागे जा रहे हैं सभी सीना फुनाये।

प्रजातन्त्र, जिसे जनता का शासन माना जाता है, व्यवहारत: वह उसके लिए तेरोनक हो गया है, क्योंकि उसमें हर और अष्टावार, अन्याय एवं दुर्गन्ध व्याप्त है। घोर विसंगतियों के क्लते यह तन्त्र एकदम घृगास्पद हो गया है। मंगलेश डबराल अश्लील शब्दों में इस तन्त्र के विरुद्ध विद्वोह व्यक्त करते हुए कहते हैं, कि इस प्रजातन्त्र में जीना वेश्या की सार्वजनिक यौनि में सम्भोग करना है:

इक्जीसवीं शताब्दी के इस बेरोनक गोवर प्रजातन्त्र में जब जीन है तो वेश्या की सार्वजनिक योगि से संभव करना है न्याय की सड़ी हुई गिलयों में वह सम्भोग। 2

वन्द्रकान्त देवताने के 'प्रजातन्त्र के बुधार में 'शिर्षक कविता में प्रजातन्त्र के विरुद्ध विद्रोह का उबान दिखाई पड़ता है। इस कविता में उन्होंने प्रजातन्त्र के रक्षक नेताबों के भाषणों एवं घोषणापत्रों पर जोरदार व्यंग्य किया है:

बुधार बद्दता जा रहा है

डाक्टर कहा है - - - - संसद के सामने - - सिर्फ सेकड़ों
मृह भाषम उगल रहे हैं
धोषमा की गर्ध के मृह में कड़ता जा रहा है।

I - गर्न स्वार्य 🛪 प्राप्त 🚜 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना

<sup>2-</sup> फिल हाल - प0 144

५- मिक्क - पूर्व 45 क् 46 \* वन्द्रवान्त देवताने

कुमार विकल इस वनतन्त्री व्यवस्था में अपने आप की अकेला एवं अरिक्षत पाते हैं, क्योंकि यह व्यवस्था उन्हें साथ नहीं दे रही है, उन्हें न्याय नहीं दिला पा रही है। वह शोषकों, अन्यायियों एवं अपराधियों के साथ हैं। यह स्थिति उन्हीं की नहीं है, बल्कि पूरी जनता की है। सर्वत्र भय और आतंक का साम्राज्य है। प्रजातन्त्र के भय एवं आतंक से निपटने के लिए कवि को सख्त हाथों एवं सुरदुरे शब्दों की तलाश है:

राज्यथं की वनतन्त्री व्यवस्था में
में क्केला और अरक्षित हूँ
मेरे स्नायुतन्त्र पर भय और आतंक की
कटीली ब्राङ्ग्याँ उग आई हैं,
जिन्हें काटने के लिए सख्त हाथों के साथ-साथ
सुरदुरे शब्दों की जरूरत है।
इन ब्राङ्ग्यों को काटने के लिए
ठीक हाथों एवं ठीक शब्दों की तलाश में
में होरी किसान और मोचीराम के पास जाउँगा।

कित सहत हाथों एवं सुरदुरे शब्दों की तलाश होरियों, एवं मोचीरामों के मध्य करना वाहता है। तात्पर्य यह है कि वह इस तन्त्र के आतंक के खिलाफ उन्हीं लोगों की शक्ति को संगठित करना वाहता है, जो आतंकित एवं शीचित हैं।

जनतन्त्र के विरुद्ध उदय प्रकाश का आकृशिय एवं विद्रोह नारेबाजी एवं बयान -बाजी के स्तर पर उत्तर बाया है। अभिव्यक्ति की स्वतन्त्रता जनतन्त्र का आधार है। इस व्यवस्था में यह जनता के मूलाधिकार के रूप में भी स्वीकृत है, तेकिन इस तन्त्र का यह आधार सबसे कमजोर है। जनता व्यवहारत: अपने इस अधिकार से

<sup>1-</sup> निर्मेश - पूर्व 168 - 69 -

विति है। वह बोलना चाहती है,तो उसे बोलने नहीं दिया जाता। यदा-कदा यदि वह कुछ बोल देती है,तो उसे कोई सुनता नहीं:

> राजसत्ता अभिव्यक्तिकी स्वतन्त्रताका कानून है और जो इस कानून की जद में है उसे बोलने नहीं देती राजसत्ता।

भारत में शुरू हुआ यह 'जनतन्त्र का जमान' जगूड़ी के गले नहीं उतरता, क्योंकि इसमें जनतन्त्र जैसी कोई स्थिति है ही नहीं। यह तो विशुद्ध रूप से पुलिस तन्त्र है, इसमें नौकरशाहों की तानाशाही है। यहाँ हर तरफ लूट है, जिससे प्रजा - त्रस्त है। जगूड़ी के शब्दों में -

"इस दरिमयान मैने जाना

कि जनतन्त्र में जिल्कुल नया जमाना है
और नागरिकता पर सबसे बड़ा रन्दा थाना है।"2

"चौरी की वहीं पर सुविधा है
जहां पर कौतवाली है।"3

"पराजय और आदर्श के बीच
आदर्श एक चालाकी है
लूटने के बनुशासन में
पुलिस की तरह सबकी वर्दी साकी है।"4

<sup>। -</sup> अनुतर कबुतार - पृथ ६४ - उदयप्रकारा ।

<sup>2-</sup> नाटक बारी है - पूठ 48 , ज्यूड़ी ।

<sup>3- -</sup> aet - 90 93

<sup>4- -</sup> ast - 40 57

इस प्रकार हम देखते हैं कि साठोत्तरी किवता में जनतन्त्र के उपर बड़ा तीखा
प्रहार किया गया है। लेकिन हमें यह कदापि नहीं समझना चाहिए कि इस दौर
के किव प्रजातन्त्र विरोधी हैं। उनका प्रजातन्त्र के असली रूप से विरोध नहीं है।
उनका विरोध उसके नकली स्वरूप से है, जिसकी आड़ में प्रजा का शोषण हो रहा है।
नेता: दाँतों एवं दलालों का दलाल -

पुजातंत्र में राजनेताओं की भूमिका बड़ी महत्वपूर्ण होती है। उनकी सच्चरित्रता एवं कर्मठता ही प्रजातान्त्रिक व्यवस्था को सफत एवं सुवार बना सकती है। वे जनता के प्रतिनिधि होते हैं और यह तन्त्र उन्हीं की नीतियों एवं निर्देशों पर आधारित होता है। ऐसी स्थिति में उनकी स्वार्थपरता एवं अन्टता देश के पतन एवं दर्भाग्य का कारण बनती है। आजादी के बाद देश में राजनेताओं का जो चरित्र सामने जाया, वह बड़ा चिन्ताजनक, निन्दनीय एवं घुणास्पद है और जनता उससे बहुत कुछ परिचित भी है। देश में बद्दे अन्टावार, अपराध, अन्याय, शीका वादि के पीछे मुलत: उन्हीं का हाथ है। छोटभइया नेताओं से लेकर शीर्षस्थ नेताओं तक प्राय: सभी दलाली एवं कमीशनसोरी में लिप्त हैं । नौकरवाहीं की नाजायज कमाई के एक हिस्से के वे भी हिस्सेदार हैं। वे अष्टावार में स्वयं निप्त हैं और अब्दाचारियों के शरण स्थल भी हैं। यही कारण है कि देश में न तो कोई नीति सफल हुई बोर न कोई योजना ही कारगर हुई। जनता को उनका लाभ या तो मिला ही नहीं या तो नाम मात्र का मिला। साठोत्तर कवियों ने राज्नेताओं के इस दीमने चरित्र की बनावृत्त किया है । गौरस पाण्डेय की 'कुर्सीनाम ' कविता में नेताओं के दीमुहे पन पर्व स्वार्थपरता का क्यान है :

कुर्सी खतरे में है तो प्रजातन्त्र खतरे में है कुर्सी खतरे में है तो देश खतरे में है कुर्सी खतरे में है तो दुनिया खतरे में है कुर्सी न बवे तो भाड़ में जाये प्रजातन्त्र देश और दुनिया।

भारतीय नेता कुर्सीमोह के शिकार हैं। देश एवं देश के प्रजातन्त्र से उनका रिश्ता मात्र कुर्सी तक है। उसे प्राप्त करने के लिए वे किसी प्रकार का प्रवार - दुष्प्रवार कर सकते हैं। उनकी इसी स्वार्थपरता से भारत की राजनीति दूषित हुई है। जनता से वे अपना सम्बन्ध तभी तक कायम रखते हैं, जब तक वे कुर्सी पाने के प्रयास में रहते हैं। दुनाव जीतने से पहले वे अपने अपहले दुने हुए लोगों की आलोकना करते हैं और अपनी सत्यनिष्ठा का प्रवार करते हुए लोगों से अपनी आतमीयता व्यक्त करते हैं तथा जमीन से अपना जुड़ाव सिद्ध करते हैं। लेकिन कुर्सी पाते ही वे अपनी जमीन से कट जाते हैं, जिन लोगों ने उन्हें दुनकर भेजा है, उन्हें भून जाते हैं:

जब तक वह जमीन पर था कुर्सी बुरी थी जा बेठा जब कुर्सी पर वह जमीन बुरी हो गयी।<sup>2</sup>

ज्यूही ने 'साक्षात्कार' किता में उन नेताओं पर तीसा व्यंग्य किया है, जो देश की विपत्तियों एवं समस्याओं से विमुख होकर मात्र वपने तत्कातिक हित का ही चिन्तन करते हैं। उन्होंने "बिल्कुल निजी संवाददाता द्वारा" शीर्षक

<sup>।-</sup> जागते रही सीनै वाली - पू0 ४७ , गौरस पाण्डेय

<sup>2- -</sup> वहीं - 🐪 पूर्व 48

<sup>3-</sup> नाटक बारी है - पूछ 23 , बगूही

किया है। इन दोनों की संयुक्त शक्ति ही देश एवं समाज की समस्याओं को जन्म देने वाली है:

> "आदिमियों के जंगल में छिये हुए भेड़िये पिछले पंजों से मिद्दी खोद रहे हैं। और हिलती फिर रही है लोमड़ी कुण्ठाओं की रोयेंदार पू**छे**।"

'तथाक थित महान लोग' शी कि किवता में तगूड़ी ने मन्त्रियों नेताओं एवं सफेद पोश अपराधियों के खिलाफ स्वर उठाया है:

> "महान लोग रात को लखादे की तरह नहीं ओदते रात उनके लिए दिन भर के कुक्मी पर पड़ा पदि है।<sup>2</sup>

देश की व्यवस्था के विधायक समझे जाने वाले नेताओं के चरित्र पर ज्यूड़ी ने अपनी निम्न कविता में बड़ा तीखा प्रहार किया है। अपनी इस कविता में उन्होंने इस सच्चाई का खुनासा किया है कि ले-देकर इस देश की दुर्गति के कारण नेता ही हैं:

"नेता इस देश का सही तर्क है/ जहाँ पर सबका बेड़ा गर्क है वह महान है/
उसके कन्चे पर देश है/ और जेब में कोई केश है/ उसकी एक ही बादत है/ कि
बाज भी और कल भी उनका कहीं स्वागत है/ उनके सभी काम देश के काम हैं /
यानी वे देश खाले हैं / देश की टट्टी करते हैं / देश का पेशाब करते हैं / वे देश का
क्या नहीं करते १ / सिकका बदल-बदल कर देश का सही हिसाब करते हैं । "3

<sup>।-</sup> नाटक जारी हे - पूछ ।। , जपूरी

<sup>2-</sup> बनी हुई कुन्दी - पुँठ 22 , बगूड़ी

<sup>3-</sup> नाटक बारी है - पृछ 97 , जाड़ी

रघुवीर सहाय ने अपनी नियी हैसी शिर्फ किवता में नेताओं पर तीखा प्रहार किया है। उनकी यह किवता नेताओं की वह तश्वीर पेश करती है, जिसमें उनकी उत्तरदायित्वहीनता, नैतिक पतन और भदेसपन का रंग स्पष्ट दिखायी देता है:-

वसवारा क प्राताना क्ष पूछ प्रचास बार क्या हुआ समाजवाद कहे महासंवपति हम करेंगे विचार ।\*!

केदारनाथ अग्रवाल ने 'नेता' किवता में नेताओं पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है। वे उनकी वन्दना करते हैं, क्योंकि देवताओं की तरह उनके पर भी जमीन पर नहीं पड़ते हैं। समता का यह बिन्दु उन्हें देवत्व की श्रेणी में डाल देता है। उनका यह व्यंग्य नेताओं के जमीन से बलग होने की और संकेत करता है। उनकी इस कविता का विश्वाय यह है, कि जो जमीन से कटा हुआ है, वह न तो नेता है और न जमता के लिए उपयोशी ही है:

"तुम्हारे पाँव देवताओं के पाँव हैं जी-जमीन पर नहीं पड़ते हम बन्दना करते हैं तुम्हारी नेता (\*2

<sup>। -</sup> जात्म हत्या के विसद - पृष्ठ । ६, रख्वीर सहाय । २ वह वेदार सरी-सरी -कविता नता -वेदारनाथ अग्रवाल ।

अपनी एक दूसरी 'नेता' किवता में उन्होंने नेता को नासमझ एवं निगाह का कच्चा कहा है। स्वार्थपरता एवं संवेदनहीनता के कारण उनकी समझ कुँठित एवं अपने तक सीमित रह गयी है। उनकी दृष्टि दूरगामी नहीं है। वे अपने पैर एवं कुर्सी के पाये तक ही देखते हैं। वे उस देश एवं देश के भविष्य के बारे में नहीं सोच पाते, जिस पर उनकी कुर्सी के पैर टिके हैं:

> नेता निगाह का कच्चा है नासमझ देश का बच्चा है।

अपनी 'हम समझे' शीर्षक किता में केदारनाथ अग्रवाल भारतीय नेताओं की राजनीति के सम्बन्ध में अपनी गहरी समझ को प्रस्तुत किया है। उनकी यह समझ राजनीति की उस धूर्तता का खुलासा करती है, जिसने देश की जनता को पग-पग पर मूर्ध बनाया है और उसके वर्तमान तथा भविष्य को बर्बाद किया है:

"हमने सराहा
जब तुमने
हमे
पहले-पहल
भविष्य का नक्शा
देश के दर्पण में
सुशहाल दिसाया
वोर हम सुश हुए
हमने तुम्हे जिल्ल चढ़ाया

<sup>।-</sup> वहे वेदार सरी-सरी - 'नेता', वेदारनाय बग्रवाल

विकन जब जब तुमने

अपना

वकर

मकर काया

हमे भरमाया

स्याह को सफेद
और सफेद को स्याह बताया

गलत को सही
और सही को गलत समझाया

तब हम समझे

तुम आदमी नहीं

उन्मू हो

न तुम भविष्य को उज्ज्वन कर सकते हो

न आज को सुन्दर

कर सकते हो। "

एक अगस्त 1976 को निसी अपनी कविता 'तुम हम' में केदारनाथ अग्रवाल ने भारत की लगभग 27 वर्षीय गगतन्त्रात्मक व्यवस्था की उपलिक्थियों को बड़े सिक्षप्त एवं स्पष्ट दंग से व्यक्त किया है। इस कालाविध में व्यवस्था के व्यवस्थापक नेता सूँगर होते गये और जनता अभावग्रस्त बीमार एवं लावार होती गयी।

"सत्ताहस साम में तुम न तुम रह गये तुम न हम रह गये हम तुम ही गये सुँहार

<sup>।-</sup> बहे केदार सरी सरी - पूछ । 88 , 'हम सम्बे' केदारनाय बग्रवाल

हम हो गये बीमार अभावग्रस्त नाचार । • !

अपनी 'तुम' शीर्षक किवता में कैदारनाथ अग्रवाल ने जनता को लावार बना देने वाले शासक वर्ग पर बड़ा तीसा व्यंग्य किया है। वे कहते हैं, कि अपनी इस दुर्गित के लिए हम दोषी हैं, तुम्हेशासक वर्ग दोषी नहीं हो। हमने तुम्हे देश की सत्ता सौंप कर भूत की है। तुम देश के लिए व्यर्थ हो कुछे हो, लेकिन हम तुम्हें सत्ता से हटा पाने में अभी असमर्थ हैं। किव का अपनी असमर्थता का बयान बड़ा ही साहस - पूर्ण एवं सत्ता को ललकारने वाला है:

"दोष तुम्हारा नहीं हमारा है

जो हमने तुम्हे इन्द्रासन दिया
देश का शासन दिया
तुम्हारे यह के प्रार्थी हुए हम
तुम्हारी कृपा के शरणार्थी हुए हम
वोर असमर्थ हैं हम
कि उतार दें तुम्हें
इन्द्रासन से देश के शासन से
अब जब तुम व्यर्थ हो कु हो
जपना यह सो कु हो।"2

नेताओं की सारी बदक्कन एवं बदिनयत हरकतों का सुनासा धूमिन की किवताओं में पूरी सक्वाई एवं ईमानदारी के साथ हुआ है । उन्होंने अपनी किवताओं में क्रम्टाचार की जुड़ झोद दी है । देश का सारा स्थाकरण नेताओं ने ही बिगाड़ा

<sup>1-</sup> वहे केदार सरी सरी - तुम इम 2- वहे केदार सरी सरी - 'तुम', पूछ 137, केदारनाथ अग्रवाल ।

है, फलत: सर्वत्र अव्यवस्था का ही आलम है। वे भूख, देश, धर्म, नैतिकता आदि सब का प्रयोग जनता के शोषण एवं अपने हित के पोषण के लिए करते हैं:

> उन्हों ने किसी बीज को सही जगह नहीं रहने दिया है न संज्ञा न विशेषण न सर्वनाम एक समुचा और सही वाक्य दट कर विसर गया है उनका व्याकरण इस देश की शिराजों में लिपे हुए कारकों का हत्यारा है उनकी सख्त पकड़ के नीवे भूख से मरा हुआ आदमी इस मौतम का सबसे दिलवस्य विज्ञापन है और गाय सबसे सटीव नागा है वे सेती में भूत और शहरों में वफवाहों के पुलिन्दे केंक्ते हैं देश बौर धर्म और नैतिकता की दहाई देकर कुछ लोगों की सुविधा दूसरों की हाय पर केरते हैं वे किसी पीठ ठोकते हैं उसके रीद की बदुडी मायब हो जाती है।"

<sup>। -</sup> संसद से बाह्य तक - प्राध्य - ध्रीमन

नेताओं में 'न हया' है, 'न दया' है। अत: सिद्धान्तों की हत्या करने तथा शोषण एवं अञ्टावार फैलाने में वे जरा-सा भी नहीं हिक्कते। कुर्सी उनका साध्य है, जिसके लिये वे किसी भी साधन को अपना सकते हैं:

"में रोज देखता हूँ कि व्यवस्था की मशीन का एक पूर्जा गरम होकर जन्म छिटक गया है और उपदा होते ही फिर कुर्सी से विषक गया है उसमें न हया है ।"!

नेता प्रजाता निक्रक सामन्त हैं। वे ही आज सबसे बड़े शोषक हैं। वे दाँतों एवं दलालों के दलाल हैं। वे अ़ब्दों एवं अ़ब्दाचारों के जनक तथा संरक्षक हैं। इतना होने पर भी वे बराजकता के कुहासे से घिरे इस देश में अपने को देश का सबसे बड़ा रहनुमा एवं देश भवत होने का दावा करते हैं:

"हर तरप धुजा है हर तरप वृहासा है जो दांतीं एवं दलालों का दलाल है वही देश करत है।"<sup>2</sup>

पूरे नेता वर्ग के उपर तीखी चोट तो प्राय: सभी साठौरतर कियों ने किसी न किसी स्य में की है लेकिन किसी नेता किसेष पर चोट करने का साहस यदि किसी में है तो वे नागार्जुन हैं। उन्होंने अपनी 'तुम रह जाते दस साल और' किता में

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - प्राथित - धूरिमन

<sup>2- -</sup> TO 105

उन्होंने यदि जवाहर लाल पर हमला किया है, तो 'काली माई' अविता में इन्दिरा गाँधी की खबर ली है। अपनी इन किवाजों में उन्होंने दोनों नेताओं की जन -विरोधी कार्यशैली को बेनकाब किया है:

> "हम चावल लाते एक किलो, दस की दे आते नोट मगर यों सिक्ड़े रहते सपनों में सिलवाते उनी कोट मगर गालियां इलकती बेलों की जोड़ी को देते वोट मगर हम गाँजा ही बेंबा करते लेते खादी की ओट मगर खुलते खिलते कुछ गाल और

"मुण्डमाल के लिए गरीबाँ पर निगाह है धनपतियाँ के लिए दया की खुली राह है कितना खून पिया है, जाती नहीं खुनारी सुर्ध और लम्बी है, महया जीभ तुम्हारी।"2

हैं समाजवाद : माल गोदाम में लटकी हुई बान्टी :- समाजवाद एक ऐसी विवारधारा
है, जो समाज की वर्गहीनता पर विश्वास करती है और शोषण का विरोध करती है ।
इस विवार प्रणाली पर बाधारित शासन व्यवस्था का उद्देश्य शोषक एवं शोषित वर्ग
के मध्य विद्यमान आर्थिक विषमता की खाई को पाटकर साम्य की स्थापना करना है ।
भारतीय संविधान में समाजवाद शब्द का प्रयोग जरूर हुता, लेकिन समाजवादी मून्यों
की यहाँ निरन्तर कवहेलना होती रही है, जिसके शोषण एवं विषमता का ग्राम जैवा
उठता गया है । साक्षोत्सर कवियों ने समाजवाद के इस भारतीय संस्करण पर बड़ा
तीखा प्रहार किया है । भूमिल के शब्दों में यहाँ समाजवाद की स्थित कुछ इस

<sup>।</sup> नागांकी की ज़ी हुई रकार्य, बाम दो , पूठ 163 । 2- - वहीं - पठ 146

"समाजवाद
उनकी जुबान पर अपनी सुरक्षा का
एक आधुनिक मुहावरा है
---- मेरे देश का समाजवाद
माल गोदाम में लटकती हुई
उन बाल्टियों की तरह है जिस पर आग लिखा है
और उनमें बालू एवं पानी भरा है।"

धूमिल का यह बयान यहाँ के समाजवाद का पूरा पोल खोलकर रख देता है। देश के नेताजों ने समाजवाद को अपनी सुविधा एवं सुरक्षा का साधन बना लिया है। समाजवाद उनके काम तक विस्तृत नहीं, बल्कि जवान तक सीमित है। जनता को इस आकर्षक शब्द में उलबाकर अपने हित को सुन्धाना उनका उद्देश्य है। यहाँ का समाजवाद एकदम नकली एवं दिखावटी है। जैसे मालगोदाम में लटकी बाल्टी पर आग लिखा रहता है, लेकिन सच्चाई यह है कि उसमें बाग नहीं बालू रहती है। ठीक वैसी ही स्थिति यहाँ समाजवाद की भी है। समाजवाद के नारे में पूँजीवादी विवार एवं गतिविधियाँ सिक्र्य हैं। इसी विरोधाभासपूर्ण स्थिति के कतते विक्मता एवं शोकण में वृद्ध हुई है और सामान्य जनता पेट की समस्या के समाधान में भटक रही है। धूमिल ने रोटी की समस्या या पेट की भूख को भारतीय समाजवाद की देन बताया है:

"बोर यहपेट है मेने उसे सहलाया मेरा पेड़ समाज्याद की मेट है।"<sup>2</sup>

<sup>। –</sup> संसद से सङ्घ तक – go126-27 – धूमिन 2= नवारी स

अपने सोच-विवार एवं कार्यप्रणाली के स्तर पर समाजवादी मूल्यों से दूर-दूर तक सम्तन्ध न रखकर मात्र भाषण तक उससेनाता स्थापित करने वाले नेताओं ने ही समाजवाद के स्वस्प को विक्त किया है। शोषण एवं पीड़क कार्यों में लिप्त ऐसे ही लोगों के नेतृत्व में सभाजवाद देश के लिए बहुत महँगा साबित हुआ है। राजकुमार कुम्भज ने अपनी कविता 'दुच्चे प्रजातन्त्र में' भारतीय समाजवाद के यथार्थ पर व्यंग्य किया है:

नागार्जुन ने 'अच्छा किया तुमने' शीर्षक कविता में भगतिसंह से अपने एक काल्यनिक वार्तालाप में समाज एवं राजनीति की जो यथार्थ स्थिति प्रस्तुत की है, वहीं यहाँ के समाजवाद का असली वरित्र है। भगतिसंह एवं उनके समाजवादी सहयोगियों ने शोषण एवं विषमतामुक्त समाज का सपना देखा था; गरीबों शोषितों का हित वाहा था। लेकिन स्वतन्त्र भारत के समाजवाद में शोषितों के बहित पर शोषकों का हित कायम है:

तुमने किसका मना वाहा था तुमने किनका संग-साथ निवाहा था स्था वे सही सोग थे -यहदार, जनदेशी, सहसान परामोश १ हक्त की पीनक में मदहोता।\*2 सर्वेश्वर दयाल को भारत का साम्यवाद एवं पूँजीवाद दोनों रास नहीं आता , क्योंकि दोनों अपने सिद्धान्तों के अनुसार क्रियाशील नहीं है, दोनों के दावे खोखले हैं। आम जनता की भलाई इन दोनों से सम्भव नहीं हो पा रही है। कुछ वालाक लोगों का ही हित इससे सध रहा है। सर्वेश्वर दयाल साम्यवाद एवं पूँजीवाद पर प्रहार करते हुए कहते हैं:

"साम्यवाद या पूँजीवाद में दोनों पर थूकता हूँ और पूछता हूँ जिसके पैर में तुम जूता नहीं दे सकते उसके हाथ में तुमहें बन्दूक देने का क्या अधिकार है।"

### 6- वृताव: राजनीति का खेल:-

कृताव प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था का मुख्याधार है, सेढ़ान्तिक रूप से इस
व्यवस्था में जनता को जिना किसी अय एवं दबाव के स्वेच्छा से गुप्त मतवंग्न द्वारा
अपने प्रतिनिधि को कुने का अधिकार है। यह विध्वार उसके हाथ में एक ऐसे
हथियार के रूप में है, जिसके द्वारा वह सत्ता की निरंद्शता पर खंद्रा नगा सकती है,
निरंद्श एवं अष्ट शासकों को सत्ता से ज्युत करके दूसरों को शासन में आने का अवसा
दे सकती है। लेकिन व्यवहारत: कुनाव कर स्वरूप बड़ा विकृत रहा है। देश की
निरीह जनता को अय, लालच एवं उन्माद के दबाव में अपना प्रतिनिधि कुनना पड़ता
है। हर कुनाव में नेता एवं राजनीतिक दल अपने पक्ष में ऐसी लहर उत्पन्न करते हैं,
जिसमें सोध-समझ के स्तर पर विध्वाध अपनेद मतदाताओं का बह जाना उनकी विवश्वता
है। इस तक जाति-वर्म, शांचा एवं केन के नाम पर जनता के मत को बाँट कर उसे

<sup>।-</sup> एक सूनी नाव - कु० 53 . सर्वेर वर दयान सबसेना ।

अपनी समस्या के सही मुद्दे पर एक होने से रोका जाता रहा है और कुनावी वायदों एवं बाश्वासनों से उसे ठगा जाता रहा है। अगभग पवास वर्षीय प्रजातन्त्रात्मक शासन के दौरान हुए विकिन्न कुनावों के द्वारा थोड़े भी समझदार मतदाता की समझ में यह जात था गयी है, कि सारे नेताओं एवं राजीनतिक दलों का वरित्र प्राय: एक जैसा है; उनसे कोई राहत मिलने वाली नहीं है। कुनाव निरथ्क है। कुनावों की व्यावहारिक निरथ्कता ने कवियों, साहित्यकारों के मन को निरन्तर अक्सोरा है और उनके मन में बाढ़ोश एवं विद्रोह का भाव भरा है। साठोत्तरीकिता में कुनावों छलावे के विस्द विद्रोह का तीसा भाव व्यक्त हुआ है। नागार्जुन ने कुनाव पर व्यंग्य करते हुए लिखा है – "उब तो बन्द करो हे देवी, यह कुनाव का प्रहसन" कुनाव के माध्यम से कुने गये लोग वरित्रगत वेशिष्ट्य एवं कार्यविधि के स्तर पर अपने पूर्ववर्ती से किसी तरह भिन्न नहीं रहते हैं। बस उनका वेहरा ही नया रहता है, जिसमें जनता अपने हित की सम्भावना तलाशती है, लेकिन उसे कुछ मिलता नहीं। धूमिल के शब्दों में –

"---- कृतियाँ वही हैं सिर्म टोपियाँ बदल गयी हैं।"

धूमिल ने वपनी 'पटक्था' किवता में कुनाव या मतदान के दौरान किये जाने वाले राजनेतावों के वायदों पर बड़ी तीसी चोट की है। उनके द्वारा की गयी यह चोट एक लम्बे इन्तजार के बाद भी वायदों के पूरा न होने और जनता की रिश्वति के न सुंबरने का परिणाम है। बड़े साथ शब्दों में धूमिल कहते हैं:

The state of the s

<sup>।-</sup> संबद से सड़क तक - 40 124 , बटकथा , धूमिल ।

"उसका इन्तजार किया
मैने इन्तजार किया
अब कोई बच्चा
भूखा रहकर स्कूल नहीं जायेगा
अब कोई छत बारिश में
नहीं टपकेगी
अब कोई बादमी कपड़ों की लावारी में
अपना नंगा वेहरा नहीं पहनेगा
अब कोई दवा के अभाव में
घुट-घुट कर नहीं मरेगा
अब कोई किसी की रोटी नहीं छीनेगा
कोई किसी को नंगा नहीं करेगा

ये सारे शब्द थे
सुनहरे वायदे थे
सुनपहम हरादे थे
सुन्दर थे
मोलिक थे
मुखर थे
में सुनता रहा

मतदान होते रहे।"।

धूमिल ने लोकतन्त्र एवं मतदान पर तीक्षा प्रदार अपनी कविता 'ताजा सबर' में भी बड़े स्वष्ट ढंग से किया है:

<sup>।-</sup> संसद से सङ्क तक - पूछ । छ। । धूमिल

"मैं सोचता हूँ अपना परिवार कल तक हम अपने मतदान से बाहर भरम मैं एक हसते गाते. पालते-पलाते लोकतन्त्र थे।"

लीलाधर ज्यूड़ी ने अपनी कविता 'अनैतिक' में कुनाव की सच्चाई का सुलासा किया है। कुनाव संकट का समाधान लेकर नहीं वाता। कुनाव के बाद भी जनता को मंहगायी और रोटी की समस्या से जूसना पड़ता है। उसे कोई राहत नहीं मिलती:

"यहाँ से वहाँ तक चुनाव के बाद का संकट लेकर पेट और प्रजातन्त्र के बीच बादमी दरार की तरह सड़ा है और बवंडर हर दरवाजे पर पर्दे की तरह पड़ा है।"2

राजनेताओं के लिए तो कुनाव खिलवाड़ है। यदि विधान सभा एवं लोक-सभा रोज भंग होती रहे, बोर कुनाव रोज कराये जाते रहें, तो भी लाखों रूपये सर्व करके कुनाव लड़ने में उन्हें जरा-सी भी हिक्क नहीं होगी, क्योंकि कुनाव का सारा सर्व वे किसी - न - किसी रूप में जनता से ही वसूनते हैं। कुनाव में उनका जपना कुछ नहीं जाता। एक बार कुन जाने के बाद तो वे बागामी कुनावी लड़ाई के सर्व के लिए धन संख्य कर ही लेते हैं। इस सच्चाई को ज्यूड़ी ने वपनी निम्न कविता में सोल कर रस दिया है:

<sup>। -</sup> सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र - पृ० 27, धूमिल । 2- नाटक जारी हे - पृ० 65 , जीनाधर ज्यूड़ी ।

"तुम अपने मूर्धन्य जाल में नागरिक शुक्कामना के लिए न केवल क्यास बल्कि लोहा, वाँदी, अनाज और कपड़े की गाँठें यहाँ तक कि दवाओं के रंगवाली मिद्दियाँ भी कुनली हैं, और जहाँ तक अगले कुनाव का प्रश्न है लड़ने के लिए तुमने मेरी हिड्ड्याँ भी कुनली है।"

# 7- साम्प्रदायिकता : कुरावी राजगीति :-

पंथितरपेक्षता की केतना एवं मूलाधिकार के संरक्षण की मावना से युक्त
संविधान वाले भारतवर्ष में मतप्राप्ति के लिए राजनीतिक दलों द्वारा जो जल्पसंख्यकों
एवं जहुसंख्यकों की राजनीति क्लायी गयी है, उसके करते यहाँ की पंथितरपेक्षता
सोखली सिद्ध हुई है और साम्प्रदायिक एवं जातीय दंगों की नींव पड़ी है।
साठोत्तरी किंवता देश में विद्यमान साम्प्रदायिकता के प्रति पूरी सज्य है और उसने
उसके मूल में विद्यमान कारण पर तीखी चोट भी की है। गोरख पण्डेय ने अपनी
'दंगा' शीर्षक किंवता में बुनावी राजनीति को ही साम्प्रदायिक दंगों का कारण
मानते हुए उस पर तीखा ब्यंग्य किया है:

"वाको भार्च बेवू वाको, वाको भार्च क्यारण वाको मिलकुक्तर छूरा क्लाको वापस में कट मर जाको

<sup>।-</sup> रात वर्गी मौजूद है - पूठ 28. जाड़ी

इस बार दंगा बहुत बड़ा था सूब हुई थी सून की बारिश अगले साल बच्छी होगी पसल मतदान की । "

साम्प्रदायिक दंगा भारत के सन्दर्भ में हिन्दू मुस्लिम दंगों का पर्याय बन कुना है। हिन्दू-मुस्लमानों के मध्य नफरत की खाई को राजनीति एवं राजनेताओं ने अपने लाभ के लिए निरन्तर बौड़ा किया है - कभी अल्पसंख्यक के नाम पर और कभी बहु संख्यक के नाम पर । दोनों सम्प्रदायों के मध्य धूगा का भाव इस तरह से बद् गया है, कि वे परस्पर विश्वास करने की स्थिति में नहीं हैं। राजनीतिजन्य इस मानस्किता पर व्यंग्य करते हुए नागार्जुन ने लिखा है:

"कि इतने में

एक बीर युक्तें "

इन कानों में

पुत्र पुत्रा के कह गया

"खबरदार यह मुसलमान है 
इसके रिक्ते पर

कभी न बैठना बाप।"2

साम्प्रदायिक दंगों की तरह जातीय दंगों के वीभत्स दृश्य भी बाज दिसायी पड़ने लगे हैं। इन दंगों के पीछे भी चुनावी राजनीति का ही हाथ है। राजनीतिक दलों ने जातियों को इपने-वपने सेमें में बाँट लिया है। तात्पर्य जातियों का बाज

<sup>!-</sup> जामते रही सोने वाली - पृष्ठ 22 , मोरख पाण्डेय 2- देने भी दम क्या ऐसे भी तुम क्या + पृष्ठ 15, नागार्जुन

राजनीतिक विभाजन हो गया है। वे किसी-न - किसी राजनीतिक दल के समर्थक हैं। राजनीतिक दल अपनी समर्थक जातियों को समय-समय पर महज इस लिए उकसाते रहते हैं, जिससे वे उनके पक्ष में अपनी प्रतिबद्धता बनाये रखें। इसी उकसावे के परिणामस्वरूप जातीय दंगे एवं संघर्ष हो जाते हैं। जातिगत राजनीति से प्रेरित जातीय दंगों को आड़े हाथ लेते हुए अस्ण कमल ने लिखा है:

"मारे गये दस जन यदुवंशी थे १ बामन थे १ क्षत्री थे १ नहीं मालूम"

राजनेता एवं राजनीतिक दल अपने द्वारा भड़काये गये जातीय दंगों की जाग में जनकर मरने वालों के परिजनों की खाँख के जाँसू मुखावजे के वितरण या फिर मुझाबजेकी माँग से पाँछते हैं। उनके इस कार्य में भी चुनावी राजनीति ही रहती है। ऐसा करके वे अपने की पीड़ितों के हमदर्द के रूप में पेश करते हैं। बस्ण कमल ने अपनी 'जाल' कविता में जनता की लाश पर चढ़कर राजनीति करने वालों की क्सलियत का सुलासा किया है:

"सरकारी रिपोर्ट थी
गोली कने से सिर्फ एक मोत
वो भी हास्पिटल में
तीन दिन बाद
वांच हजार मुजावजा
भूत-कू लेनीं-देनी

<sup>।-</sup> सपनी केवल धार - पुठ उठ, वस्म कमल

कल रात मञ्जारों ने डाला था जाल आज मञ्जी नहीं निकली, निकली तीन लाशे ।"

## साठोत्तरी कविता: व्यवस्था की मौत का गान:-

साठोत्तर किवयों ने राजनीति के दोगलेपन, सत्ता के जनिवरोधी स्वरूप एवं शोषक वरित्र का मात्र सुलासा करने तक ही अपने विद्रोह को सीमित नहीं रखा है। इन किवयों ने इस छद्म शासन व्यवस्था को अस्वीकार करते हुए उसे पलट देने के विवार से जहाँ उसके विरुद्ध वैयिक्तक स्तर पर सीधी कार्यवाही का ऐलान किया है,वहीं इस कार्य के लिए संगठित होने हेतु जनता का अह्वान भी किया है। कैदार नाथ अग्रवाल ने अपनी 'वे' किवता में, देश को जनता के लिए कत्लगाह एवं अपने लिए वारामगाह के रूप में तब्दील करने वाले शासक वर्ग के लोगों की मौत का गीत गाने की बात कही है। मौत के गीत का यह गायन शासक व्यवस्था को उखाड़ फेक्ने के विन्तन से पेरित है:

"हम गा रहे हैं उसकी मौत का गान जिन्हें बाता है वब इंसान की हैवान बनाना सुद अपने लिए बारामगाह बीर कुसरों के लिए ज्यह - ब - ज्यह करलगाह बन्दाराँ 2

रखुवीर सहाय जिन्दा रहने के लिए विद्वीह की वाक्स्यकता पर बल देते हैं। जब तक सत्ता के बुक्ट्यों के विरुद्ध नहीं वीसा जायेगा, बावाज नहीं उठाई जायेगी, उसके दिख्द सीधी कार्यवाही नहीं की जायेगी, तब तक रिश्वित में बदलाव होने वाला नहीं है। दर्शक दीर्घा में बैठकर मात्र दर्शक की भूमिका निभाना अब पर्याप्त नहीं है। जाज जरूरी हो गया है, कि हम विद्रोही की भूमिका में अपने की उतारें:

> "एक बार अनकुत कर फिर वीसना होगा जिन्दा रहने के लिए दर्शक दीर्घा से रंगीन फिल्म की घटिया कहानी को सस्ती शायरी के शेर संसद सदस्यों से सुन कुकने के बाद।"

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना उस आम आदमी की आदमी होने का अहसास दिलाना चाहते हैं, जिसे सत्तासीन वर्ग पशु से अधिक नहीं समझता । वे बड़े तीखे स्वर में कहते हैं :

समय वा गया है
जब इन्हें बादमी बौर गये का
रिश्ता सम्बाना होगा
इन्हें बादमी होने का बहसास कराना होगा
बौर उनकी गया होने का। - "जंगल का दर्द "

देश की बहुसंख्या जनसंख्या उपनी बदहाली के मूल कारण को नहीं समझ पाती । वह यह नहीं जानती, कि हमारी दुर्गित के पीछे व्यवस्था तन्त्र का हाथ है । यही कारण है, कि इस तन्त्र के विरुद्ध छड़े हुए कुछ समझदार लोगों का वे साथ नहीं देते, उनके समझ कदम-से-कदम और कन्धा-से-कन्धा मिलाकर नहीं करते । फलत:

<sup>।-</sup> बात्म हत्यां के विस्टं - पूर्व 70 , रख्वीर सहाय ।

व्यवस्था के विरूद्ध मृहिम कमजौर पड़ जाती है। सर्वेश्वर दयाल लोगों को काँको हुए कहते हैं:

"यदि तुम जानते होते तो वुप नहीं बैठते इस तरह।"

सर्वेश्वर दयाल शोषितौं-दिलतों के मन में व्यवस्था के विरुद्ध अपनी कविता के माध्यम से आग भड़काते हैं। वे उसे सत्ता पर आकृमण कर देने की प्रेरणा देते हैं। वे उनता में आत्म विश्वास जगाते हुए कहते हैं, कि तुम हर उगह पहुँच सकते हो। व्यवस्था ने जो मार्ग तुम्हारे लिए बन्द कर रखा है, उसे तुम खोल सकते हो। तुम उन सारी शक्तियों को धराशायी कर सकते हो, जो तुम्हारा अधिकार तुमसे छीन रही हैं। कोई तुम्हें रोकने वाला नहीं है:

> '6" ऐसी कोई जगह नहीं जहाँ तुम पहुँच न सकी ऐसा कोई नहीं जो तुम्हें रोक सके।" - ' जंगल का दर्द'

लेकिन ऐसा तभी सम्बद्ध है, जब लोग तबनी खिनत को पहचाने और सारे संशय की मिटा दें, दुकड़कोर बादत को छोड़ दे और स्वार्थ का परित्याग कर दे। थोड़ा हरकत में बाने और वबने सोथ मन को जगाने की जरूरत है, सारी स्थितियाँ बदन जायेंगी:

तेवय इस भाव को मिटा दी रोबनी का उठेंगी तुमर्गे निर्वय पीठ पर रक्षा कुरा लगेगा प्रोत्साहन का स्पर्श और तुम बिजनी की तरह वागे बद्द जावोगे अक्षय "।

"कुत्ता बादत से दुकड़शीर है तुम्हे दुकड़ सोरी के रास्ते बन्द करने होंगे "2

"रिथति
वासानी से बदली जा सकती है
केवल थोड़ी सी हरकत जरूरी है
तुम्हे हाथ बद्दाना होगा
और अपने भीतर कहीं
बोतल की कार्क सोलनी होगी।"3

अपनी 'मेडिया' किवता में तो सर्वेश्वर दयाल ने सत्ता पर सीधे आक्रमण का ऐलान कर दिया है। वे कहते हैं, कि मेडिया श्वसत्ता की अधि लाल है, यानी उसकी अधि में हिसा का भाव है, वह तुम्हे नष्ट करना वाहता है। तुम्हारे शोषण के लिए वह तत्पर है। तुम तभी उससे अपनी रक्षा कर सकोगे, जब तुम भी अपनी आधी में कृष्टि एवं हिंसा का भाव मरकर उसकी और घूरोंगे और उस पर आक्रमण करने के लिए तत्पर हो जानोंगे:

<sup>।-</sup> बंगज का दर्द - पूंठ 32. सर्वेश्वर दयान सबसेना

<sup>2- -</sup> वरी - पूछ 47

<sup>3- -</sup> वहीं - प् क्रिंग

"भेड़िया की अधि सुर्ध हैं

उसे तब तक घूरी

जब तक तुम्हारी अधि

सुर्ध न हो जाये

और तुम कर भी क्या सकते हो

जब वह तुम्हारे सामने हो।"

जब भेड़िया श्वासनश्च बाम बादमी के उपर गुर्रा रहा है, वह उसका बहित करने के लिए कटिबढ़ है, तो ऐसी रियति में जनता के पास विद्रोह ही एक ऐसा साधन है; जिसकी बाग भड़का कर श्वांका सत्ता?, भेड़िया को शक्तिहीन करके वह अपने अस्तित्व को सुरक्षित कर सकती है। सर्वेश्वर दयाल सत्ता के शोषण के बार्तक को समाप्त करने के लिए विद्रोह की बाग जनाने की बात कहते हैं:

"मेड़िया गुरांता है
तुम महाल जलावो
उसमें और तुममें यही बुनियादी फर्क है
भेड़िया महाल नहीं जला सकता
जब तुम महाल उठा
मेड़िया के करीब बावो
भेड़िया कागेगा
करोड़ों हाथों में महाल लेकर
एक-एक झाड़ी की बीर बढ़ो
सब मेड़िया कागेंग

<sup>।-</sup> जीन का दर्व - पूछ 26 . सर्वेश्वर दयान सबसेना

पिर उन्हें केल के बाहर निकाल बर्फ में छोड़ दो भूखे भेड़िये बापस में गुर यिंग एक दूसरे को चीथ खायेंगे भेडिये मर चुके होंगे और तुम "९!

किव ने यहाँ विद्रोह की आग नलाकर मेड़िया - स्वार्थलोलुप, शोषक, मुष्ट, आदमसोर एवं पशु प्रवृत्ति वाले शासकों को नष्ट कर देने के लिए व्यग्न है। लेकिन ऐसा तभी सम्भव है, जब विद्रोह की ज्वालामुसी जन-जन के हृदय में जागृत रहे। सत्ता में भेड़िया प्रवृत्ति वाले लोग तो सदेव पेदा होते रहेंगे। अत: जरूरी है कि जनता जागृत हो और ऐसे लोगों को पहचान कर उनके विरुद्ध विद्रोह की आग भड़काये रसे:

"इतिहास के जील में हर बार बेड़िया माँद से निकाला जायेगा बादमी साहस से एक होकर महाल लिये सड़ा होगा"<sup>2</sup>

शोषकों के विरुद्ध विद्रोह की आग जनाने एवं भूस के खिलाफ लड़ाई लड़ने का काम उस आम उनता यानी शोषित उनता को ही करना है, जो धून के सदृश सदेव रोंदी जाती रही है, उसमें शब्ति की कमी नहीं है। उसे दीमक की तरह संगठित हो पूरी व्यवस्था को नष्ट कर देना वाहिए:

<sup>।-</sup> जेल का दुई - पूठ 29 , सर्वेश्वर दयाल सक्तेना 2- - वहीं -

"धूल हो जिन्दगी की सीलन से दीमक बनी रातौँ रात सदियाँ से बन्द इन दरवाजों दीवारों की खिड़िकयाँ और रोशनदान वाल दो।"

सर्वेश्वर दयाल अपनी कविता 'रेंगता साँप' में सत्ता के साँप से अपनी रक्षा के लिए उस पर सीधे आक्रमण करने की वेतना से युक्त हैं। इस कार्य के लिए वे इन्तजार नहीं करते, क्योंकि इन्तजार, शत्रु है, इन्तजारी आत्मधातक है:

> "कंकड़ों में रेंग रहा है साँप लाठियाँ मारने पर भी वह सुरिक्षत है। क्या प्रतीक्षा कर जब तक वह समतल भूमि पर न वा जाए या अपना अस्त्र बदल तु इन्तजार शतृ हे उस पर यकीन मत करो। वह जाने किन बाड़ियाँ कौर पहाड़ियों में घात लगाये बेठा रहता है उससे बड़ी बी प्रान्ता है कौरन पा तो जी करना है औरन करो \*2

<sup>1-</sup> जेल का दर्द - पूठ 39, सर्वेश्वर दयाल सक्तेना 2- - वहीं - पूठ 42.

सर्देश्वर दयाल बार-बार जनता को उसकी शक्ति का अहसास दिलाते हैं, उसे उसके अकेले न होने का विश्वास दिलाते हैं और उसे संशय एवं इन्द्र से मुक्त करने का प्रयास करते हैं, जिससे वह विद्रोह की जाग जना सके:

> "विपित्ति में तुम बकेने नहीं हो बसंख्य सोते कुनबुनाते हैं चट्टानों में मिलकर एक धारा बनने को इसे पहचानों राह निक्लेगी निश्चय।" -'क्राल का दर्द'

धूमिल इस व्यवस्था के सहत खिलाप है। वे इसे उखाड़ फेक्ने के लिए लोगों से तनने और अकड़ने को कहते हैं, क्योंकि वे जानते हैं, कि व्यवस्था के हाथ का खिलोना बनकर उसे नहीं उखाड़ा जा सकता। इसके लिए बावश्यक है, कि जनता अपनी सोच बदले। वह संगठित होकर शक्ति विर्जित करे और अपनी जड़ को मजबूत बनाये:

"हर हाथ में गोली मिट्टी की तरह हा हा मत करो तनी कड़ी वमर बेलि की तरह मत जियो बड़े फड़ीं बड़ी में अपने सामको बदनो "।

<sup>।-</sup> संसद से सड़क तक अने हैं के पन

अपनी 'पटकथा' किवता में धूमिल ने लोगों को अपनी समस्या का समाधान स्वयं दूंढ़ ने के लिए कहा है। हम अपनी शिक्त जगाकर आत्मकल से ही अपनी समस्या का स्थायी समाधान दूंढ सकते हैं। समस्यायें सबकी एक है, उसका हल एक-जुटता से ही सम्भव है। सारी जनता एक होकर व्यवस्था के तिलिस्म को ध्वस्त कर सकती है और सत्ता को अहसास दिला सकती है कि बिना मेरी सहभागिता के कुछ सम्भव नहीं है:

"जो अपने वेहरे की रास दूसरों की स्माल से बाड़ता है जो अपना हाथ मेला होने से हरता है वह एक नहीं न्यारह कायरों की मौत मस्ता है और सुनी । नकरत और रोशनी सिर्प तसके हिस्से की वीज है जिसे जंगत के हाक्रिये पर जीने की तमीज है इसलिए उठी बीर उपने शीतर सीये हए जंगन की वावाब दो उसे जगाती वीर देखी कि तुम अकेले नहीं हो बोर न किसी के मुहताज हो नासी है जो तुम्हारे इन्तजार में संदे हैं तहाँ वती । उनका बाय दी और इस तिलस्म का जादू उतारने में जनकी मदद करी और साबित करी

कि वे सारी वीजें अन्धी हो गयी है जिनमें तुम शरीक नहीं हो । "

संसद से सड़क तक' के अपने सफर में धूमिल ने विसंगतियों का हर स्तर पर साक्षात्कार किया है। स्वानुभूतसत्य के अधार पर उन्होंने पाया, कि यह व्यवस्था जिल्कुल नक्कारा है। यह दल-दल है, जिसमें पूरा देश पंसा हुआ है। उत: उसमें से निकलना और उसे बदलना दोनों जरूरी है। 'पटकथा' किता में 'हिन्दुस्तान' सत्ता एवं व्यवस्था को बदलने की बात कहता है:

> "यहाँ बाजों मेरे पास बाजों मुझे छुवों मुझे जियों। मेरे साथ क्लों मेरा यमीन करों। इस दल-दल से बाहर निकालों सुनों तुम वाहे जिसे कुनों मगर इसे नहीं। इसे बदलों "2

वपनी इसी किवता में धूमिल ने इस व्यवस्था से अपनी उब को मुकाम तक पहुँचाने की बात कही है। ऐसा करने के लिए उन्होंने लोगों को अपने विचारों को ठोस धरातल पर आधारित करने एवं मासूमियत को छोड़कर सौफनाक हो जाने का सुझाव दिया है:

<sup>1 -</sup> संसद से सड़क तक - प्र<sup>0115</sup> - धूमिल 2 - वहीं - प्र<sup>0</sup> 111 - 12

"अपनी बादतों में
पूनों की जगह पत्थर भरो
मासूमियत के हर तकाजे की
ठोकर मार दो
बब वक्त जा गया है कि तुम उठो
बौर अपनी उब को बाकार दो !"

वे नोगों से कहते हैं, कि इस पूरी व्यवस्था में तुम्हारा कोई हमदर्द नहीं है। यह कुल जाकों, कि तथाकि कि सुविधापर स्त बुद्धिजी वियों की यह जमात व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह में तुम्हारा साथ देगी। मैंने इन सकतो देख लिया है, ये कहीं - न - कहीं पूँजीवादी व्यवस्था के ही हिमायती हैं। सुविधापर स्ती ने इन्हें पौरूष-विहीन बना दिया है। वन्द सुविधावों के नोभ में इन्होंने वास्तिकता से मुँह मोड़ लिया है। तुम्हें विद्रोह की बाग स्वयं जनानी होगी:

"नहीं - अपना कोई हमदर्द
यहाँ नहीं है। मैने एक-एक को
परस्र लिया है।
मैने हर एक को बावाज दी है
हर एक का दरवाजा स्टस्टाया है
मगर बेकार - - - मैने जिसकी पूँछ
उठाई है उसको मादा
पाया है।
वै सब के सब तिजीरियों के
दुश्रिये हैं।

<sup>। -</sup> संसद से सङ्क तक - प्र0113 - धूमिन

वै वकी हैं। वैज्ञानिक हैं
अध्यापक हैं। नेता हैं। दार्शनिक
हैं। लेखक हैं। किव हैं। कलाकार हैं।
यानी कि —
कानून की भाषा बोलता हुआ
अपराधियों का एक संयुक्त परिवार है।"

विद्रोह का क्या द्वेद्धान करने वाले धूमिल विद्रोह को नाकाम करने वाली शिक्त की बोर भी सकेत करते हैं। पूँजीवाद जहाँ एक बोर लोगों का शोषण करता है, वहीं दूसरी बोर शनै: -शनै: परिवर्तन, बदलाव एवं विकास की बात कहकर उनके मन में वसकने वाली असन्तोष की विनगारी को विद्रोह की ज्वाला में परिवर्तित होने से रोकता है। सतही सुविधाओं की जो लालव पूँजीवादी तन्त्र द्वारा दी जाती है, वह विद्रोह के लिए घातक है। उससे निर्तिप्त रहकर ही विद्रोह की बात की जा सकती है:

कोई क्षण्डा बादमी नहीं हूं
मुझमें भी बाग है
मगर वह भक्ष कर बाहर नहीं बाती
क्योंकि उसके चारों तरफ चक्कर काटता हुआं
एक पूँजीवादी दिमाग है
जो परिवर्तन तो चाहता है
मगर बाहिस्ता – बाहिस्ता
कुछ इस तरह कि चीजों की बालीनता
बनी रहे

<sup>।-</sup> संसद से सड़क तक - पृ0126 - धूमिल

कुछ इस तरह कि काँस भी दंकी रहे और विरोध में उठे हाथ की मुठ्ठी भी तनी रहे और यही वजह है कि बात फैलने की हद तक बाते - बाते स्क जाती है क्योंकि हरबार चन्द दुन्हीं सुविधाओं के लालव के सामने किम्योग की भाषा कु जाती है।

जगूड़ी जनता को व्यवस्था के विरुद्ध सकेत करते हैं, उसे उसके विरुद्ध उकसाते हैं। उनके इस उकसाने में वराजकता फेलाने जेसी बात नहीं है। सच्चाई यह है, कि बिना शोफ व्यवस्था के विरुद्ध सड़े हुए बाम बादमी अपने बिस्तत्व को स्रो देगा। जत: बिना इन्तजार किये, व्यवस्था के विरुद्ध अपने को स्थापित करके जनता को चाहिए, कि वह सत्ता से यह बता दें कि जिसे वह नहीं चाहेगी, नष्ट कर देगी:

"तुम न कुछ बोल रहे हो न हाँस रहे हो क्या तुम्हे कोई गम नहीं। इतने पेड़ मत बनो वपनी साल सीचते – सींचते की उम्र तीस से कम नहीं है।"2

"तुम इन्तजार करोगे तो एक दिन बादमी जैसी शक्त के लिए तरसोगे।"3

<sup>1 -</sup> संसद से सड़क तक - प्र0116 - धूमिन 2 - नाटक जारी है - प्र083 , जगूड़ी 3 - - वहीं - प्र084

"में वाहता हूं तुम अपने निर्माणाधीन भविष्य के बारे में उठ खड़े होजो में वाहता हूं, तुम यह बता दो कि होसना खत्म नहीं हुआ है और तुम अब भी जिसको नहीं वाहोंगे नष्ट कर सकते हो ।"

वेण गोपाल पूरी व्यवस्था को, जो कि जंल राज के रूप में कायम है, अपनी 'कलम' यानी रक्ता के माध्यम से जन-जन के मध्य विद्रोह का दावानल फैलाकर विनष्ट कर देना वाहते हैं:

"पुन्ति व के नाम पर किवता लिखकर अपने को बहलाना मेरा शगल नहीं। शगल तो यह भी नहीं कि राह करते बिम्ब या प्रतीक से दकराजें और फिर उसके या अपने सून की नुमाइश करते हुए किसी युद्ध की कहानियाँ सुनाजें। एक जंगल है सिर की जगह पर और एक माचिस है मेरे हाथ में कलम के नाम पर। चाह है कि एक दावानल भड़काजें ताकि अपने होने को मंजूर करने की राह पहचान सहूं। "2

श्री राम सनक ने अपनी निम्न किता में किसानों-मजदूरों एवं नवजवानों का विद्रोह के लिए आह्वात किया है। जनता की सुख सुविधाओं को अपने हित में काटने वाले तथा उसको विश्विन्न वर्गों में बाँट रखने वाले पूँजीवाद के पोषकों को सड़क पर नंगा कर देने की प्रेरणा इस किवता में निहित है:

<sup>। -</sup> रात बनी मौजूद है - पृ० 42, जगूड़ी 2- वे हाथ होते हैं - पृ० 53, वेगु गोपाल

"मजूर बा। किसान बा। वतन के नवजवान बा

सुबह की रौशनी से जिसने तुमको काट रखा है दिलों की बस्तियों को साजिशों में बाँट रखा है सड़क पर खींच ला कि उनको सबक सिखा दे तु। शहीद बनके इंकलाब का दिया दिखा दे तु।

हरिहर द्विदी ने बहुसंख्यकों की सुध-सुविधाओं का ज्वपहरण करने वालों कै प्रति हिंसात्मक स्थ बिस्तियार किया है:

"तुम्हे दी वार की सुशी के लिए प्यारा है हजारों की मौत का कानून और हमें लाखों करोड़ों की सुशी के लिए प्यारा है दो वार क सून में हत्यारा हूँ कबूल हे मुझे यह इन्जाम हिम्मत हो तो मिलाबो विशाल जनता से अपनी पवित्र गंगा-यमुनी वार्षे तुम्हारे वस्पष्ट हस्ताक्षर के बदले कर रहा हूँ साफ-साफ दस्तस्त हरिहर द्विदेदी बक्लम सुद पहली जनवरी 1970 1°2

माहेरवर ने अपनी किवता 'अपना देश' में कहा है, कि अब सत्ता से उरने एवं उसके आश्वासनों में उल्लो रहने का वक्त नहीं है। हम उससे बहुत डर वुके हैं, उसके वायदों की बहुत प्रतीक्षा कर कुके हैं। अब जरूरत है, कि हम उस समय को पहचाने उस समस्या को समझें, जो हमारे दरवाजे पर सड़ी है:

<sup>। -</sup> बकारा - 4 - प० 7।

<sup>2-</sup> युस्वात - पृ० ४० , हरिहर द्विदी ।

"अधिर कहाँ तक डरेगा आदमी
तोड़ना ही होगा उसे
अपनी छाती पर रखा प्रतीक्षा का यह शिलाखण्ड
और स्वीकार करनी होगी
अपने देश और अपने किवाड़ों पर
दस्तक देते समय की पहचान "!

रमेश रंजक ने अपनी किवता वह बादमी में शासन की बन्दूक पर जनता की नाठी के शारी होने का किटवास क्यक्त किया है। यदि जनता के मन में सुनगती हुई विद्रोह की बाग शड़क जाय और वह सत्ता के बत्याचारों का मुकाबना करने के लिए नाठी लेकर निकन पड़े,तो सत्ता की शक्ति नष्ट हो जायेगी तथा उसके बत्याचारों से मुक्ति मिल जायेगी:

"सुनगती वाग जब नाठियों में उतर जायेगी उसकी बन्दूक की हुकूमत धरी रह जायेगी।"2

राज्ञभार कृम्भज की रक्ता के विता में कविता के लिए में सत्ता के विस्ट विद्रोह को हवा देने का विचार है:

> "बुबते विद्रोह को हवा देना है और सत्ता को देना है ज्यावहारिकता के तमावे।"<sup>3</sup>

<sup>। -</sup> समकालीन कविता की भूमिका - पृ0 22। ,सं0 मंजून उपाध्याय एवं विश्वम्भरनाथ उपाध्याय ।

<sup>2-</sup> मिट्टी बोलती है - पु0 84 - 85 , रमेश रंज़

<sup>3-</sup> विचार कविता की भूमिका - पूछ 107. से डाठ नरेन्द्र मोहन, महीपिसंह

मिण मधुकर की लम्बी किवता घास का घराना में जनता के शोषण का कारण उसकी न-समझी को बताया गया है। वह अपनी ताकत अपनी हैस्यित पर ध्यान नहीं देती और न-ही अपने साथ किये जा रहे शोषण पर मलाल ही करती है:

"वे अन्धे और पंगु और वाचहीन जो जनतन्त्र का जा बोबा उठाने वाले दमदार थम्बे हैं कर्ता नहीं जानते कि वे क्या है/ और क्यों है/ उन्हें अपनी हैस्पित, अपनी ताकत की कोई परवाह नहीं/ न ही यह मलाल कि सालो साल केगारी में इस्तेमाल किये जा रहे हैं/ "!

यहाँ कित ने शीषितों को उनकी दुर्गीत के प्रति सचेत करने का प्रयास किया है। उसने यहाँ प्रत्यक्ष रूप से विद्रोह के लिए बाह्वान तो नहीं किया है, लेकिन जनता को सचेत करने का उसका प्रयास उसे विद्रोह की बीर ही ले जाता है।

गोरस पाण्डेय की किता 'उनका डर' पूँजीवादी व्यवस्था के जनता से भयभीत होने की और संकेत करती है। सारी शिक्त के होते हुए भी यह व्यवस्था जनसामान्य से भयभीत रहती. है। उसे यह बराबर डर बना रहता है कि वे कहीं उससे डरना बन्द न कर दें। शोषक वर्ग इस सच्चाई को जानता है कि जिस दिन जनसामान्य हमसे डरना बन्द कर देंगे, अपने अधिकार के लिए मेरे विरुद्ध सड़े हो जायेंगे, उस दिन मेरा अन्त हो जायेगा। हमारी शिक्त जनशक्ति के समक्ष टिक नहीं पायेगी:

"वे उरते हैं किस चीज से उरते है वे तमाम धन दोलत गोला बास्द पुलिस फोज के बावजूद १

<sup>।-</sup> लहर - ।-2 जुनाई बगस्त ।972 , पृ० ४६

वे उरते हैं

कि एक दिन

निहत्थे और गरीब लोग

उनसे उरना बन्द कर देंगे।

व्यवस्था के अत्याचार से न डरने से ही विद्रोह की शुरूआत होती है। उक्त कविता में गोरस पाण्डिय ने शोषक सत्ता के मन में व्याप्त भय की सच्चाई से नोगों को अवगत कराते हुए उनमे न डरने और विद्रोह करने की सोच पैदा की है।

व्यवस्था के विस्द्र विद्रोह का बाह्वान कुमार विकल की निम्नक्किमेंस्पष्ट है। उन्होंने सुविधा परस्त लोगों को समय रहते हुए पूँजीवादी दलदल से निकल कर बभावों की दुनिया में रहने वाले शोषितों के साथ एक जूट होकर संधर्षरत होने के लिए बावाज दी है:

\*समय है कि तुम इन कमरों से बाहर वाजावों और वपने नये सरीदे दूते को दलदल में छोड़कर उस रेगिस्तान में लोट जावो जहाँ तुम्हारे साथी पानी की मसकों के इंतजार में होंगे।\*2

उदय प्रकाश जनता की प्रेरित कराते हुए कहते हैं, कि तुम्हारे एवं तुम्हारे हक के मध्य यह व्यवस्था एक दीवार की तरह सड़ी है। इस व्यवस्था ने तुम्हारे हक को अवस्द कर रक्षा है। यदि तुम बाहते हो, कि तुमको तुम्हारा हक मिले, तुम

<sup>।-</sup> जागते रही सीने वाली - पृ० 26 - गोरख पाण्डेय

<sup>2-</sup> विषयगामी - कुमार विकल

तक रोशनी पहुँचे तो तुम्हे व्यवस्था की दीवार तौड़नी होगी:

"तैयार हो जाजो अपनी ईमानदार छेनी और हमलावर हथोंड़े की चोट का संस्मरण सहेजो उन्हें ठोस आकार की सार्थक सच्चाई दो रोशनी के खिलाफ दीवार का एक-एक पत्थर दरकाओ । "!

निष्कर्षतः साठोत्तरी किवता नै समकालीन जनजीवन को प्रशावित करने वाली राजनीतिक, विसंगतियों के प्रति तीसा विद्रोह किया है। उसका यह सारा विद्रोह विसंगतियों के यथार्थ विक्रण, विसंगतियों के कारकों के विरुद्ध सीधी कार्यवाही एवं व्यंग्य के रूप में व्यक्त हुआ है। राजनीतिक व्यवस्था के विरुद्ध इस किवता का विद्रोह विभेशाकृत अधिक तीसा एवं सक्त है। उतः उसे प्रायः राजनीतिक विद्रोह के रूप में जाना जाता है। इस दौर के किवयों ने अपनी विद्रोही दृष्टि को जानबूद्ध कर राज निति पर विद्यक केन्द्रित किया है। कारण,ये किव इस सत्य से भनीभाति परिवित रहे हैं; कि वर्तमान परिवेश में राजनीति का हस्तक्षेप जीवन के हर क्षेत्र में हे और उसका वारितिक पतन ही जनजीवन की प्रायः सारी असंगतियों के लिए उत्तरदायी है। इस किवता ने जहाँ एक बोर स्वातन्त्र्योत्तर भारत की राजनीतिक व्यवस्था से जनता के हुए मोहभंग के कारण उत्यन्त विदिन्त जनविद्दोहों एवं बान्दोलनों है नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह, ज्युकाश का युवा बान्दोलन आदि है से स्वर मिलाकर अपने विद्रोही

<sup>।-</sup> प्रगतिशील कविता के मीलपत्थर - पू० 307 , सं० रणजीत ।

तेवर को प्रकट किया है, वहीं दूसरी और सम्पूर्ण राजनीतिक परिवेश की सच्चाई का सुलासा करते हुए राजनीति एवं शासनतन्त्र के विभिन्न अंगों, संस्थाओं तथा मान्यताओं – संसद, संविधान, स्वतन्त्रता, प्रजातन्त्र, नेता, समाजवाद, वृनाव आदि पर जोरदार चोट करके अपनी विद्रोही वेतना का परिवय दिया है। स्वाधीन भारत की जनविरोधी राजनीति के प्रति इस कविता का विद्रोह वहां और भी तीसा हो गया है, जहाँ इसने जनसामान्य के पक्ष में सड़े होकर व्यवस्था को लकारा है और उसे उसाड़ फैन्ने के लिए जनता का बाह्वान किया है।

#### अध्याय - पाँच

साठोत्तरी कविता का आर्थिक सामाजिक विद्रोह

आर्थिक, बदहाली का सुनासा:-

स्वतन्त्रता के बाद के दिनों में भारतीय जनगण की जावा के विपरीत, देश में शोषण का जो एक जहान्य माहौज बना तथा आर्थिक विसंगतियों के कारण जनजीवन में जो खोर संवास की स्थिति उत्पन्न हुई, उसे साठौत्तर किवता में केनकाब किया गया है। वैसा करके इस दौर के किवयों ने प्रत्यक्ष - अप्रत्यक्ष रूप में भारतीय राजनीति को ही बाढ़ें हाथ तिया है। इस दौर को किवता में निहित शोषण के विरुद्ध विद्रोह, या यों कहें कि जन विरोधी अर्थतन्त्र के विरुद्ध विद्रोह मूनत: राजनीति के प्रतिक्रिया गया विद्रोह है। कारण, शासन या राजनीति की नीतिगत सामिया एवं कार्यविधि की धाँधतियाँ ही जाज की स्थिति में जनता की शार्थिक बदहाली के लिए उत्तरदायी हें। साठौत्तरी किवता में शोषण के विरुद्ध विद्रोह का जो भाव व्यक्त हुआ है, वह हर जगह उसाड़ - पछाड़ एवं विध्वंस के तेवर से ही युक्त नहीं है। किवयों ने शोषण की प्रकृति, शोषकों की गतिविधि एवं शोषितों की स्थिति का यथार्थ वित्र प्रस्तुत करके या पिर शोषण की समग्र पृक्ति पर व्यंग्य करके अपने विद्रोह को स्वर दिया है।

साठोत्तर किंव स्वतन्त्र भारत में क्या स शोषण की समग्र स्थिति को त्रास्त्री पहवानते हैं। शोषण किस तरह किया जा रहा है उसमें कौन लोग सिम्मिलित हैं, इसको उन्होंने विधिवत समझा है। शोषण सम्बन्धी अपनी गहरी समझ के कारण ही वे शोषण का पर्दांपांच कर सके हैं। नागार्जुन की निम्न कविता में आर्थिक शोषण की प्रक्रिया का स्वष्ट क्यान किया गया है। उन्होंने लिखा है कि जनता मिलावट एवं बाजार में उत्पन्न की गयी महगायी से त्रस्त है और सत्ता भी इस

#### जालाबाजारी का समर्थन कर रही है:

मूसी मिला-मिला कर चीनी, बेच रहा बनिया का बेटा। कंकालों पर बिछा दी गयी, खद्दर की सतरंगी वादर। बन्दुकें हर्स पड़ी कि देखा, चन्दन के बरने का बादर

\* \* \*

नीचै निषट गरीबी उपर हाट बाट की रजत जयन्ती। शर्म न त्राती मना रहे वै महिंगायी की रजत जयन्ती।।

शोषण की असलियत पर धूमिल ने अपनी किवता में तीखा प्रहार किया है।
वे व्यक्ति की आर्थिक मृक्ति के हामी रहे हैं। उनकी दृष्टि में आर्थिक स्वावलम्बन
के बिना स्वतन्त्रता को सार्थक नहीं कहा जा सकता। उनके इसी चिन्तन ने उन्हें
शोषण के विरुद्ध ला खड़ा किया है। वे राजनीतिक व्यवस्था एवं राजनेताओं को
ही शोषण के कारण के रूप में देसते हैं। अपनी 'अकाल दर्शन' किवता में उन्होंने
शोषण के मूल में कार्यरत शक्ति पर तीसी वौट की है:

"मगर दे हैं कि असिलयत नहीं समझते/ अनाज में छिमे उस आदमी की नीयत/ नहीं समझते/ जो पूरे समुदाय से/ अपना गिजा दसून करता है — — — — यह सब कैसे होता है में उनकी समझाता हूं/ — — — — वह कीन सा प्रजातान्त्रिक नुस्था है/ कि जिस उम्र में मेरी माँ का देहरा/ झुरियों की झीली बन गया है/ उसी उम्र की मेरे पड़ौस की महिला/ के देहरे पर/मेरी प्रेमिका के देहरे — सा लीव है/ \*2

<sup>।-</sup> नागार्जुन : चुनी हुई रक्ताएँ - भाग 2, पूठ 197 ।

<sup>2-</sup> संसद से सङ्क तक - पूछ । 7 - 18, धूमिल ।

"यह मेरे देश की जनता है/ जनता क्या है 9/----- एक मेंड़ है/ जो दूसरों की ठण्ड के लिए अपनी पीठ पर उन की फसल डो रही है/ $1^{-1}$ 

इस दौर के किवयों ने स्वतन्त्र भारत की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था की छन्न धार्म जहाँ एक और वैयिक्तिक स्तर पर शोषण का अनुभव किया है, वहीं दूसरी और वै वैवारिक स्तर पर जनवादी रहे हैं। यही कारण है कि उनके हृदय में शोषण के कुक्क में पिससी हुई जनता के प्रति सक्षम संवेदना एवं छट्पटाहट है। उन्होंने शोषित जनता की हर पीड़ा को अपनी किवता में पूरी सच्चाई के साथ प्रस्तुत कर के सत्ता, अर्थव्यवस्था एवं प्रजातन्त्र की सार्थकता पर प्रश्न चिन्ह नगाया है। नागार्जुन की निम्न किता देश के नाखों - करोड़ों लोगों की भूंब एवं दयनीयता का कित्रण करके सत्ता एवं अर्थव्यवस्था का पोल खोलती है और व्यंग्यात्मक दंग से उसके विरद्ध अपना विद्रोह भी व्यक्त करती है। 'प्रेत का क्यान' शीर्षक किवता प्रायमरी स्कूल के एक अध्यापक का क्यान न होकर स्वतन्त्र भारत के उन लोगों की दु:ख भरी कहानी है जो गरीबी की रेखा के नीचे रहकर जीवन यापन करते हैं। भूख जिनकी जिन्दगी से इतनी खुली-मिली रहती है कि दौनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता:

"नागरिक हम हैं स्वाधीन भारत के

x x x x

तनस्र हथी तीस सी भी नहीं मिली

मुश्किल से काटे हैं, एक नहीं दो नहीं नी-नी महीने

वापकी छाया में मैं ही था बाकी

<sup>। -</sup> संसद से सड़क तक - पूछ 104, पटकथा, धूमिल ।

मर कर हैंस पड़ा नरक का राजा अविश्वास की हैंसी हैंसी व्यडपाणि महाकाल वाह भाई वाह । सो तुम भूँख से नहीं मरे किन्तु भूख या क्ष्या नाम हो जिसका ऐसी किसी व्याध्थित पता नहीं हमको '-'प्रेत का ब्यान' नागार्जुन

देश की गरीब जनता भूख से तबाह है। वह दिन भर कठीर श्रम करने के बावजूद भी अपने परिवार के लिए दो-जून की रोटी का जुगाड़ नहीं कर पाती। उसमें हिम्मत है, काम करने की ललक है, लेकिन 'काम' एवं उतित पारिश्रमिक न मिलने के कारण वह एकदम बदहाल है। पेट पालने के निए वह कहीं भो जाकर कितना भी काम करने के निए तत्पर है। अपने देश, अपने परिवेश को छोड़कर रोटो की तलाश में भटकने एवं पग-पग पर शोषित होने वाली ऐसी ही गरीब जनता का विश्व केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी निम्न कविता में उकेरा है:

"मैने कहा | कहाँ क्ले १ | बीजा वह | काम जहाँ क्ले पैट जहाँ पत्ने | दान जहाँ गले | मैने कहा ऐसी जगह कहाँ १ | बीजा वह पता नहीं कहाँ / शायद है वहाँ - | धरती और अम्बर का छोर जहाँ | मैंने कहा वह बड़ी दूर है | बोजा वह हिम्मत भरपूर है | 1 " |

देश की शोषित गरीब जनता भोजन के स्वाद से वैक्ति है। वह भोजन नहीं करती बल्कि किसी तरह पेट भरती है। रोटी के टुकड़ों पर जीती है। दिन भर किन अम करने के बाद भी उसे जाराम नहीं मिलता। वह हाँफ्ते कांग्रेत उपनी रात

<sup>। -</sup> वाग का बाइना - पू० 82 , वैदारनाथ वग्रवाल ।

नंगी जमीन पर सोकर जिताती है। बदबू भरी जगह मैं ही उसको रहना पड़ता है।
यही उनके जीवन का यथार्थ है। कैदार नाथ अग्रवाल ने निम्न कविता में शोषित
एवं गरीब जनता की जिन्दगी का यह दयनीय दृश्य बड़े आकृशि के साथ व्यक्त किया
है:

"साते हैं पेट की थेली में गाड़ते हैं/ रोटी के दुकड़े दाँत से काटते हैं/ मांजते हैं वर्तन नंगी सरती पर/ सोते हैं कांसते-हांपते रोज की बदबू में सड़ते हैं दुनिया की/ मेने देखा है नम्म नृत्य पापों से बोझिल धर्म कृत्य/ भूंबी जात्माओं का विलाप पागल कृत्तों का सा प्रलाप/।"!

स्वतन्त्रता के बाद देश में प्रजातन्त्र का जो स्वरूप सामने आया वह शोषण से मुक्त नहीं है। उसमें एक और भूँछे लोग है और दूसरी और रैली, तथा ढोंग एवं विश्वासधात पूर्ण भाषण है। सत्ता का यह विश्वासधाती एवं ढोंगी विरत्न जनता को तबाह कर रहा है:

"यह बन्द कमरा सनामी मंत्र है/ जहाँ मैं खड़ा हूँ/ पत्तास करोड़ लोग खाली पेट बजाते/ ठठरियाँ खड़खड़ाते/ हर क्ष्म मेरे सामने से गुजर जाते हैं/ ब्रांकियाँ निकलती हैं/ ढाँग की विश्वासद्यात की/।"2

सर्वेश्वर दयात ने स्वातन्त्र्योत्तर भारत की प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में उपजी निर्धनता एवं भूख का जो प्रामाणिक चित्र प्रस्तुत किया है वह पाठकों को हिला देने वाला है। उनकी निम्न कविता में भारत की उस बहुसंख्यक जनता का जीवन साकार है जो किसी तरह जिन्दगी दो रही है:

<sup>।-</sup> पंस और पतवार - पू० 28 . वेदारनाथ अग्रवाल

<sup>2-</sup> गर्महवार - पृ० । 4 - 15, 'यह सिङ्की', सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ।

"हर गाँव में आज भी/ भाड़ के सामने काली भूतनी सी आज भी वह बैठी है/ पसीने से चिपविपाती देंह लिये चुपवाप खामीश एक - एक वने से अपना भाग्य जोड़ती दु:खती रगें तोड़ती/ उसके अधनम्न बच्वे/ भाड़ झोकने के लिए दिन भर सूखी पत्तियाँ बटोरते हैं/ और शाम को मक्के की रोटी और नरई का साम अमोरते हैं/।"

इस शोषका आधारित समाज में क्यक्ति की संवेदना मर गयी है। लोगों को अपने लाम से मतलब है किसी की पीड़ा से नहीं। संवेदनहीनता के कारण ही शोषण बढ़ा है। गोदामों के बनाज से भरे रहने पर भी जनता को भूखों मरना पड़ रहा है। धूमिल लिखते हैं:

"वहाँ बंजर मेदान/ कंकालों की नुमाइश कर रहे थे/ गोदाम जनाजों से भरे पड़े थे और लोग/ भूखों मर रहे थे/ मेने महसूस किया कि मैं वक्त के एक शर्म न नाक दौर से गुजर रहा हूं/ जब ऐसा वक्त जाग्या है जब कोई/ किसी का श्रुलसा हुजा वेहरा नहीं देखता है/ - - - - - - - - / हर जादमी सिर्फ अपना धंधा देखता है/। "2

लीलाधर ज्यूड़ी की निम्न किवता में गाँव की त्रासदी का बड़ा सहज बयान हुवा है। शूख एवं गरीबी से त्रस्त ग्रामीण जीविका की खोज में बाहर की गये हैं, जिससे सारा गाँव सूने घोंसने में बदल गया है। बाद एवं क्वाल पीड़ित जनता की दयनीय दवा की नजरम्दाज करके सरकार कर्ज की वसूनी में मुस्तेदी दिसाने से बाज नहीं जाती:

<sup>। -</sup> कुतानी नदी - पृ० ४६ - ४७, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ।

<sup>2-</sup> संसद से सड़क तक - पूछ 108, पटकथा - धूमिल ।

"लेकिन गाँव के तमाम वेहरे/ सूने घोसले में बदल गये/ जिसमें वारन्ट और अकाल/ और बाद के समकालीन पक्षी हरेक पत्ती को/ झाँसा देते हुए उड़ रहे हैं/।

वन्द्रकान्त देवताने की निम्न किवता भारत की जनतन्त्रात्मक व्यवस्था की पील सीलती है। यह व्यवस्था देश के भावी कर्णधार बहुसंख्यक बच्चों के साथ सौतेला व्यवहार कर रही है। देश के गरीब लोगों के बच्चे, जिनकी संख्या सव्यविक है, ले-देकर अभावों में जी रहे हैं। जबकि सम्पन्न लोगों के बच्चे जो संख्या में कम हैं, सारी सुविवाजों से युक्त हैं:

"बोड़ से बच्चों के लिए/ एक बगीवा है/ उनके पाँव दूब पर दोड़ रहे हैं/। उससंख्य बच्चों के लिए/ की वड़, धून और गन्दगी से पटी गलियाँ हैं जिनमें वै/। अपना भविष्य बीन रहे हैं/ एक मेज है/ सिर्फ छ: बच्चों के लिए/ और उनके सामने/ उतने ही अपडे और उतने ही सेब है/ एक कटोरदान है सो बच्चों के लिए भीर हजारों बच्चे/ एक हाथ में रखी आधी रोटी को/ दूसरे से तोड़ रहे हैं/ सिर्फ कुछ बच्चों के लिए/ एक आकर्षक स्कून है/ और प्रसन्न पोशावें हैं। "2

व्यक्ति जितनी भी प्रगित करले, समय जितना भी गुजर जाय, लेकिन मनुष्य की सबसे महत्वपूर्ण जावश्यकता भरपेट भोजन ही रहेगी। "हजारों वर्षों के बाद भी अतृप्त इच्छायें/ जाज भी सबसे बड़ी इच्छा है भरपेट जन्न/ पृथ्वी किस लिए धूमती रही इतने दिन/।" वे लेकिन जाज स्थिति यह है कि जो भोजन बनाता एवं

<sup>।-</sup> इस यात्रा में - पृ० 37-38, नीनाधर ज्यूड़ी

<sup>2-</sup> प्रगतिशीन किता के मील पत्थर - पूर्व 269, से डाठ रणजीत

<sup>3-</sup> अपनी कैवल धार - पू0 29, अस्ण कमल ।

परोसता है, वही भूधा रह रहा है। होटल में सैकड़ों लोगों को मोजन कराने वाले बच्चे भोजन को क्लवाई निगाह से देखते हैं और अपनी लावारी पर रोते हैं। अस्य कमल ने ऐसे बच्चों की व्यथा को अपनी निम्न कविता में विक्रित करके शोषण की स्थिति स्पष्ट की है:

"जैसे ही कोर उठाया/ हाथ स्क गया/ सामने किवाड़ से लगकर/ रो रहा था वह लड़का/ जिसने मेरे सामने/ रखी थी थाली/।"

रमेश रंजक की किवता में शोकन के विरुद्ध विद्रोह का स्वर बड़ा उग्र है। क्यानी निम्न कविता में उन्होंने बाजार में वस्तुओं का कृत्रिम अभाव पैदा करके वस्तुओं को महंगा बेब कर थन कमाने वालों पर तीखा प्रहार किया है। देश में फेनी इस तरह की कालाबाजारी जनता की क्स कर उसे भूखमरी के कगार पर खड़ा इर देने वाली है:

"इतना सारा गल्ना बाया कहाँ गया १/ खत्ती खाली गोदामों में ताले हैं/ ताले पर वौकीदारों के भाले हैं/ इधर भुखमरी उधर जवानी नहि वहएं/। सारी वीजें पहुँचा दी गोदामों में/ ढोंग रचाया फिर तुमने महैगायी का/ और फासना बढ़ा दिया है खाँई का/ रोटी इतनी बिखरा दी है इधर - उधर/ जिसे जुटाने में ही लग जाये दिन भर/।"2

अतुराज ने अपनी निम्न किता में रेल की पटरी से कीयला बीनने वाली गरीब नन्ही बच्ची का संवर्ष एवं व्यथा से युक्त जो चित्र खींचा है उसमें कीयला एवं

<sup>!-</sup> अपनी वैवल धार - पू० 18. वस्ण कमल ।

<sup>2-</sup> प्रगतिशील कविता के मील पत्थर - पूठ 297 सैठ. डाँठ रणजीत

कबाड़ बीनने वाले सारे बच्चों की व्यथामय जीवन गाथा छिपी है। उनकी यह किवता देश की जनतन्त्रात्मक व्यवस्था एवं आर्थिक न्याय को बेपदा करती है, जिसकी छाया में बच्चे भी शोषण एवं गरीबी की चक्की में पिस रहे हैं:

"जड़ के अपने इतिहास में / अधिरे को लपेटने की कोशिश है / एक नन्हीं बच्ची / जो पटरी पर नजर गड़ाये क्ली जाती है / इन बच्चों की जड़े जले हुए कोयले में है / बिखरी गिट्टियों में / और लोहे के पत्तरों में /। "

साठौत्तरी कविता में शोका की गतिविधि एवं शोकितों की दयनीय तस्वीर उकेरने के साथ-साथ शोकों के विरुद्ध संघर्ष का आह्वान भी किया गया है। यह किवता जनता को शोका का जुआ उतार फेंक्ने एवं शोकों की मुद्रुठी में कैद अपने हक को छीन लेने के लिए प्रेरित करती है। कैदारनाथ अग्रवाल ने अपनी निम्न किवता में शोक भूपतियों एवं मिलमालिकों के विरुद्ध शोकित क्कों एवं श्रमिकों के मन में पनपे विद्रोही भाव को चित्रित किया है। श्रमिकों में यह बोध हो गया है कि हम बहुसँहयक हैं और संगठित होकर शोकों को उखाड़ सकते हैं:

<sup>। -</sup> अबेक्स - पू० 33 , इतुराज ।

पहाड़ को भी उखाड़ कर रख सकते हैं/ जमीँदार यह अन्यायी है/ काम काज सब करवाता है/ पर पैसे देते हैं कम ही/। • !

केदारनाथ अग्रवान ने ईश्वर, भाग्य एवं कर्मफल को नकार कर रोटी प्राप्त करने के लिए शोषकों से सीधे दो-दो हाथ करने की बात कही है:

> "रोटी तुमको राम न देगा, वेद तुम्हारा काम न देगा। जो रोटी के लिए लड़ेगा, वह रोटी को स्वयं वरेगा।"

सर्वेश्वर दयाल सक्सेना को शोषित व्यक्ति का विद्रोही स्वरूप ही रूकिर है। जब कोई व्यक्ति भूस के सिलाफ लड़ने के लिए सड़ा हो जाता है,तो उन्हें वह सुन्दर दिसाई पड़ता है। उन्हें अस्तित्व के लिए संघर्ष में ही सोन्दर्य का आभास होता है, यावना एवं दयनीयता में कुरूपता दिसाई पड़ती है:

"जब भी/ भूख से लड़ने/ कोई खड़ा हो जाता है/ सुन्दर दीखने लगता है/ अपटता बाज/ फन उठाये.साँप/ दो पैरों पर खड़ी/ कॉटों से नन्ही पत्तियाँ साती करीं/।"2

अधिक संकट एवं शोषण से जूसते गरी बों के प्रति सर्वेश्वर दयाल का मन बहुत ही संवेदित है। इस शोषण के वातावरण में उन्हें इसानियत का दम घुटता हुआ नजर आता है। आदमी बाँद पर भने पहुँच गया हो, लेकिन वह धरती पर इसानियत को शोषणें से कुचल रहा है। सर्वेश्वर की निम्न कविता में शोषकों पर व्यंग्यात्मक प्रहार किया है:

<sup>। -</sup> वहें वेदार सरी सरी - पृ० २। , वेदारनाथ अग्रवाल ।

<sup>2-</sup> जंगल का दर्द - पूठ 35, सर्वेश्वर दयाल ।

"इन गरीब धरती के निहत्ये बादिमयों की और से कह दो जब सारे अस्त्र जवाब दे जायें। तब उस पत्थर से इंसानियत का शिर फोड़े जिसे वे चाँद से लाये हैं।"

शौष्णरत मिलमालिकों की कोठियों का घेराव करने के अतिरिक्त सर्वेश्वर को और कोई रास्ता नहीं दिखायी पड़ता। इसीलिए वे श्रीमकों को संबोधित करते हुए कहते हैं:

"साधियों ।

महीनों से आपकी ।

पगार स्की हुई है ।

मालिकान दरख्वास्त हज्म करते जा रहे हैं

आप पाँके पर पाँके कर रहे हो।

जब उनकी कोठियों का घेराव करने के जलावा और कोई चारा,
नहीं है 12.2

अपनी 'अधिहस्ता मत कनो ' किवता में सर्वेश्वर दयाल ने उद्बोधनात्मक मुद्रा में बगावत का सन्देश दिया है:

> "अनाज से भरी मालगाड़ी साँप-सी सिगनल पर सड़ी है उसकी पूँछ पकड़कर जोर से घुमाओं और पटक दो ।"3

लीलाधर जगूड़ी ने अपनी कविता "बलदेव खटिक" में शोषण एवं भूछ से पीड़ित जनता की सहन शीलता को दूदते एवं उसे विद्रोह पर उतार होते दिखाया है ।

<sup>। -</sup> कुआनो नदी - पृ० 78 , सर्वेश्वर द्याल सक्सेना ।

<sup>2-</sup> जेवल का दर्द - पृ० 17 , सर्वेश्वर दयाल सबसेना ।

<sup>3-</sup> सृष्टियों पर टी लोग - पृ० 39, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना।

इस किवता का एक पान 'रगतू' शीचित जनता का प्रतिनिधि है। उसके द्वारा कई दिन से भूखे अपने परिवार के भौजन के लिए दूकान का लूटा जाना कोई साधारण बात नहीं है। इस झटना के माध्यम से ज्यूड़ी शीचित जनता के समक्ष शोचकों के विरुद्ध का।वत का उदाहरण पेश करते हैं:

> "जो रंग्यू जो कल रासन लूंटने में सरीक था उसके पास उसके नाम का वारन्ट उसके परिकार ने रात भरपेट साथा है भूस भर सम्म के नरी में जपने देश का एक मामूली घर भी वारामगाह कना हुआ है।"

'उदासी के खिलाफ' शीर्फ कविता में ज्यूड़ी ने 'उदास' यानी शीफितीं को शोफ़ों के विरुद्ध खड़े होने एवं उन्हें नष्ट कर देने के लिए बाहुत किया है:

> "उवास नौगों! उठी और न मंजूर करो उठी और विरोध करो उठी और बोट करो उदास नौगों! उठी और फेलना दो उठी और फिल्ने तुम्बे कुका था उसे घोड़े की नाम बना दो उसकी मजबूत दठदादिला को उसकी मजबूत दुर्शावनाओं को सड़क पर मिला दो।"2

<sup>। —</sup> बची हुई पृथ्वी — कविता , कनदेव खटिक , जगुड़ी । १ — रात अभी मोजूद हे — ए० २३ — १४ , जगुड़ी ।

जानेक्शन्या अपनी 'गोनीदागो पोस्टर' कविता में शोषक जमीदारों की जमात पर गोनीदागने के लिए तत्पर नजर जाते हैं। कारण, जमीदारों ने उस जमीन को जपनी गिरफ्त में रखा है, जिस पर जाम बादमी काम करता है, खेती करता है:

"जिस जमीन पर में काता हूँ
जिस जमीन को में जीतता हूँ
जिस जमीन में बीज बीता हूँ और
जिस जमीन से अन्न निकाल कर में
गोदामों तक दोता हूँ
जसजमीन के लिए गोली दागने की समझ मुझमे है या
जन दोगले जमीदारों को जो इस पूरे
देश को सुदसीर का कुत्ता बना कु हैं।"

हरिहर दिवेदी शोकों के विरुद्ध बगावत करने के लिए मजबूर हैं। साम आदमी का सब कुछ छिन गया है, वह सपनी बदहाली के साथ तनहा बवा हुआ है। उसका क्षेय् दूट गया है। विद्रोह ही उसके पास एक रास्ता है आत्मरक्षा का। इसीलिए हरिहर दिवेदी शोकितों को संगठित करके शोकों के सीने को चाक कर डालना चाहते हैं:

> "हम मजबूर है, दुनिया के उन लोगों के साथ एक जूट होने को जिनका दम इस धरती पर कुछ नहीं रह गया है हमें माच करना यदि हमारा गुस्सा कटार की तरह तुम्हारे सीने को चाक कर ठाले वैसी हाबत में मुझे तो कोई दु: स न होगा क्योंकि

<sup>।-</sup> वाम - 2 - गोलीदागो पोस्टर कविता - आलोकधन्वा ।

तुमने
हमारी नजरों से हमारी धर्म
हमारे सीने से हमारा प्यार
हमारे तन से हमारा मन
हमारे अम से हमारा धन
और हमारी धरती से हमारा आकाश छीन लिया है
हम मैदान में खड़े हैं बोषड़ियाँ लपेटे।"

तेजुगोपाल की कविता में शोषण के विरूद्धेरणा निहित है। वे पूरे देश में बगावत की एक ऐसी आग मङ्काना वाहते हैं जिसमें सारे शोषक तमाश्रवीन जलकर रास हो जाये:

> "वाधिर मानिस और तकड़ियाँ का सही |उपयोग क्यों नहीं करते १ एक जंगली आग क्यों नहीं मड़काते कि हाथ सेकने वाले बक्कर न माग सकें।"2'

सामाजिक - सांस्कृतिक रूढियों से टकराइट :-

साठौरतर कवियों ने क्या कि क्या कित को दबाने वाली तथा उसके स्वतन्त्र विकास को बाधित करने वाली सामाजिक सांस्कृतिक मान्यतायों पर तीखा प्रहार किया है। इन कवियों की दृष्टि में सामाजिक सांस्कृतिक मान्यताएँ उसी सीमा तक स्वीकार्य है, जिस सीमा तक देव्यक्ति को उसकी देया किता से दबंद नहीं करती। बाधिक - मानस्कि शारीरिक वादि स्तर पर क्या कित को शोषित करने

<sup>।-</sup> हरिहर दिवेदी - गुरुवात - गूर 40 , सं ठाँठ माहेरवर । 2- वे हाथ होते - पूठ 78 , वेगुगोपाल ।

वाले सामाजिक तन्त्र की असिलयत को इन किवयों ने भावावेश के धरातल पर नहीं बिलक तर्क की ठोस भूमि पर जाजाहिर किया है। इन किवयों ने मात्र सडांध से युक्त परम्परागत सामाजिक – सांस्कृतिक मान्यताओं के खिलाफ ही बगावत नहीं की है, बिलक उस लक्क वाली धनाधारित आधुनिक नगरीय – महानगरीय संस्कृति के खिलाफ भी हस्ला बोला है, जो प्राय: शोषण पर आधारित, यान्त्रिक एवं वनैतिक है, जिसकी दृष्टि में बाम मनुष्य की मनुष्य के स्तर पर कोई ब्रहमियत नहीं है तथा जिसने सामान्य व्यक्ति को संत्रास, कुण्ठा, होनता, अपमान, ब्रवमानना, पीड़ा आदि मनोभावों की भीड़ में जीने के लिए विवश किया है।

स्वतन्त्रता के बाद भी समाज में बये सामन्ती अवशेषों पर नागार्जुन ने तीखी वोट की है। अपनी "विजयदशमी के वंशधर" कविता में उन्होंने वेशव प्रदर्शन में निरत शोषक सामन्तों का जो स्वरूप चित्रित किया है वह व्यंग्य से पूर्ण एवं उनके पोल को खोलने वाला है। नागार्जुन अपनी इस कविता के माध्यम से लोगों को यह सोचने के लिए विवश करते हैं कि क्या समाज में इन सामन्ती अवशेषों का जीवित रहना हितकर है १ विजयदश्मी के दिन वेशव प्रदर्शन करते हुए सामन्तों का बागे-बागे व्यन्ता और हथियार लिये हुए किसान-मजदूरों द्वारा जय-जयकार करते हुए उनका अनुकरण किया जाना प्रजातान्त्रिक ब्रवधारणा के विलक्षन विपरीत है:

गुलाबी धोती
सोने के बटनों वाचा रेखनी कुर्ता
मलमल की दुपलिया, फूलदार टोपी
बाटा के पम्प शु
नेक्ले के मूंब-सी मूठ की नफीस छड़ी - - - - - बड़ा और छोटा सरकार
लाल साहेब, हीरा बी

मानिक जी, मौती साहब बुक्तन जी, बबुजन जी नून जी, बचोल बाबू हबेली से निकले बनकर संवर कर।"

त्रिलोकन ने समाज में विद्यमान सामन्ती अवशेषों को पुराने विश्व का पुराना पाप कहा है। उनका सोकना है कि इस पाप यानी सामन्ती अवशेष के विद्यमान रहते हुए शोषण विहीन भारत एवं शोषण विहीन संसार की संरक्ता सम्भव नहीं है:

"नयं विश्व की रचना हमको ही करनी है हस पुराने विश्व के पुराने पाप जीवन के पुण्य खाये जा रहे हैं जीवन का त्रास हटे ऐसी जुगत करनी है फिर अपने भारत की खोज में अपना बेड़ा लेकर पहुँचेंगे किसी जगह नये लोग कोलंबस वही है।"2

वेदारनाथ अग्रवाल ने सामन्ती व्यवस्था एवं सामन्ती सीच को जीर्ज-शीर्ण एवं मौत के मुह की बीज कहा है। इस प्रजातान्त्रिक व्यवस्था में उसे जिन्दा रहने का कोई हक नहीं है:

> "बाज सामन्ती पुरानी हो गयी है मौत के मुंह की कहानी हो गयी है जो अलाई थी बुराई हो गयी है।" 5

<sup>। -</sup> तालाब की मछलियाँ - कविता-विजयादशमी के वंशधर , नागार्जुन । 2- तुम्हें सौषता हूँ - पृ० 42 , जिलोचन शास्त्री । 3- कहे कैदार सरी-सरी - पृ० 195 , केदारनाथ अग्रवाल ।

उदय प्रकाश ने अपनी कविता "मालिक आप नाहक नाराज है" में सामन्ती सीच वाले लोगों को आड़े हाथ लिया है। उन्होंने नौकर द्वारा संवाद शैली में मालिकों के आततायी कृत्यों का खुलासा करवाया है। इस कविता में मालिकं को बार-बार यह बोध कराने की कौशिश की गयी है वह अपने नौकरों पर ही अत्याचार कर सकता है, प्राकृतिक उपादानों पर नहीं:

"मालिक, बासिर हवा तो आप के कहने से नहीं काती धूप का क्या करेंगे आप जो गिरेगी ही ताप की खरौनियों में आप के उपर चढ़कर पुदकेंगी ही रोशनी की नटस्ट चौकन्नी गितहरियाँ। х х х х х х में ठीक कह रहा है मालिक आप नाहक नाराज है भून जाहये जिल्ह्ल उन चीजों की जिन पर हका नहीं काता आपका आहिर हवा किसीनया कहारिन तो है नहीं मालिक जो कराइती दुई चौका वर्तन करे बाम का बत्दी मर-भर पानी इत तक च्हाये दो घण्टे छोटे बाबू को बहलाये और पिर जापका विलोगा विलाये आधिर धप सरजा ती है नहीं मालिक

जिसकी कमीज बाप मुस्से से पाड़ दें और जिसकी काली पीठ पर वपनी विलमवी के गुल बाड़ दें धूप सुरजा नहीं है मालिक जिसे बाप अपनी बैठकी में उकड़ बैठाकर गरियात रहें । "!

नारी शोषण के विस्द भी साठोत्तरी कविता का स्वर काफी प्रवर है! इस दौर के किव नारी मृक्ति के पोषक हैं। वे नारियों पर हो रहे बत्याचारों से भली - भाँति परिक्ति हैं। उनके मन में नारियों के प्रति एक सक्ष्म संवेदना तथा उन्हें पीड़ित करने वाली शिक्तयों के विस्द एक प्रवल कैतना निहित है। नागार्जुन ने "तालाब की मखिलयाँ" शीर्षक किवता में मछली एवं नारी की स्थिति को समान बताया है। कड़ाही में बेनी जाती हुई मछली तलने वाली से कहती है - "हम भी मछली। तुम भी मछली। दौनों उपभीम की वस्तु हैं।" लेकिन दौनों में बन्तर यह है कि बाद के समय मछलियाँ तालाब से मृक्त होकर नदी में क्ली जाती हैं जबिक नारी सदेव दीवारों के बन्दर केद रहती है। इस किवता में नागार्जुन के कहने का ताल्पर्य यह है कि बाद, विष्मव यानी ड़ान्ति जैसी स्थिति ही नारी को मृक्ति दिला सकती है।

नागार्जुन ने पुरुष प्रधान समाज द्वारा शौषित पौराणिक नारियों के किया के माध्यम से नारी शोषण की दीर्घ परम्परा के विरुद्ध विवार व्यक्त किया है।

<sup>1-</sup> प्रगतिशीत कविता के मीत पत्थर - प्र 310, सं डॉ० रणजीत ।

चाहे अहत्या हो, वाहे रेणुका या शकुन्तला, सबको पुरुष प्रधान समाज ने पीड़ित किया है। कवि के शब्दों में -

कि । नाहक ही

उतना ही अधिक रूप दिया

विधाता ने गौतम की शकल बना के

सक्पुव क्या इन्द्र ही आया था १

समान आकृति वाले 
दो पुरुषों की छाया में पथरा गयी बेवारी । " | अहल्या |

[स्व] शक्की और सनकी पति देव - - - पितृ भक्त सहज कोशी पुत्र - - - शहीद हुई रेणुका बेचारी सव-सव बोल के
क्या किया था उसने १
तलह्या में देखती रही थी
मछलियों के कामातुर जोड़े
लीटने में हो गया था विलम्ब
तो, हम क्या देखते नहीं हे
यहाँ - वहाँ
मछलियों के कामातुर जोड़े। "2" रेणुका"

श्रेग विग्ठी १ सोने की बंगूठी क्या हुवा लेकर सोने की बंगूठी -प्रीति का प्रतीक ! मूर्व थी शकुरूला

<sup>।-</sup> प्यासी पथराई अधि - पू० 62 , नागार्जुन

<sup>2- -</sup> ael - qo 68

महर्षि की पालतू लड़की शोहदे की अँगूठी पर किया था भरोसा।" 'शकुन्तना'

केदारनाथ अग्रवाल ने नारी जीवन की पीड़ा एवं विवशता का बड़ा यथार्थ चित्रण अपनी निम्न किवता में किया है। इस किवता में किव अपनी समग्र संवेदना के साथ नारी समुदाय के पक्ष में खड़ा हुआ दिखायी पड़ता है। नारी जीवन की विसंगतियों के लिए उत्तरदायी पुरुष प्रधान समाज की क्रूरता पर बड़ी सीधी चोट इस किवता के माध्यम से की गयी है:

> "घर की घुटन में पड़ी औरतें जिन्दगी काटती हैं मर्द की मुह ब्बत में मिला काल का काला नमक चाटती हैं जीती जरूर हैं जीना नहीं जानती मात खाती मात देना नहीं जानती।"

समाज ने नारी-जीवन को 'नरक' बना दिया है। घर के अन्दर कैंद रहना तथा सन्तान पेदा करना एवं उसे पालना ही मानो उसकी जिन्दगी है। पुरुष उसे विवार एवं भावना से शून्य समझता है तथा उसे भोजन, वस्तु, आभूषण देकर उसका उपभोग करता है। रघुवीर सहाय व्यंग्यात्मक दंग से कहते हैं:

<sup>।-</sup> प्यासी पथराई अधि - पृ० 64

"घर में सब कुछ है जो औरत को चाहिए सीलन भी और अन्दर की कीठरी में पाँच सेर सोना भी और सन्तान भी जिसका जिगर बढ़ गया है जिसे मासिक पत्रिकाओं पर हमाया करती है।"

धूमिल ने अपनी 'कविता' शीर्षक कविता में 'प्रेम' की आड़ में किये जाने वाले नारी-शाषण की ओह संकेत किया है। आज के पूँजीवादी समाज में पनपे 'प्रयोग करो और पेंक दो' - के चिन्तन ने प्रेम का जो रूप प्रस्तुत किया है, उसमें एक निष्ठता नहीं है। यही कारण है कि आज'प्यार' और 'मकान की तलाश' में कोई अन्तर नहीं है। लीग प्यार या प्रेम के नाम पर अपनाई गई स्त्री को मकान की तरह बदल देते हैं और उसका शोषण करके उसे एक ऐसी स्थिति में ला देते हैं कि वह धर्मशाला बनने के लिए विवश हो जाती है:

"एक सम्पूर्ण स्त्री होने के पहले ही
गम्भावान की क्रिया से गुजरते हुए
उसने जाना की प्यार
घनी आबादी वालीबिस्तयों में
मकान की तलाश है
लगातार बारिश में भीगते हुए उसने जाना कि हर लड़की
तीसरे गर्भपात के बाद धर्मशाला हो जाती है।"2

'बुआ के लिए' शीर्षक किवता में गौरख पाण्डेय ने स्त्री के वैधव्य जीवन की उस दयनीयता की और संकेत किया है जो पुरुष प्रधान समाज की नारी विषयक दृष्टि का परिणाम है। यह कैसी विडम्बना है कि एक ही समाज में नारी का । - आत्म हत्या के विरुद्ध - पृ० 43 , रघूवीर सहाय ।

<sup>2-</sup> संसद से सङ्क तक - पू० 7, कविता , धूमिल ।

वैधव्य जीवन तो निन्दनीय है लेकिन पुरुष का विधुर जीवन नहीं:

"वह विधवा है
सनातन धर्म का एक अभिशाप
जिन्दा होकर भी जो
मौत की परछाई की तरह रहेगी
एक एक पैसा जोड़ कर रखती
और हमारी पढाई और कमीज पर
सर्व करती।"

साठौत्तर किया है, तो वह है विवाह संस्कार एवं यौन सम्बन्ध । विवाह के द्वारा स्त्री एवं पुरुष के मध्य स्थापित होने वाले दाम्पत्य सम्बन्ध की पारम्पेरिक अवधारणा, जिसमें पत्नी का दर्जा पति से निम्न होता है - को नकार कर इन कियों ने दोनों के मध्य समता पर आधारित मेत्री सम्बन्ध को स्वीकार किया है । श्रीकान्त वर्मा के शब्दों में -

"मेरा विवाह
किसी स्त्री से नहीं बल्कि हुआ था जमाने की पसंद से
पत्नी मिली है दहेज में
अनुभव करता हूं अपने को पुरुष
केवल एक बार सेज पर 1"2

इस दौर की कविता में स्त्री - पुरुष के थौन सम्बन्धों का चित्रण बिना किसी दुराव छिपाव के हुआ है। यौन सम्बन्धों की वैवाहिक सीमा की अस्वीकार

<sup>। -</sup> जागते रही सोने वालों - पू० 35 , गोरख पाण्डेय । 2- माया दर्पण - पू० 25 , श्रीकान्त वर्मा ।

करते हुए किवयों ने उन्मुक्त योन सम्बन्धों पर बन दिया है। उन्होंने योन सम्बन्धों को सीमित करने वाली सारी नैतिकताओं को ध्वस्त कर दिया है। इन किवयों का योन विद्रोह सारी वर्जनाओं को तोड़कर कहीं भी योन सम्बन्ध स्थापित करने के निर स्वतन्त्र होने की सोच का हामी है। योन विद्रोह के बारे में स्थाम परमार ने लिखा है - "सेक्स-अनुभूति दिश्लक एवं क्षेप से अन्य हो गयी है, बल्कि वह इतनी उघड़ गयी है, स्वीकृत मान्यताओं के नाते इतनी अपराधी हो गयी कि उसमें उसका सिनम्ब पक्ष सदा के लिए समाप्त हो गया। कामुक विह्वनता, तीखे व्यंग्य एवं क्षत्र विद्रम्बनाओं में बदल गयी। "। योन स्वच्छन्दता का बड़ा तीखा भाव श्रीकान्त वर्मा की निम्न किवता में उपस्थित है:

"मुझे अभी कई लड़िक्यों से करना है प्रेम मुझे अभी कई कुछों में करना है स्नान अभी कई तहसानों की करनी है सेर ।"2

साठौत्तर किवयों को स्वच्छन्द प्रणय में बाधक सामाजिक मान्यताएँ एवं मयदियें बहुत अखरती हैं।..वे उनके मन में पीड़ा मिश्रित आकृशि उत्पन्न करती हैं। उनकी समझ में प्रणय सम्बन्ध एक जैविक आवश्यकता है उसमें किसी तरह का अवरोध नहीं होना वाहिए। तस्ण सोलंकी के खब्दों में -

<sup>1-</sup> अकि विता और कला सन्दर्भ - पू० 15, श्याम परमार । 2- माया दर्पण - पू० 4, श्रीकान्त वर्मा ।

में और तुम सरिता के दो कूल बरसों से खड़े एक दूसरे के समक्ष नेत्रों में लिये मूक श्रामन्त्रण कि हा । यह मर्यादाओं का निष्दुर जन हमारे मध्य का अन्तराल बनाये हुए है । \* !

साठोत्तर कवियों का यौन विद्रोह कहीं - कहीं अतिवादिता का शिकार भी है। उन्मुक्त यौन सम्बन्धों की उनकी उद्दाम कामना व्यक्ति को यौन सम्बन्ध की दृष्टि में पशु के स्तर पर ला खड़ा करती है। इन कविथों ने यौन स्वच्छन्दता की भावना से प्रेरित होकर यौन प्रतीकों एवं यौन बिम्बों का खुला प्रयोग किया है। ये प्रतीक एवं बिम्ब कविता में हर स्थान पर विवारों की स्थाबत अभिव्यक्ति के साधन के स्थ में सिद्ध नहीं हुए हैं। प्राय: ये कवियों की कुणठा के रूप में सामने आये हैं। इनके उनर्गल प्रयोग के कती कविता काफी कुरूप एवं वीभत्स हो गयी है।

साठोत्तरी कविता में धर्म एवं ईश्वर विषयक परम्परागत अंध मान्यताओं को त्रस्वीकार किया गया है। कवियों ने धर्म एवं ईश्वर को तर्क की कसोटी पर कसना वाहा है और ऐसा करने पर इन दोनों की निरर्थकता ही उनके सामने आयी है। केदारनाथ अग्रवाल ने अपनी "विकक्ट के बोड्म यात्री" नामक कविता में धर्मार्थ तीर्थ यात्रा पर जाने वाने ढोंगियों एवं लंपटों पर तीखा व्यंग्य किया है:

"विक्रकूट के बोड़म यात्री सेतुबा गुड़ गठरी में बाँधे गठरी को लाठी पर साधे लाठी को कंधे पर टाँगे दिन भर अधरम करने वाले

<sup>। -</sup> नवनीत - अप्रैल 1978 , पू० 52 , तस्य सौलंकी ।

परनारी को ठगने वाने
पर सम्पत्ति को हरने वाले
भीषण हत्या करने वाले
धर्म लूटने के अधिकारी
टोली की टोली में निकने
जैसे गुड़ के लोभी चीटे
लम्बी एक कतार बना के
खपने-अपने बिल से निकले
बंडी काली तेलही पनहे
धोती बोछी गन्दी पहने
गन्दे जीवन के अधिकारी
स्वर्ग पहुँकने की इच्छा से लम्बे-लम्बे कदमें भरते।"

नागार्जुन में धार्मिक अनुष्ठानों के प्रमुख आधार मंत्र को अस्वीकार करते हुए ईश्वरीय बाराधना पर व्योग्य किया है। उनके शब्दों में -

> "वाँ सब कुछ, सब कुछ, सब कुछ नहीं, कुछ नहीं, कुछ नहीं औं पत्थर पर की दूब, खरगोश की सींग औं नमक-तेल-हल्दी-जीरा-हींग और मूस की लेड़ी, कनेर के पात ओं डायन की वीख, औंखड़ की अटपट बात ओं कोयला-इस्पात-पेट्रोल औं हमी हम ठोस बाकी सब पूरे दोल।"

<sup>। -</sup> प्रगतिशील कविता के मील पत्थर - पृ० 47, डाँ० रणजीत ।

केदार नाथ अग्रवाल ने ईरवर की श्रेष्ठता और उसके संसार के सुष्टा होने की धारणा को नकार दिया है। उनका मानना है कि मनुष्य को ईरवर ने नहीं बल्कि ईरवर को मनुष्य ने जन्म दिया है:

"ईशतर को बादमी ने जन्म दिया है ईश्वर को मतलब क्या आदमी के जन्म से ईश्वर ती बाद की आया है आदमी ने उसकी तो केवल कोत्तहल से भावना के पिण्ड से रवा है आदमी ने ईश्वर की रूप दिया आदमी ने ईश्वर को बड़ा किया आदमी ने ईश्वर की शक्ति दिया आदमी ने ईश्वर को ज्योति दिया आदमी ने ईरवर को कोष दिया बादमी ने ईरवर को बायु दिया आदमी ने ईश्वर को भाव दिया आदमी ने ईश्वर को शब्द दिया आदमी ने ईशवर को अपना सर्वस्व दिया ईश्वर ने आदमी को नहीं दिया एक वस्तु आदमी का प्यारा पुत्र ईरवर है ईरवर का पुत्र नहीं आदमी है।"

जगदीश क्तुर्वेदी ने अपनी निम्न कविता में ईश्वर के प्रति अपना अविश्वास व्यक्त किया है। उन्होंने सम्भोग सुद्ध को ही ईश्वरीय सुद्ध माना है। उनकी अस्तिकता ईश्वर विश्यक विश्वास पर अधारित न होकर सम्भोग-सुद्ध की सच्चाई

## पर आलिम्बत है:

"ईश्वर पर मुझे विश्वास नहीं पर हर स्त्री के साथ सौते समय मुझे ईश्वरीय सुख की अनुभूति होती है मैं आस्तिक होता जा रहा हूँ।"!

लीलाधर ज्यूड़ी ईंद्रवर की सत्ता को तकधि।रित एवं यथार्थ की ठोस भूमि पर स्थित नहीं मानते। उनका मानना है कि ईश्वर की सत्ता मनुष्य भय के कारण मानता है। के पहिन्मर हिएवं समाज ने उसके मन में अनेक प्रकार का भय भर दिया है, जिसके कारण वह ईश्वर की मानने के लिए विवश है:

> हे ईश्वर तू चिन्ता न कर तू तो रहेगा ही रहेगा क्योंकि मेरे डर तुझको बनाये रखेंगे अमर 12

जगूड़ी ने "ईरवर और आदमी की बात-वीत" कविता में ईरवर की मूर्ति की पूजा और द्वत पर व्यंग्य करते हुए मनुष्य को ईरवर से ज्यादा उत्कृष्ट बताया है:

"जानते हो यह मूर्ति मेरी है

बोर कुछ लोग इसे पूजने बा रहे हैं

तुम्हें क्या चाहिए १

क्या तुम्हारा भी द्रत है १

नही-नही यह मूर्ति मेरी है

बोर यह कि कुकी है

सुद को तो में तुमसे ज्यादा जानता हूँ
संयोग से जो पाँचवी योजना में नहीं है

<sup>।-</sup> विजय - पृ० ७०, जगदीश क्तुर्वेदी ।

<sup>2-</sup> बबराये हुए शब्द - पू० 18, लीलाधर जगूड़ी ।

वह तुम कैसे दे सकते ही १

प्रश्न केवल मूर्ति का नहीं
मेरे घर का भी सवाल है
बताओं कि मैं कहाँ निवास करूँ १
तुम किताबों से उठ कर बार-बार यहाँ क्यों क्ले आते हो १
हमने तुम्हे क्लेण्डरों पर दे दिया है
बावों बूते और घड़ियों के उपर रही
बादिमियों के उपर इस वक्त खतरा है। "

राजकमल वोधरी ने अपनी किवता मुिक्त प्रसंग में ईश्वर सम्बन्धी धारणा ब्रह्म सत्य - पर आधात करते हुए उसे \ ईश्वर को \ नकली एवं नकाबपोश कहा है :
"मेरे फेपड़े के अन्दर मलत्याग की वैष्णवी मुद्रा में बैठा हुआ काबपोश नकली ईश्वर देखता रहा है मेरी स्त्री का अवरूद गर्भ विवर ।"2

पक्रें सिंह ने 'क्लो उस तरफ' शीर्षक किता में ईश्वर की मनुष्य की विक्रित वैवारिकता की देन न मानकर उसकी आदिम वेतना की उपज माना है:

"यह कोन सा ईश्वर है

तुम्हाही अपियम याद में कुण्डली मारे

तुम्हारे सून में जहर सा दोड़ता

जो तुम्हे उसी मडराते भय की छाया में
समेट लेता है

<sup>। -</sup> रात बभी मौजूद है - पृ० 65, लीलाधर जगूड़ी 2- मृक्ति प्रसंग - पृ० 12, राजकमल बौधरी ।

इन सबकी तुम्हारे हुनास में सने हाथी की एक दमदार चीट दरकार है।"

साठौत्तरी कविता में, नगरीय संस्कृति की यान्त्रिकता, संवेदनहीनता
संबन्धहीनता एवं शोषक प्रवृत्ति का यथार्थ बिम्ब दिखायी पड़ता है। इस दौर
के कवियों को नगरीय संस्कृति का यह वर्तमान स्वरूप खटकता है। यही कारण
है कि उनकी कविता में इसके विरुद्ध नकारात्मक रख विद्यमान है। कुमार विकल
ने अपनी "प्रक सामरिक चुप" कविता में कलकत्ता महानगर के माध्यम से नगरीय
संस्कृति के वनतंत्री स्वरूप के बारे में जो कुछ लिखा है उसमें उनका उसके प्रति विद्रोहा स्वक या निषधात्मक विन्तन क्वी दिखायी पड़ता है। उनकी इस कविता में नगर की
बराजकता के उपर चौट की गयी है, जो आम आदमी को कुकत रही है:

"कलकरता अब सिर्फ एक शहर का नाम नहीं
एक क्यवस्था का प्रतीक है
जिसे वनतंत्र कहते हैं
और जिसकी हिफाजंत के लिए आदमीनुमा दिरन्दे दनदनाते हैं
नहीं में कलकरता नहीं जाउँगा
नहीं देखूँगा किस तरह आदमी
एक आतंक से दूसरे आतंक तक जीता है
पीठ पर लाठियाँ साता है
आंधों से अबु गैस पीता है
नहीं देखूँगा किस तरह

और घरों में इन्तजार कर रही माएँ असि सूच जाने के बावजूद रौती हैं।"।

रघुवीर सहाय को नगरों, महानगरों में विश्वास एवं सहजता का वातावरण नहीं दिखाई पड़ता। उन्हें यहां हर जगह बालाकी एवं धोखा का माहेल दृष्टिगत होता है. जिसमें एक सक्वे आदमी का जीना कठिन है:

"इस विराट नगरी में, बड़े - बड़े धीखे हैं।
गुरति हुए बाजों में और कुलबुलाते हुए मसौदी में
और छोटे-छोटे धोखे फूलदानों में हैं
न छोटे न बड़े सौदी में नौकरियों के। "2

महानगरों एवं नगरों में यन्त्रगाओं का ऐसा जाल व्हिंछा है, जिससे मृक्ति पाना व्यक्ति के लिए सम्बद्ध नहीं है। वह उसी में पैसा हुआ किसी तरह जीवन जिता दे यह जलग बात है। जीवन की एकरमता, सम्बन्धहीनता, अकैलापन एवं घोर स्वार्थपरता के माहौल में यहाँ जीना व्यक्ति की विवशता हो गयी है:

> "रीज के एक रस जीवन से उचा महानगर वहीं बसे, वहीं द्रामें, स्कूटर और रिक्से कितना याद जाता है छोटां सा गाँव महानगर में अकेलापन गहरी उब दे जाता है मृत्यु जेसी सामोशी यहाँ कोई किसी का दोस्त नहीं, परिचित नहीं वहाँ तो सभी वहरे बिसरे हैंस्वार्थों में लोग उड़ाते हैं एक दूसरे का मजाक

<sup>। -</sup> प्रगतिसील कविता के मील पत्थर - पू० 280 , सै० डॉ० रणजीत 2- बात्महत्या के विस्द्र - पू० 32, रच्चीर सहाय ।

बौदिकता की सीमाएँ ज्यादा बौलने में है हर आदमी शैतान नजर आता है।"।

नगरों - महानगरों का जीवन पूर्णत: यान्त्रिक एवं औपवारिक है। वहां न सम्बन्धों में गम्भीरता है और न व्यवहार में सरसता। सारे व्यवहार कामकलाउ एवं आडम्बर से भरपूर हैं। बाहर से प्रिय दिखने वाला व्यक्ति अन्दर से कट् है। जगदीश क्तुर्वेदी की निम्न कविता भव्य दिखने वाले नगरीय जीवन का पोल खोलती है:

हम सब कितने औयवारिक ढंग से मिलते हैं अपनी पत्नी से, अपनी प्रेमिका से अपने दोस्तों से, अपने अधिकारी से खीसे निपोर कर, गला दबा कर बनाई गयी जावाज में हम सब बहुत-बहुत खीझे रहते हैं अपने पड़ोसी के व्यवहार से। "2

"अनिश्चित तिथियों में जीते हैं सभी लोग साथियों को देते हैं चुपचाप गालियां ।"3

बद्ती जनसंख्या, एवं रोजगार की तलाश में भटकते लोगों के कारण नगर महानगर भीड़ में बदल गये हैं। व्यक्ति के लिए यह सम्भव नहीं रह गया है कि वह अपने को भीड़ की अव्यवस्था की क्येट से बवा सके। रख्तीर सहाय के शब्दों में-

<sup>। -</sup> जगदीश क्तुर्वेदी - विजय . पृ० 77 ।

<sup>2- -</sup> वहीं - पू0 57 ।

<sup>3- -</sup> वही - पू0 64 ।

"बच्चा गोद में निए कलती बस में चढ़ती स्त्री और मुझमें कुछ दूर तक धिसटता जाता हुआ।"

इस महानगरीय भीड़ में मेलखोरी गंध है, बादिम मूर्खता की दुर्गन्ध है। यत्न पूर्वक खोजने पर भी इसमें मानवता की गन्ध का आभास नहीं होता। इस भीड़ में ब्यक्ति का बस्तित्व खोगया है। अपने को पहचान पाना उसके लिए कठिन है:

> "भीड़ में मैलडोरी गन्ध मिली भीड़ में बादिम मूर्खता की गन्ध मिली भीड़ में मुद्दे नहीं मिली मेरी गंध जब में सांस भर उसे सूचा ।"<sup>2</sup>

साठोत्तरी किवता ने भारतीय जनतन्त्र की छत्रछाया मैं पनपे शोषण, अधिक वेषम्य एवं गरीबी की सब्बाई को बेनकाब करे देश की अर्थनीति पर प्रश्न - चिन्ह लगाते हुए भी एक प्रकार से स्वदेशी सत्ता एवं राजनीति को ही आड़े हाथ लिया है। इस किवता मैं देश के जनविरोधी अर्थतन्त्र को ध्वस्त कर देने की चेतना काफी प्रवल है।

साठौरतरी कविता को विद्रोही दृष्टि से समाज एवं संस्कृति की जनविरोधी मान्यताथे तथा व्यक्ति के व्यक्तिस्व एवं उसकी स्वतन्त्रता को अवस्ट करने वाली

<sup>1-</sup> आत्महत्या के विरुद्ध - पू० 39 , रघुवीर सहाय । 2- - वही - प० 50 ,

खोखनी मर्यादायें भी नहीं बच पायी हैं। इसने समाज में विद्यमान सामन्ती जवशैषों, नारी शोषण, धर्म एवं ईरवर सम्बन्धी जंध अवधारणाओं, प्रेम एवं यौन सम्बन्धों की पारम्परिक मान्यताओं, नगर की यान्त्रिक संस्कृति आदि सबके विस्ट आवाज उठाई है। इस दौर की कवियों का यह सारा विद्रोह भावावेश से प्रेरित नहीं, बल्कि आज की परिस्थितियों से मेल खाने वाली तार्किकता के ठोस धरातल पर आधारित है। हाँ, यह बात जरूर है कि प्रेम एवं यौन सम्बन्धों की पारम्परिक मान्यताओं के विस्ट इस कविता का विद्रोह कहीं – कहीं अतिवादिता एवं उच्छेबलता से युक्त हो गया है।

## अध्याय - छः

साठोत्तरी कविता : अभिव्यक्ति के नये आयाम

जब साहित्यकार का मन विसंगतियों से मुक्त, विडम्बनाओं से असम्पृक्त
एवं व्यथाओं से रहित होता है, तभी वह साहित्य के शास्त्रीय मानव्यडों को मानता
हुआ, बिम्ब विधान, क्लंकार-निरुण, भाषिक वमत्कार एवं कर्मना की उड़ान में मन
लगाता है। लेकिन विविध विसंगतियों से युक्त समाज में जीने वाले एवं उन विसंगतियों
को व्यक्तिगत स्तर पर भोगने वाले साहित्यकर्मी से ऐसी आशा नहीं की जा सकती
है। वह जिस प्रकार विसंगतियों को जन्म देने वाली व्यवस्था के प्रति विद्रोह करता
है और उसके शासन को अस्वीकारता है, ठीक उसी प्रकार वह पारम्परिक साहित्या —
नुखासनों एवं मानव्यडों को तोड़ता हुआ अपनी अभिव्यक्ति के लिए नया आयाम
रक्ता है। क्योंकि काव्य के पारम्परिक प्रतिमान उसकी अनुभूति की अभिव्यंजना
में बाधक होते हैं; जबिक अभिव्यक्ति का माध्यम अनुभूति के अनुकूल होना वाहिए।
यही कारण है कि "जिस प्रकार पाँचवें दशक के उत्तराई में भारतीय मानस, विश्वस्थ
एवं एकांगी राजनीति के रवेंथ से कतरा रहा था, उसी प्रकार रक्ताधर्मी जनजीवन के
बीहड़ मौर्वें पर पर्दा डालने वाले काव्यतत्वों के प्रयोग से विवित्तत हो रहा था।"

साठोत्तरी किवता में अपनी पूर्ववर्ती काव्य व्यवस्था के प्रति जो अस्वीकार या विद्रोह दिखायी पड़ता है, वह राजनैतिक सामाजिक एवं आर्थिक व्यवस्था के प्रति अपने विद्रोह एवं जनवादी दृष्टिकोण को व्यवत करने के उचित माध्यम की खोज का

<sup>। -</sup> समकालीन हिन्दी कविता में जनवादी वेबना - पू0 263, डाँ० नकछेद ।

परिणाम है। जिना कनागत आभिजात्य को तोड़े उसका व्यवस्था के प्रति विद्रोह पूरी मुखरता एवं इमानदारी के साथ प्रकट नहीं हो सकता था। डाँ० नकछेद के शब्दों में - " जनजीवन की प्रामाणिक संवेदना के अभाव में काव्यबोध के ग्राह्य उपकरण - कल्पना, विम्ब, प्रतीक, रस, छन्द-दूटने लगे। क्योंकि 1960 के आस -पास तक कविता शब्दजाल विशेषण एवं आलंकारिक घटाटोप से जीने की प्रक्रिया - ---- को नकार कुकी थी। फलस्वरूप राजनीतिक दबाव से वरमराने वानी सामाजिक, आर्थिक, एवं धार्मिक तथा सांस्कृतिक, गतिविधियों ने कविता के वस्तु और रूप को बदलने की दिशा दी। मानव-जीवन की उन्न और व्यर्थता-बोध के कारण काव्यात्मक तत्व विवलित और विषटित होने नमे अथित मानवीय तत्वों के विष्टन ने काव्यतत्वीं के विष्टन के लिए कवि को लावार कर दिया। - -कविता का पारम्परिक ढाँवा एवं उसका अन्तिरिक अनुशासन जीवन-विसंगति एवं विद्वपता के कारण छटपटाने लगा, जिससे कविता की भाषिक एवं शैरियक बनावट दट गयी। - - - - - अदमी के सही वेहरे की तलाश में कविता में बदलाव आया।"। सारे काट्य प्रतिमानों की पारम्परिक उपयोगिता समाप्त हो गयी। भाषा. प्रतीक. विम्ब, काव्यस्प बादि सब के प्रति कवियों कानजरिया बदल गया। 818 भाषा की सजावट के प्रति अन्यमन स्कता :- मानव की सबसे प्रथम महत्वपूर्ण खोज भाषा है। उसके विकास के वर्तमान पड़ाव तक पहुँचने और अपने पड़ाव की ओर अग्रसर होने में भाषा का आधारभूत योगदान रहा है। विवार भाषा में ही उत्पन्न होते हैं और भाषा द्वारा ही संवारित होते हैं। मनुष्य के विवार ही

<sup>। -</sup> समकालीन हिन्दी कविता में जनवादी वेतना - पृ० 264, डाँठ नकछेद ।

उसकी क्रियाओं में प्रतिफलित होते हैं। संसार में विद्यमान मानव का सम्पूर्ण कृतित्व उसके विवारों का ही मूर्तस्य है। रिचर्डस ने भाषा के दो प्रयोग निधारित किये हैं - १। १ तघ्यात्मक १२१ रागात्मक । किवता में भाषा का रागात्मक प्रयोग होता है। उसकी पहचान भाषा की पहवान से भिन्न नहीं है। क्योंकि काव्य के जो गृग बताये जा सकते हैं, अन्ततोगत्वा भाषा के ही गृग है। 2 भाषा में लय, तुक, छन्द, अलंकार, रस आदि का समावेश करके काव्य भाषा के निमाण की परम्परा रही है। लेकिन काव्य भाषा का यह पारम्परिक अभिजात्य स्प साठोत्तर कवियों ने स्वीकार नहीं किया है। क्योंकि उनके मन में, परिवेश की जटिलताओं के कारण विद्रोह, आकृति, कुण्ठा, संत्रास, तनाव, ऊब, व्यर्थता, संघर्षशीलता आदि का जो भाव विद्यमान है, अलंकारादि के घटाटोप से युक्त, दुर्बोध एवं कोमल काषा उसके अनुकूल नहीं है।

साठोत्तर कियों ने काच्य भाषा को आडम्बर एवं आवरण से मुक्त करके उसका विक्रूब बूंगा एवं स्वाभाविक रूप प्रस्तुत किया है। इससे भाषा में पारदर्शिता आयी है और कविता के माध्यम से परिदेश की जिटलता को पूरी सच्चाई से कहना एवं समझना सम्भव हो सका है। "ताजी कविता जिस भाषा की खोज में है वह नंगी भाषा है - आवरणहीन - संस्कारहीन, सज्जाहीन और इन सबसे अधिक एक ऐसा नंगापन जिसमें आफिजात्य जंगलीपन के उपर एक समयबोध की छाप लगा सके। "3 डाँ० रामस्वरूप वर्तुवेदी का काव्यभाषा विषयक मत -

<sup>। -</sup> पाश्वात्यकाच्य शास्त्रके सिद्धान्ते - पृ० २०२, शान्ति स्वरूप गुप्त २ - रघुवीर सहायकी काव्य पुस्तक - "सीदियौँ पर धूप में "की भूमिका - अक्षेय। 3 - क स ग ९ पृ० 57, लक्ष्मीकान्त वर्मा।

"काव्य भाषा वह है, जो काव्य के परम्परागत भेदक लक्षण, तुक, छन्द, अलंकारलय रस बादि के विलुप्त हो जाने के बाद शेष रह जाती है।" साठोत्तर काव्यभाषा के स्वरूप के अनुकूल है। निम्न साठोत्तर कंविताओं में हम उसमें प्रयुक्त काव्य-भाषा का पारदर्शी एवं नम्म रूप देश सकते हैं, जो "काव्य के परम्परागत भेदक नक्षणों "से रहित तथा अनगढ़ एवं सज्जाहीन होते हुए भी बाक्षक एवं सब कुछ कह देने में सक्षम है:

"महापुरूष की धौती का एक छोर नगर सेठ की तिजोरी में है दूसरा संसद की क्सी में । "2

"सरकार का कहना है

कारखाने में गोली चली उसमें

देड यूनियन का हाथ है

मारे गये मुसहर, उसमें भी

किसान सभावों का हाथ है

विद्यार्थियों के हंगामों में

छात्र संगठनों का हाथ है

और राज्य में जो भी गड़बड़ी है

सबमें कम्युनिस्टौं का हाथ है

हुनूर ने ठीक फरमाया
इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है।"3

<sup>। -</sup> भाषा और संवेदना - पृ० 32, डाँ० रामस्वरूप वर्तुर्वेदी ।

<sup>2-</sup> सुनो कारीगर - पू0 61, उदय प्रकाश ।

<sup>3-</sup> अपनी केवल धार - पृ० २१, अस्ण कमल ।

सन् 1960 के बाद की कविता की भाषा में समाज में अश्लील समझे जाने वाले शब्दों का प्रयोग काफी व्यापक रूप में किया गया है। ऐसा करके कवियों ने भाषा के स्तर पर सारी वर्ननाओं को नकार दिया है। अपलील समग्री जाने वाली शब्दावलियों का प्रयोग, इस दौर के कवियों की क्रोध, आक्रोश, विद्रोह, क्टा. पीड़ा आदि से यक्त वेतना का परिणाम है। जब मन ऐसे भावों से भर जाता है तो व्यक्ति की भाषा शलीलता को छोडकर उश्लीलता का जामा पहन नेती है। वह गाली-गलीज के स्तर तक उत्तर आता है। उसकी सारी शिष्टता शोर मर्यादा कु जाती है। "आज के किवयों को किवता की वह भाषा अपर्याप्त प्तीत हुई है. जिस भाषा में कहीं - न - कहीं अभिव्यक्ति की शिष्टता, मर्यादा या शालीनता बची हुई है। वे अपने जिन अनुभवीं को पुकट करना वाहते हैं. उनको शालीनता कण्ठित करती है और परिष्कार निष्पाण बना देता है। इन अन्भवीं की. शाकृशि, विदूष, भद्दे, अनगढ, और गाली-गलीज की सीमा में समक्षे जाने वाने शब्दों के माध्यम से ही अकृत्रिम और समर्थ रूप में अभिव्यक्ति होती है।"। अप्रलील शब्दों का प्रयोग आप्रवर्योत्पादक नहीं बल्कि स्वाभाविक है। वर्जनाजीं. शिष्टताजीं एवं श्लीलताजों के परित्याग के कारण भाषा एकदम खल गयी। है. जिससे कवियों के मन की सच्चाई जिना लाग लपेट के अपने वास्तविक रूप में पुकट हुई है। अश्लील एवं अशिष्ट शब्दों से युक्त नंगी भाषा के कारण व्यवस्था के प्रति कवियाँ के मन का आकृशि एवं विद्रोह पूर्ण साहस एवं निर्भयता के साथ प्रकट हुआ है। भारतीय पार्लियामेन्ट के प्रति 'निर्भय मिलक' के मन का विद्रोह अस्तील

<sup>। -</sup> डाँ० दिनेश्वर प्रसाद - सन् साठ के बाद हिन्दी कविता - पृ० ४० , सं० वक्नदेव कुमार ।

एवं अशिष्ट कही जाने वाली भाषा में निम्न प्रकार से व्यक्त हुआ है :

"सुनो दौस्तों मेरे मरने के बाद मेरी लाश पर वीर्यपात कर मूत देना और किसी रजस्वला स्त्री के कपड़े में लपेट कर फेक देना पालियामेन्टमें सक्षमुव इतना बड़ा कब्रगाह और कहाँ मिलेगा समूबे हिन्दुस्तान में ।"

यहाँ प्रयुक्त 'वीर्यपात', 'रजस्वला स्त्री के कपड़े', 'मूत देना' आदि शब्द समाज को भने ही अश्लील लगते हों, लेकिन यहां किवता में वे गम्भीर सार्थकता को समेटे हैं। 'मूत' से भीगी हुई एवं रजस्वला स्त्री के कपड़े में लिपटी हुई अपनी लाश को 'पार्लियामेन्ट' स्पी कब्रगाह में फेंकने की बात कह कर 'निर्भयमितक पार्लियामेन्ट की उनेतिकता", अराजकता, जनविमुखता एवं घीर शोषकता को जितने सशक्त दंग से व्यक्त करते हैं, उतने सशक्त दंग से किसी भी भाषा के शिष्ट एवं श्लील समक्षे जाने वाले शब्द उसे व्यक्त नहीं कर सकते हैं। अशिष्ट एवं अश्लील समक्षे जाने वाले शब्द उसे व्यक्त नहीं कर सकते हैं। अशिष्ट एवं अश्लील समक्षे जाने वाले शब्दों से युक्त साठोत्तरी किवता के कुछ उदाहरण निम्न है, जो अपनी अशिष्टता एवं अश्लीलता में भी सार्थक है:

"वर्तमान की बजबजाती हुई सतह पर हिजड़ों की एक पूरी पीदी लूप और अन्धाकूप के मसले पर बहस कर रही है आजादी इस दरिद्र परिवार की बीस साला बिटिया मासिक धर्म में डूबे हुए क्वारैयन की खाग से अन्धे अतीत और लंगड़े भविष्य की किसस भर रही है।" - ∦संसद से सड़क तक, पु0 24, धूमिल∦

<sup>। -</sup> शमलानी पीढ़ी ।

"सार्वजिनक पेशा बधरों की तरह सड़ांध मारते विद्यामिनदों में बोर्ड, डेस्क और दीवारों पर बनी खिंची खुदी शिश्न और यौन की आकृतियाँ इन्हीं में दूंदते हैं शोहदे प्रजातन्त्र और भारत माता

---- भाग्य विधाता।" - (दीवार पर सून से पृ० 82. चन्द्रकान्त देवलाले (

साठोत्तरी किवता की अश्लील और अशिष्ट शब्दों से युक्त भाषा पर
पूर्वागृह से युक्त होकर आरोप, प्रत्यारोप करना तर्कसंगत नहीं है । अश्लील एवं
अशिष्ट कहे जाने वाले शब्द प्रयोग विधि के कारण अश्लील एवं अशिष्ट होते हैं ।
वे वहीं पर अश्लील कहे जा सकते हैं जहाँ उनका उद्देश्य मात्र अश्लीलता का प्रदर्शन
होता है । लेकिन जहाँ ये शब्द किसी विवार या भाव को प्रभावपूर्ण हंग से व्यक्त
करने के लिए प्रयुक्त किये जाते हैं, वहाँ इनको अश्लील नहीं कहा जा सकता । ऐसे
शब्दों के प्रयोग के उद्देश्य की उत्कृष्टता एवं निकृष्टता ही क्रमशः उनकी श्लीलता
एवं अश्लीलता का निर्धारण करती है । साठोत्तर किवयों ने जहाँ किवता में अपनी
काम कुण्ठा को प्रदर्शित किया है वहाँ नि:सन्देह उनकी भाषा अश्लील है ।

सन् साठ के बाद की हिन्दी किवता में जन-भाषा के शब्दों की अधिकता
दिखायी पड़ती है। ऐसे शब्दों की अधिकता का कारण इस दौर की किवताओं का
आम आदमी की समस्याओं से अधिकता के जुड़ना तथा पारम्परिक का व्य-भाषा का
समसामिक भावानुभृति को स्पष्ट करने में ब्रह्मम हो जाना है। जनसामान्य की और
जनसामान्य की समस्याओं को उसकी ही भाषा में सफलता एवं सहजता से व्यक्त किया
जा सकता है। इसीलिए इस काल की किवता में जनभाषा का सहारा लिया गया है

साठोत्तरी अविता को नयी कविता से उत्तराधिकार में जो भाषा प्राप्त हुई थी, वह काफी धिस गयी थी और उसके शब्द स्टू हो गये थे। फलत: वह समसामियक भावबोध को पूरी सजीवता एवं ईमानदारी से व्यक्त करने में उक्षम हो गयी थी। इसिनिए भी कवियों को नये एवं समर्थ शब्दों की तनाश में जनभाषा की शरण में जाना आवश्यक हुआ है। साठोत्तरी कविता में आये जनभाषा के शब्द अपने अभिधार्थ के साथ व्यंग्यार्थ को भी समेटे रहते हैं, "कविता के शब्द बील चाल के हो सकते हैं - लेकिन उनका अर्थ वही नहीं होता। वे अर्थ की नयी सम्पदार्थ लेकर आते हैं।"। कवियों ने जनभाषा या बोल-चाल की भाषा के शब्दों को काव्यभाषा में बड़ी सहजता एवं स्वाभाविकता से स्पाया है। यथा:

"मूत बोर गोबर की सारी गंध उठाये हवा बेन के सूजे कन्धे से टकराये सान उतरी हुई भेड-सी परी छाया नीम के पैड़ की 'हाय-हाय करते हागर के सींग में आकास फंसा है।" - 'गांव' कविता - धूमिल

"पेरोवर भाषा के तस्कर-संकेतीं बीर केनमुत्ती दबारतों में अर्थ सीजना व्यर्थ है।" - संसद से सड़क तक, पृ०।०. धूमिल।

"कहाँ गई बाड़े में संधी-बंधी घरवाली वृरी हुई दाल पिसे मसाले में सूब भूने हुए नजीज - - - - " - 'वौधा सप्तक - संo अक्रेप - पृo 256, श्रीराम शर्मा ।

<sup>। -</sup> वौथा सप्तक - 1979, पू० 225 - श्रीराम शर्मा - सं० देवे ।

"इस विराट नगरी में बड़े-बड़े धोखे हैं
गुरति हुए बाजों में
और कुलबुनाते हुए मसौदों मे
और छोटे-छोटे धोखे फूलदानों में है।" - आत्महत्या के विरुद्ध - पृ०
144, रघुवीर सहाय ।

मृत, गोबर, डाँथ-डाँथ, डाँगर, कुकी हुई, बेलमुत्ती, कुलबुलाते आदि शब्द उपर्युक्त किवताओं में सम्बन्धित अनुभूति की अभिव्यक्ति के लिए जितने उपयुक्त है, उतने अन्य शब्द उपयुक्त नहीं हो सकते। ये शब्द सहज स्वाभाविक रूप से प्रयुक्त हुए हैं, अत: इनका गैवारूपन जरा-सा भी नहीं खटकता। यहाँ, भारतीय काव्य - शास्त्र में निधारित ग्राम्यत्व दोष की अवधारणा अपना कोई मूल्य नहीं रखती।

सच्चाई तो यह है कि जनभाषा एवं काच्य भाषा के मध्य मात्र प्रयोगिविधि का बन्तर है। जनभाषा ही एक खास ढँग से प्रयुक्त होकर काच्यभाषा का रूप ले लेती है। डाँ० विद्या निवास मित्र ने लिखा है - "काच्य-भाषा सामान्य भाषा से उद्भूत है और सामान्य भाषा जो कल जाने वानी है वह आज की समर्थ काच्य - भाषा में मौजूद है। वस्तुत: भाषा के इन दोनों स्तरों का अन्तर, उद्देश्य का है, न कि समूह का । 2 साठोत्तरी कविता में जनभाषा के शब्दों का प्रयोग आकि स्मक रूप से नहीं हुआ है, खिल्क ऐसे शब्दों के प्रयोग की एक लम्बी परम्परा हिन्दी कविता में विद्यमान है। 'मिक्तकालीन काच्य' एवं प्रगतिवादी काच्य' जन भाषा के काफी निकट है, नयीकविता में भी जनभाषा के शब्दों का प्रयोग है।

<sup>। –</sup> रीति विज्ञान – पू० 36, डाँ० विद्या निवास मिश्र ।

<sup>2-</sup> बाधुनिक हिन्दी काव्य भाषा प्० ६९४, राम कुमार सिंह ।

साठीत्तरी किवता की भाषा गद्ध भाषा के काफी निकट है। इसका कारण किवता में विम्बों एवं प्रतीकों का कम-से-कम प्रयोग, सपाट ब्यानी के प्रति बुकाव, भावुकता की कमी तथा यथार्थणएवं तार्किकता की बहुलता है। बिम्बात्मकता एवं प्रतीकात्मकता भाषा को काल्यात्मक बनाती है, जब कि सपाटक्यानी उसे गद्धात्मकता की और ने जाती है। परिवेश की जिटलता को यथार्थता, तार्किकता, पूर्णता एवं स्पष्टता के साथ व्यक्त करने में जब बिम्ब एवं प्रतीक बाधक होने लगे तो 1960 के बाद किवता ने उनका परित्याग कर सपाटक्यानी का मार्ग पकड़ा। जिससे उनकी भाषा गद्ध के निकट आ गयी। निम्न किवताओं की भाषा में हम गद्ध भाषा सी बनक देख सकते हैं:

"मगर यह वक्त घबराये हुए लोगों की शर्म आंक्रेन का नहीं और न यह पूँछने का कि सन्त एवं सिपाही में देश का सबसे बड़ा दुर्भाम्य कोन ।" -संसद से सड़क तक' -अविता बीस साल बाद'-धूमिल

"कई शहरों के बाजारों से गुजरूंगा

में कई बार
नौकिरियाँ देखूँगा

किताबें सरीं दूँगा

कई बार अवानक नींद से
जागकर सीवूँगा वह क्या था, वह क्या था।" - 'बहनें और अन्य कितायें '-प्० 86 साइकिल-असद जैदी

"अन्धों का साथ हो जाये तो सुद भी आँसें बन्द कर लो जैसे सब टटोलते हैं राह तुम भी टटोलों।" - 'एक सूनी नाव' पृ० 35 सर्वेश्वर दयात -सक्सेना ।

साठोत्तरी किवता की भाषा गढ़ भाषा के निकट है नेकिन गढ़ भाषा नहीं है। "किवता के शब्द गढ़ से आते हैं, पर वे गढ़ की भाषा से विच्छिन्न होकर आते हैं, वे एक नये अर्थ में उलकर आते हैं। इसिनिए किवता कभी गढ़ नहीं हो सकती। किवता में शब्द का संबदन उसका विन्यास उसे गढ़ जैसा नहीं रहने दे सकता, अन्यथा वह किवता नहीं है।"

संक्षेप में साठोत्तरी कविता की भाषा खुली हुई, गोपनीयता से रहित एवं नंगी भाषा है। वह अपनी अनगद्ता, अश्लीलता, जनोन्मुखता, गद्धमयता एवं नंगेपन में ही पूर्ण, बाकर्षक एवं तथ्य संप्रेषण में सक्षम है।

## 2- बिम्ब : कविता के हाशिये में :-

हिन्दी समीक्षा के उन्तर्गत 'बिम्ब' शब्द का प्रयोग अँग्रेजी के 'हमेज' शब्द के हिन्दी स्पान्तर के स्प में किया गया है। 'बिम्ब' का शाब्दिक अर्थ है - पृति - बिम्ब, छाया, प्रतिमृति, बामास,सूर्य या चन्द्र का मण्डल। 2 साहित्यशास्त्र के अन्तर्गत किसी-न-किसी स्प में बिम्ब के चित्र शृष्टाया अर्थ को ही स्वीकृति मिली है।

<sup>। -</sup> वौथा सप्तक - पू0 226, श्रीराम वर्मा, सं0 अज्ञेप ।

<sup>2-</sup> बृहत् उन्दी कौंश - पू० 808, कालिका प्रसाद

शब्दकोश का यह सीधा-साधा शब्द साहित्यशास्त्र में एक पारिमाणिक शब्द बन गया है। जिसे विद्वानों ने अपनी बुद्धि के अनुसार परिभाषा की परिधि में बाँधने का प्रयास किया है। मनौवैज्ञानिक थार्नडाइक के विवार से - 'वस्तु, गृग एवं परिस्थितियों का, जिनकी किसी विशेष समय में उपस्थित नहीं है, भावात्मक बौध ही बिम्ब है। "। सीठ डीठ लेविस के मतानुसार - 'काव्य बिम्ब एक ऐन्द्रिक शब्द कित है, जो कुछ-न-कुछ अलंकृत होता है, जिसके साथ किसी मानवीय सेंवेग का जुड़ाव होता है तथा वह पाठक के मन में उसी तरह का सेवेग जागृत कर सकता है। "2 स्टीफेन जी ब्राउन का मत है कि - 'बिम्ब कात्यनिक या वास्तविक वस्तुओं या घटनाओं के रंग, ध्विन, गित और आकार - प्रकार से पूर्ण प्रभावशाली शब्द कित का नाम है। "3

भारतीय विद्वानों की बिम्ब सम्बन्धी अवधारणायें कुछ इस प्रकार हैं —
"काक्यात्मक बिम्बों से साधारणत: यह बोध होता है कि ये शब्द द्वारा निर्मित
चित्र हैं।" "जब कलाकार अपने अमूर्त मर्म संवेगों की यथातध्य अभिव्यक्ति के लिए
बाह्य जगत से ऐसी वस्तुओं को कला के फलक पर इस रूप में उपस्थित करता है कि
हम भी उसकी भावना से वैसे ही मर्म संवेग की प्राप्ति कर सकें, जिससे कलाकार

<sup>। -</sup> समकालीन हिन्दी कविता में जनवादी वैतना - पृ० 204, डॉ॰ नकछेद ।

<sup>2-</sup> साठो त्तरी हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ - प्र ।।।, डाँ० नीलक्रम ।

<sup>4-</sup> काव्यात्मक बिम्ब - पृ० 54. ब्रजनन्दन प्रसाद अखोरी ।

पहले ही गुजर कुन है, तब उन योजित वस्तुओं की वैसी प्रस्तृति को हम बिम्ब - विधान कहते हैं। " "काव्य बिम्ब शब्दार्थ के माध्यम से कत्यना द्वारा निर्मित एक ऐसी मानस दृष्टि है, जिसके मूल में भाव की प्रेरणा रहती है। " निष्कर्षत: कहा जा सकता है कि बिम्ब मूर्त या अमूर्त, स्थून या सूक्ष्म, कात्यनिक या वास्तिवक वस्तुओं का शब्द द्वारा निर्मित ऐसा भावात्मक किन्न है, जिसका मन द्वारा अनुभव होता है।

भारतीय काव्यशास्त्र में बिम्ब की काव्य के तत्व या प्रतिमान के रूप में विवेचित नहीं किया गया है। यह मूलत: पाश्चात्य काव्य चिन्तन की देन है। परन्तु ऐसा नहीं कहा जा सकता, कि भारतीय काव्य-मीमांसक काव्य बिम्ब' से कनिश्च थे। पाश्चात्य काव्य समीक्षा का बिम्ब भारतीय काव्यशास्त्र के विभावना व्यापार' में समाहित है। भारतीय काव्यशास्त्र के वाधुनिक काल में "वाचार्य रामकन्त्र सुक्त ने किवता में पुन: 'विभावना व्यापार' की प्रतिष्ठा की। सन्दर्भ भेद से इसी के लिए उन्होंने मूर्तिमत्ता' एवं 'बिम्ब ग्रहण' शब्दों का भी प्रयोग किया"

'विम्ब' की 'वाद' के रूप में प्रतिष्ठित करने, काव्य के एक महत्वपूर्ण
प्रतिमान के रूप में स्वीकृति देने तथा उसे आन्दोलन के रूप में खड़ा करने का कार्य
पारचात्य साहित्य शास्त्रियों का ही है, जिनमें दाशीनिक किव टी० बार० ह्यूम
का नाम प्रमुख है है विम्बदादी बान्दोलन का प्रवर्तक माना जाता है।
यह काव्यान्दोलन पारचात्य साहित्य ज्ञात में बीसवीं शताब्दी के पूर्वार्द में काफी

<sup>। -</sup> सौन्दर्यशास्त्र के तत्त्व - पृ० २०४, कुमार विमल ।

<sup>2-</sup> काव्य बिम्ब - पू० 5, डाँ० नगेन्द्र ।

<sup>3-</sup> कविता के नये प्रतिमान - प्र 115 , नामवर सिंह ।

ब्यापक एवं प्रभावपूर्ण रहा है। इस आन्दोलन का तत्कालीन कवियों पर इतना गहरा प्रभाव पड़ा कि विम्बदादी कविता की एक धारा ही वल पड़ी। इस धारा के कवियों में एजरापाउण्ड, रिवर्ड एलडिंगटन, एस० फ्लिन्त आदि प्रमुख है।

विम्बवादिता का प्रभाव पाश्चात्य कविता की तरह हिन्दी कविता पर भी पड़ा, जिसे छायावाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद एवं नयी कविता तक 'विम्ब' केंद्र रक्तर और समीक्षा दोनों स्तरों पर समक्त रूप से प्रतिष्ठित हो गया, जैसिक केंद्र में से समीक्षा दोनों स्तरों पर समक्त रूप से प्रतिष्ठित हो गया, जैसिक केंद्र में से सक्ते विक्ष ध्यान देता हैं, विम्ब विक्षाम पर । विभ्य का सम्बन्ध जितना काव्य की विषयवस्तु से होता है, उतना ही उसके रूप से भी । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को सिक्ष पत और दीप्त । विषय को वह मूर्त और ग्राह्य बनाता है, रूप को सिक्ष पत और दीप्त । विषय को काव्य मूर्यांकन का प्रतिमान प्रसावित करते हुए केंद्रार नाथ सिंह ने कहा है – "एक बाधुनिक किंव की श्रेष्ठसा की परीक्षा उसके द्वारा वाविष्कृत विम्बों के बाधार पर ही की जा सकती है। उसकी विशिष्टता और उसकी बाधुनिकता सबसे विध्व उसके विम्बों में ही व्यक्त होती है। वे बागे कहते हैं – "में विम्ब निर्माण की प्रक्रिया पर और इसलिए दे रहा हूँ कि बाज काव्य के मूर्यांकन का प्रतिमान सगक्ता वही मान लिया गया है – – – प्राचीन काव्य में जो स्थान चरित्र का था, अज की कविता में वही स्थान 'विम्ब' व्यवा' इमेज' का है। "3

<sup>। –</sup> साठौरतरी कविता की प्रवृत्तियाँ – प्० । । ३, डाँ० नील कूसूम । 2 – तीसरा सप्तक – प्० । २०, कैदारनाथ सिंह का वक्तव्य – सं० खेश्य । 3 – वहीं – प्० । २८

काव्य रक्ता एवं आलोकना में विम्ब को इतनी मज़बूत स्वीकृति मिलजाने का परिणास यह हुआ कि कवि एवं आलोक विम्ब के प्रति आग्रही हो गये। विम्बों के प्रति इस अतिशय झुनाव के कारण विम्ब कविता का साधन न होकर साध्य इन गया और कविता विम्बों का अजायकार इन गयी। "विम्बों के आधार पर निर्मित कविता तथा कविता के विन्यास में प्रशासम्भव सायास विम्ब योजना का दुष्परिणाम यह हुआ कि आलोकना का सम्पूर्ण ध्यान समूची कविता पर न जाकर इन्धिता हुए विम्बों पर ही केन्द्रित हो गया। ऐसा नहीं कि यह आलोकों का ही हुए विम्बों पर ही केन्द्रित हो गया। ऐसा नहीं कि यह आलोकों का ही हुए विम्बों पर ही केन्द्रित हो गया। ऐसा नहीं कि यह आलोकों का ही हुए विम्बों पर ही केन्द्रित हो गया। ऐसा नहीं कि यह आलोकों का ही हुए विम्बों में स्वयं कवियों को और से भी इस प्रवृत्ति को बदाहा मिला। विम्बों न्यूकता की इस प्रवृत्ति के कारण नयी कविता की सम्प्रेक्शीयता प्रभावित हुई। विम्ब विधान की सायास ता के कारण काव्यभाषा कवि की व्यक्तिगत भाषा बन गयी, उसकी निवेंयिक्तकता समाप्त हो गयी। विम्बों के उलझाव के कारण किता समझ के बाहर हो गयी। उसे समझने के लिए उसका अपना स्वस्थ अवर्यान्त हो गया।

सन् 1960 तक वाते - वाते किवयों का विम्ब से मोह मंग हो गया।
उन्होंने बिम्ब के प्रति विद्रोह कर दिया, उसकी महत्ता को बस्वीकार कर दिया
तथा उसे काव्य मृत्यांकन के प्रतिमानों की केगी से निकाल कर बाहर फेंक दिया।
विम्बों के प्रति इन किवयों का मोह मंग एवं विद्रोह किसी पूर्वाग्रह का परिणाम
नहीं, बिस्क तत्कालीन साहित्यिक वाक्यकता थी। विम्ब उनकी समकालीन
उनुमृति की स्पष्ट विम्वयंक्त में बाह्य था। राजनीतिक वार्थिक एवं सामाजिक

<sup>। -</sup> कविता के नये प्रतिमान - पूर्ण । 19 - 20, डाउँ नामवर सिंह ।

्रव्यवस्था के प्रति इन कियाँ के मन में जो विद्रोह, बाक्रोश, पीड़ा, निराशा बादि का भाव था, वह विम्ब के सहारे पूरी सच्चाई से व्यक्त नहीं हो सकता था। बिम्ब किसी बात को कहने का कलात्मक एवं घुमावदार रास्ता है, जबिक विद्रोह, बाक्रोश बादि भाव सहज एवं सीधे मार्ग के हामी हैं, वे दूराव खिमाव एवं घुमाव नहीं जानते। नामवर सिंह ने लिखा है कि "वस्तुत: इस बिम्ब मोह के दूरने का कारण सामाजिक एवं ऐतिहासिक है। छठे दशक के अन्त एवं सातवें दशक के बन्त के बन्त एवं सातवें दशक के बन्त के बन्त के बन्त के बनावर के भार प्रतीत होने लगा। जिस प्रकार सच्च 1936 सक वाते-वासे स्वयं झायावादों कियाँ को भी सुन्दर शब्दों एवं चित्रों से लदी हुई कियता निस्सार लग्ने कगी, उसी प्रकार सन् साठ के बास-पास नयी कियता की बिम्ब धर्मिता की निरर्थकता का एहसास होने लगा।

अशोक वाजमेयी ने जिन्न के प्रति विरोध की स्थित की और संकेत करते हुए लिखा है - "नयी किवता जिन्न केन्द्रित रही है और अवसर किवता में जिन्न का ऐसा घटाटोप तैयार हुआ है कि सातवें दशक तक बाते-आते कई किवयों को यह महसूस हुआ कि किवता को जिन्न से मुक्त करके ही जीवन्त और प्रासंगिक रखा जा सकता है। उनके सामने जिन्न प्रधान किवता कुछ शक की चीज बन गयी और सपाट-बयानी की तरफ कई किव हुके और उसे विश्वसनीय माना जाने लगा। "2

सन् 1960 के बाद की हिन्दी किवता में बिम्बों के प्रति वस्वीकार का भाव निस्तन्देह दिखायी पड़ता है। लेकिन यह नहीं कहा जा सकता कि इस दौर

<sup>। -</sup> कविता के नवे प्रोत्तमान - पूछ । 25 - 26, ठाँछ नामवर सिंह । 2- धर्मयुग - 23 जून 1968, क्योंक वाज्येयी ।

की कविता में बिम्ब है ही नहीं। किवता से बिम्ब का पूर्णत: परित्याग सम्भव नहीं है। "बिम्ब का ब्य का वत्यन्त प्रभावी माध्यम है और इसीलिए का ब्य के सन्दर्भ में उसका मूल्य क्सींद ख है।" "बिम्ब किव का व्यक्तित्व ही है। एक किव कनजान रूप में अपनी भीतरी पसन्द-नापसन्द, अपनी दिलवरपी एवं पर्यवेक्षण की बातें मनौवृत्ति एवं विश्वास आदि को अपने विम्बों के माध्यम से ही व्यक्त कर देता है।" किव की सूक्ष्म भावनाओं या अपूर्त सहजानुभूतियों को विम्बों के द्वारा ही मूर्तिमस्ता तथा अभिव्यक्ति को वास्ता मिलती है। " साठौरतरी किवता में विम्ब विम्बों के प्रीत की क्यान दिखाई पड़ती है वह 'बित सर्वत्र वर्ज्यत " के सिद्धान्तानुसार है। बिम्बों के प्रति उसका दिखाई पड़ती है वह 'बित सर्वत्र वर्ज्यत " के सिद्धान्तानुसार है। बिम्बों के प्रति उसका वर्ष्य रचना के दौरान, जो स्वामाविक बिम्ब कनायास बन गये हैं, उनसे उसका परहेज भी नहीं है। साठौरतरी किवता बिम्बों के विरुद्ध नहीं है, बिस्क बलपूर्वक बिम्बविधान के विरुद्ध है। साठौ - त्तरी किवता के सहज, स्वामाविक बिम्बों के कुछ उदाहरण निम्न है:

"दौपहर हो कुनी है हर तरफ ताले लटक रहे हैं दीवालों से चिपके गोली के छरें और सड़कों पर बिखरे जूलों की भाषा में एक दुर्बटना लिखी गयी है।" - संसद से सड़क तक, पूठ 10 धूमिल ।

<sup>। -</sup> धर्मयुग । ३ सितम्बर । १६६, पू० २३, डाँ० नगेन्द्र ।

<sup>2-</sup> दिनकर एक पुनर्मृत्यांकन - पृ७ १० , डाँ० विजेन्द्र नारायम सिंह ।

<sup>3-</sup> सोन्दर्यशास्त्र के तत्त्व - पूछ 123 , कुगार विमल ।

#### 2- स्पर्श बिम्ब :-

"में व्रमता हूँ तुम्हारा मस्तक तुम्हारी भोहें तुम्हारे कपोल तुम्हारे कथर तुम्हारा कण्ठ

तुम्हारा वक्ष।" - जेमल का दर्द प्रा।।, सर्वेश्वर दयाल सक्तेना

# 5- मेश विषय दिन्<sub>ग सर</sub>

"भीड़ में मेलखोरी मंध मिली
भीड़ में बादिन मूर्खता की मंध मिली
भीड़ में मूझे नहीं मिली मेरी मंध
जब मैने सांस भर उसे सूंधा।" - 'वात्महत्या के विरुद्ध' पू० 5,
रघूवीर सहाय ।

#### 4- स्वाद विम्ब :-

"जैसे कोई मादा मेड़िया अपने छौने को दूध पिला रही है और साथ ही किसी मेमने का सिर चबा रही है।"

- संसद से सङ्क तक - पूछ 112, धूमिल ।

#### 5- रंग विम्ब :-

"मेरे पीछे गुलाब खिले थे सामने सूर्यास्त हो रहा था मैंने नीचे बेठकर देखा मेरा सारा गरीर हरा था थास मैं किया टिइंडा हरा था।"

#### 6- ध्वनि बिम्ब :-

"नदी से लेकर टंकी तक टंकी से लेकर नल तक वे छरछरा रहे हैं।" - बची हुई पृथ्वी-पृ० 34, ज्यूड़ी ।

#### 7- वेज्ञानिक बिम्ब :-

"यह जिन्दगी जैसे बम्बई मैल की तीव्र रफ़्तार हो बिजनी का बटन दबा

## ार्क र शर्रे । और सवा

रहना नहीं देश बिराना है।" - ईहामूग पू० 7, वचन देव कुमार। 8- पौराणिक बिम्ब:-

> "लगता है अब कालिदास का यक्ष चाँद की छू आया है। साथ गयी थी प्रिया यक्षिगी।" - तालाब की मछलियाँ, पू०।52, नागार्जुन।

निष्कर्षत: इस दौर की किवता में विम्बों का उसाउस जमाव नहीं है। किवयों का बिम्ब विधान सायास नहीं है। काव्य रक्ता के दौरान उत्तायास ही स्थित हो जाने वाले बिम्ब ही इनकी किवताओं में मिलते हैं। सारे बिम्ब खेळड़ा स्फूर्त है। उत: वे किवताओं में सधन रूप से नहीं बीक्क विरत्स्व से दिखाई पढ़ते हैं। किवता बिम्ब के मार से बोझिल नहीं है। बिम्ब किवता में समाये हुए हैं। वे उलग से पेबन्द के रूप में नहीं दिखायी पड़ते, बीक्क वे किवता की मूल बुनावट से मिलाकर बुने मये हैं। सच्चाई यह है कि इस दौर के किवयों का विद्रोह बिम्बों के प्रति नहीं, बीक्क बिम्बों के बस्वाभाविक प्रयोग या बिम्ब केन्द्रित काव्य रक्ता के प्रति है।

## 3- स्पाटक्यानी : विम्ब का विकस्प :-

'सपाटबयानी ' शब्द 'सपाट ' एवं 'बयानी ' दो शब्दों' का समूह है. जिसमें 'सपाट' शब्द 'बयानी' शब्द का विशेषग है। सपाट का वर्ध है विक्रना", समतल, बराबर जिसकी सतह पर कोई उमरी वस्तु न हो। तथा खयानी 'शब्द का अर्थ है - बयान, विका, जिन्न एवं हाल। 2 इस प्रकार किसी वस्तु, घटना या विचार का सीधा-साधा सफ्ट एवं दुराव क्रियाव से रहित वर्णन ही सपाट क्यानी है, जो सीधे-साधे, सरल एवं सकट गर्क के बाद्यम से ही सम्भव है। सपाद क्यानी किवता की पारदर्शिता है, जिसमें निहित संम्यून के कि स्वष्ट रूप से असकते हैं। सपाट बयानी बिम्ब के प्रति विद्रीह एवं अस्वीकार का परिणाम है, इसे उसके विकल्प के रूप में स्वीकृति मिली है। नामवर सिंह के शब्दों में - "बिम्बों के कारण कविता बोल-वाल की भाषा से बक्सर दर इटी है, बोल-चाल की सहजलय खण्डित हुई है, वाक्य विन्यास की शक्ति को धका लगा है, भाषा के अन्तर्गत कियाये उपेक्षित हुई है, जिलेक्गों का अनावस्यक भार बदा है और काब्य की ताकत कम हुई है। इन कमजोरियों को दूर करने के लिए ही कविता में तथाकि शत सपाटक्यानी उपनायी जा रही है, जिसमें फिलहाल काफी सम्भावनायें दिखायी पड़ती हैं।" उसीक बाज्येयी का भी मल कुछ ऐसा ही है - " नयी कविता विम्ब केन्द्रित नहीं है और अकार कवियों में विम्ब का ऐसा घटाटीप तैयार हुआ कि सातवें दशक तक वाते-वाते वर्ष कवियों को यह महसूस हुवा कि कविता को विस्व से

I- सिक्काप्त विनदीं शैंबर्द सागरं - पूँठ 925, सैठ रॉमवन्द्र वर्मा

<sup>2- -</sup> aef - q0 710

<sup>3-</sup> कविला के नये प्रतिमान - प्0 । 31 , ठाँठ नामवर सिंह ।

मुक्त कराके ही उसे जीवन्त एवं प्रासंगिक रखा जा सकता है। उनके सामने विम्ब्युधान किता कुछ शक की बीज बन गयी और सपाटबयानी की तरफ कई किव बुके और उसे जिल्लामनीय माना जाने लगा 1° सन् साठ तक बाते-बाते तत्कालीन परिकेश की विसंगतियों से तस्त किव मानस अपनी बात को स्पष्ट एवं सीधे दंग से कहने के लिए छटपटा उठा। लेकिन बिम्ब उनकी सौच की सरल अभिव्यक्ति में बाधक था। उत: बिम्बों को अस्तीकारना एवं सपाटबयानी को स्वीकारना उनकी आव्यक्ता थी। नेतिक बिम्ब धीर्मता की को अस्तीकारना एवं सपाटबयानी को स्वीकारना उनकी आव्यक्ता थी। नेतिक बिम्ब धीर्मता की निर्यक्ता का एंदसास होने बना। समस्या परिस्थितियों के सीधे साक्षात्कार की थी, प्रमन हर बीज को उसके सही नाम से बुकारने का था। °2

यद्यपि किवता में सपाटबयानी बिम्ब के विरोध में आयी है, लेकिन किवता वाली सपाट बयानी बिम्ब से पूरी तरह मुक्त नहीं हो सकती है, क्योंकि किवता में भावावेग के कारण ब्रिम्बों की सहज स्वाभाविक उत्पत्ति से सपाटबयानी को परहेज भी नहीं करना वाहिए। उसकी कुमलता एवं सफलता बिम्बों को अपने में समाहित कर लेने में ही है। डाँ० महेन्द्र कार्तिकेय ने सपाटबयानी को किवता का आवश्यक तस्व तो नहीं माना है, लेकिन उसे किवता के लिए बाधक भी स्वीकार नहीं किया है - " बिम्ब एवं सपाटबयानी दो विरोधी वीजें हैं। सपाटबयानी कविता का अनिवार तस्व नहीं हो सकता है। काव्य एवं मद्य में जो अन्तर है वही बन्तर बिम्ब एवं सपाटबयानी में है। लेकिन कार्तिकेय यह भी कहते हैं - इसमें कोई सम्देह नहीं

<sup>। -</sup> धर्मयुग - 23 जून 1968, श्रीकान्त वर्ग के काव्य संग्रह मायादर्ण ' और दिनारम्भ की समीक्षा ।

<sup>2-</sup> कविता के नये प्रतिमान प्र 126. डॉ० नामवर सिंह ।

कि समर्थ किव की काव्य भाषा सपाट बयानी के बावजूद किवता रहती है जबिक असमर्थ किवयों को सपाट बयानी ने बीच में डुबा दिया है।"

कविता को संप्रेषणीय एवं तर्कसंगत विवारों से युक्त बनाने के लिए सपाट - बयानी को अपनाया गया, क्योंकि विवारगत तार्किकता एवं सम्प्रेषणीयता के अभाव में किवता समकालीन परिवेश की विभीषिका की कथा प्रस्तुत नहीं कर सकती थी । साठोत्तर किया ने सपाटबयानी को अभिव्यक्ति के हथियार के रूप में प्रयुक्त किया है । उन्होंने वरिवेश की बदिलता के कारण उत्पन्न अपने मन के विद्रोह, अस्वीकार अंकोश, कुण्ठा, संश्रास, कृणा आदि भावों को सपाटबयानी के माध्यम से व्यक्त किया है, क्योंकि यही माध्यम उनकी सफल अभिव्यक्ति में सक्षम है । सपाटबयानी के कुछ उदाहरण निम्न है :

"अलमुनियम का यह दो जिन्ने वाला कटोरदान बच्चों के हाथ से छूटकर नहीं गिरा होता सड़क पर तो यह कैसे पता क्लता कि उसमें चार सूडी रोटियों के साथ प्याज की एक गाँठ

बोर दो हरी मिरचे भी थे।" - समुद्र के बारे में - पू० 8, भगवत रावत।
भगवत रावत की यह कविता सीधे-साधे शब्दों में भारतीय जनतन्त्र के भावी कर्णधार
बच्चों के कुपोषण पर टिप्पणी करते हुए बाम बादमी की बार्थिक बदहाली को पूरी
सच्चाई सै व्यक्त करती है। ऐसा कथन की सादगी एवं सपाटता से ही सम्भव हुआ

<sup>।-</sup> बाधुनिक कविता के नये मून्य - पू० 15%, डाँ० महेन्द्र कार्तिक्य ।

"एक बादमी रोटी केनता है एक बादमी रोटी खाता है एक तीसरा बादमी भी है जो न रोटी केनता है, न रोटी खाता है वह सिर्फ रोटी से खेनता है में पूंछता हूँ यह तीसरा बादमी कतेन है

मैरे देश की संसद मीन है।" - किवता - 'रोटी और संसद' धूमिल इस किवता में धूमिल ने देश में ब्याप्त शोषण के मूल कारण पर प्रहार करने के लिए जिस भाषा का प्रयोग किया है, वह सपाटक्यानी का उन्त्रा उदाहरण है।

"आजो मार्ड बेचू आजो

जाजो मार्ड क्यरफ जाजो

मिल जुल करके छूरा चलाची

आपस में कटमर जाजो

\* \* \*

इस बार देना बहुत बड़ा का

खूब हुई थी सुन की बारिश

अगले साल बच्छी होंगी

पसल मतदान की ।" - 'जागते रहो सोने वालों' - पू० । , "देगा" गीरख पाण्डेय ।

इस किवता में गोरस पाण्डेय ने साम्प्रकाषिकता एवं वातिवाद की बाह्न में देगा एवं सून कराके बोट की राज्योति करने वाले नेतावों पर बड़ा तीसा प्रशास किया है। किवता की सापा एकदम समाट एवं सीधी है। "साथियों । महीनों से आप की
पगार स्की हुई है
मालिकान दरख्वास्त हजम करते जा रहे हैं
आप कांके पर कांके कर रहे हो
अब उनकी कोठियों का बेराव
करने के अलावा और कोई वारा नहीं ।" - 'जंगल का दर्द' - पू0 17,
सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ।

"सुलगती जाम जब नाठियों में उतर वायेगी

उनकी बन्द्रक की हुकूमत धरी रह जायेगी ।" -"मिद्दी बोलती है" पू0 85,

यद्यपि जिम्ब विधान की असमर्थता एवं असफलता को ध्यान में रखकर ही 1960 के बाद की कविता में सपाटबयानी का प्रयोग आरम्भ हुआ था, लेकिन बन्तत: वह भी न्यूनताओं से सम्पृक्त हो गयी। "युवा कवियों ने कविता को जिम्ब से मुक्त कर सपाटबयानी की और उन्मुख किया, किन्तु यह जन्दी ही सतही एवं यान्त्रिक बढ़ान का पर्याय बन गयी है और समकालीन यथार्थ का बड़ा खबबोध बढ़ान उसके माध्यम से हो रहा है।"

सपाट बयानी का झबसे बड़ा दुष्परिणाम यह हुता कि कियता में बनावह यह वर्णनों की भीड़ मच-गयी । चह बिना रौक टौक कितनी भी लम्बी होने के लिए स्वतन्त्र हो गयी और कोई दूछ भी लिख कर अपने को किय कहने की क्रिक्ति में बा गया। जिस सपाट बयानी का प्रयोग कियदा की बीवन्त बनाने और परिवेश को

I- अयोक वाजरेयी - फिल्हाल = प्र0-1 X=1

पूरी सच्चाई और सफ्टता से प्रस्तुत करने के लिए किया गया था, उसे कुछ कवियों ने एक सतहे वक्तक्य के स्तर तक गिरा दिया। सुधीर पचौरी के शब्दों में "बिधकांश किवलाओं का क्रजी कुल जीत स्वयं किव ही लगता है। वह अधिकांश में यथार्थ जीवन के जिटल दूरयों को प्रस्तुत करने की जगह वस्तुरिस्थित के प्रति अपनी तात्कालिक प्रतिक्रिया और मन पर पढ़े प्रभावों के उपरी रंगों को अभिक्यक्त करता है। नतीजा यह होता है कि कहीं हमें बक्तक्य + ही + वक्तक्य मिलते हैं, और कहीं आत्म निवेदन + - + - बहुत कुछ वरण्य रोदन की सी स्थिति है यह। " यथा -

"एक दिन

चिड़चिड़े बच्चों को लिए दवासाने में सड़े सड़े

मुझे एकाएक लगा में क्येड़ हो गया

न गलाबन्द कोट

न दुपद्टा

न टोपी

में बढ़ा हुता हा, हा, हू, हू करता हुता। " - 'बात्महत्या के विरुद्ध-'कविता 'यक अधेड़ भारतीय बात्मा' - रख्डीर सहाय।

वाकृतेश, विद्वांष एवं अस्वीकार वाली सपाटक्यानी अधिकाश वाकृतिशी युवा कवियों के यहाँ सङ्काजी एवं बढ़वीलेपन से युक्त हो गयी है। उसमें मम्भीरता का नितान्त बकाव है। वदा -

> "सुनो । मेरी कविता में उनकी मोत की सजा का ऐलान किया जा रहा है । बाज नहीं तो कल, कल नहीं तो परसों जोर हर देड़ पर लटकती मिलेगी - हिन्दुस्तानियों के मुखीलनियों की लाखें तोर इसके बाद भी कुछ कदना बाकी रह बाता है क्या ए" - वे हाथ होते.' पर 69. केम्सोकड़क

बहुत से कवियों के यहाँ सपाटबयानी सुबना के स्तर तक पहुँच गयी है। इसका कारण अपने परिवेश के प्रति कवियों के अनुभव का सतहापन है। जब अनुभव एवं समझ में गम्भीरता नहीं रहती तो वर्णन सुबनात्मक होता है विश्लेषणात्मक नहीं।

यह सत्य है कि सपाटक्यानी के स्तर में न्यूनतार्थे बाने लगी हैं। उसे क्लेक लोगों ने अपनी निर्देक वक्तक्यवाजी का साधन जनाते हुए, अपने किव होने का दावा के किया है। लेकिन सपाटक्यानी को विम्ब के विकस्प के स्प में अपनाने का उद्देश्य सकत रहा है, और आज भी उसकी उपयोगिता सुरक्षित है। समकालीन परिवेश की जटिलताजों को सच्चाई, व्यापकता एवं स्पष्टता के साथ प्रस्तृत करने की क्षमता सपाट क्यानी में ही है। सपाट क्यानी में आया दोष किवयों की अञ्चलता का परिचायक है सपाटक्यानी का नहीं।

## 4- नम्बी कविता : अभिन्यंत्रा की वावश्यकता :-

तम्बी कविदा" का नाम तेते ती विलोम परम्परा में छोटी कविदा" का विचार मन में अपने बाप सुनिरिक्त हो जाता है। काव्य संस्का के ये दो अभिक्षान वासुन्ति काव्यक्षास्त्र में क्रमक्ष प्रवन्ध ! इतिवृत्त ! एवं प्रगीत ! मुक्त ! काव्य स्पा के लिए प्रमुक्त हुए हैं। लेकिन प्रश्न उठता है कि कविदा की लम्बाई एवं छोटाई को केसे मापा जाय १ मात्र बाकार के विस्तार की माप के बाहार पर किसी वस्त्र की लम्बाई एवं छोटाई के निर्धारक गणितीय केमाने से, कविदा की सम्बाई एवं छोटाई है निर्धारक गणितीय केमाने से, कविदा की सम्बाई एवं छोटाई के निर्धारक गणितीय केमाने से, कविदा की सम्बाई एवं छोटाई है निर्धारक गणितीय केमाने से, कविदा की सम्बाई एवं छोटाई एवं ब्यारों का विस्तार नहीं रहता, बीक शव्यों एवं विचारों का गुम्मन भी होता है . जिसकी माप में मणितीय वैमाना क्षमाई है। वास्तविकता यह है कि सम्बी एवं छोटी कविता के मध्य विकारक देखा माम उनके तह वा दीर्ध स्मावन्छ ने वाकार पर

हीं नहीं सीची जा सकती। परमानन्द श्रीवास्तव के शब्दों में - "लम्बी कविताओं का रूप प्रधान नहीं है - प्रधानता उस सन्दर्भ की है, उस ऐतिहासिक, सामाजिक संक्रमण के अपरिहार्य दबाव की है, कथ्य के जटिल विस्तार की है, जिसके एक सन्दर्भ दूसरे से जटिल रूप में अभिन्न हैं।"

'नम्बी कविता'पर्व 'छौटी कविता' के अन्तर की स्पष्ट करते हुए डाँठ नामवर सिंह ने लिखा है : " यह बन्तर वैवल बाकार का नहीं है ! ---छोटी कविता एवं सम्बी कविता में दो काव्य सिद्धान्तों का बन्ता है। छोटी कविता मुनत: प्रगीत कविता है. जबिक लम्बी कविता नाटकीय कविता है। नाटकीय कचिता बरस्त द्वारा निर्मित कार्य का बन्करण सिद्धान्त' - पर आधारित है। जबिक प्रगीत कविता में सारा बन वनविन्तन पर होता है। छोटी कविता के निष किसी विषयवस्त का होना बावस्यक नहीं है। विषयवस्त निहायत मामूली -सी कोई बीज हो सकती है। किन्तु प्रगीत का कवि उस वस्तु का अनुकरण करने के लिए बाध्य नहीं है । प्रगीत कविता न अनुकरणात्मक है, न वर्णनात्मक और न क्यात्मक । इसके मूल में अनुचिन्तन एवं बनुक्रीत की प्रधानता है। "2 छोटी कविता में भावात्मकता की प्रधानता होती है, जबकि बम्बी कविता में विचार प्रधान होते हैं। लम्बी कविता विचारों के बंदिल विस्तार एवं तनाव की कविता है और प्रगीत या होटी कविता विवारों के संबन्त की कविता है। शब क्षणिक पर्व लहु होते हैं, जबकि विचार तार्विक, प्रदीर्ध एवं तनाव मुक्त होते हैं। तम्बी कविता के निर सर्वनात्मक तनाव की बावरमकता पर का देते हुए गरेन्द्र मोहन ने लिखा है - " कनुषव एवं विवास

<sup>!-</sup> डी परमानम्ब बीवर्स्स्त :-विन्दी क्लिसा 1960 वे बाद, क् 12, सं हाका -देव बुगार

<sup>2-</sup> विता के नवे प्रतिमान - पूठ 142, डॉंंग नामकर सिंह ।

के नगातार दबाव से या किसी विधायक विश्व या स्थव की नगातार केन्द्रीय रिधित से ही सर्जनात्मक तनाव निष्यान्न होता है। इसके जिना नम्बी कविता की धुउसकी संरक्ता वाहे कितनी बराजक होई कम्मणा नहीं की जा सकती।" क्येंक्ववंशी ने की लम्बी कविता के लिए सुजनारमक सनाव की वावस्थकता पर कर दिया है - "वाधुनिक यूगीन नम्बी कविता की मुन्धारमा प्रगीतास्थकता के विश्व विवासास्थक प्रशान्ति में, सुजनारमक तनाव की उपज है। इसी कारण उसमें बड़े कार्य के प्रबन्धारमक तत्त्व भी सिष्मिनित हो वाते हैं। एक तम्बी कविता विवास्थत समाव के सत्त्व नम्बे क्रम से कई बेठकों में भी सृजित हो सकती है, उसके लिए क्षम के तीव्र कावावेश की शर्त जन्मी नहीं है।"2

विन्दी में निराला की राम की सकत बूजा' एवं पन्त की घरितर्तन'
वे दोनों कितायें लम्बी किता के प्रारम्भिक उदाहरण हैं। नेकिन राम की सितत
पूजा' प्रवन्धारमकता, हित्त्वरतारमकता या कार्यमा के बोध से बोधिन है, जबकि
"परितर्तन' किता हक मारें दवाकों से मुक्त है। ठाँठ नरेन्द्र मोहन के सक्दों में -"प्रारम्भ में सम्बी कितायों महाकारमारमक संग्राजों से सम्बद्ध होकर है राम की सितत
पूजा है बार्यमन यह बीज्ञ्चल का सहारण केन्द्र जिता हुई थीं। हा, परिवर्तन
पूजा है बार्यमन यह बीज्ञ्चल का सहारण केन्द्र जीवत हुई थीं। हा, परिवर्तन
पूजा है बार्यमन यह बीज्ञ्चल का सहारण केन्द्र जीवत हुई थीं। हा, परिवर्तन
पूजा है बार्यमन यह बीज्ञ्चल का सहारण केन्द्र जीवत हुई थीं। हा, परिवर्तन
पूजा है वार्यमन सम्बन्धी कार्यमा को वार्यमन यह बीज्ञ्चल का सहारण
लिए किन्त विश्वर्तन सम्बन्धी कार्यमा को वार्यमपूर्व हंग से किन्द्राहमक रूप में बीचक्यक

<sup>!-</sup> बिवार की देवारिक श्रीम - पूछ कर, सरेन्द्र मोक्न । 2- बनकेल्ली : नम्बी बिक्सा का उपना विवास श्रेष्ठ । 15. की नरेन्द्र मोहन ।

करती है। यह कविता काल क्रम की दृष्टि से ही नहीं वपनै विज्यास की दृष्टि से भी हिन्दी की पहली लम्बी कविता मानी जा सकती है।"

सन 1960 के बाद छोटी एवं बड़ी दौनों प्रकार की कविताएँ लिखी जाती रही है. लेकिन इस दौर की लम्बी कविलाएँ अपेक्षाकृत अधिक सहावत एवं प्रभावीत्पादक हैं। साठौरतर कवियों ने बम्बी कविता की बड़ी दहता एवं तत्परता से स्वीकार किया है। वैसा करना उनकी आवश्यकता एवं बाध्यता रही है। लम्बी कविता की कार्या प्रक्रिक की, जिले हारा ये कवि व्यवस्था की विसंगतियों के प्रति वर्गे विद्रोह, बाक्रोब, बस्वीकार, बोखनाइट, तनाव बादि जटिल भावों को व्यक्त कर सकते थे. क्योंकि छोटी कविता इन तमाम विचारों एवं मनोभावों को अपनी सीमित शक्ति के कारण दोने में असमर्थ थी तथा चरित्रों एवं शास्यानों के द्वारा विस्तार एवं क्लात्मकता के साथ कंडरम्बरिक विचारों को क्यक्त करने वाला काव्य का सामन्ती माध्यम प्रबन्धान - तो बाधनिक एवं जिटल विचारी वे बन्छल था और नन्ती इन कवियों की स्टि किथंसक वेतना से मेन खाता था। "सम्बी कविता वस्ता: बाधीनक यूगीन स्थितियों की सिनवार्यता की उपज है. जो प्रवन्धारमक काव्य रूप वे विकास स्वरूप अस्तित्व में वायी है। बनुष्य बताता है कि ज्यों -ज्यों बाहिनक मानसिकता किसित होती गयी. त्यों-स्यों इसके दबाब से हिन्दी साहित्य में प्रबन्ध काच्य के चरित्र में तात्तिक दुष्टि से दील बाती नयी +"2

<sup>।-</sup>जनदेवर्वाः नम्बी विवता का रक्ताः विद्यान,पूर्वः ग्रंड, सैठ नरेन्द्र मोहन । 2- - वहीं + पूठ 162 + 63, सैठ नरेन्द्र मोहन ।

'जात्महत्या के विसद' यह रख्नीर सहाय की एक बन्डी वैदारिक किता है। 2 फिल्में देव के राजनीतिक एवं सामाजिक सन्दर्भों को पहचानने का प्रयास किया मया है। इस कविता में देव के वाम वादमी की पीढ़ा निहित है। "पूरी किता के केन्द्र में उनता या लीग है, जो हर अर्थ में कित के लिए मुश्किल है। "5 'वात्महत्या' के विसद', की लय में मेंद मंगरता नहीं, जी का आदेश में हाफते हुए स्वार की स्वरा है - इसी किए एक वाक्य जैसे दूसरे वाक्य के मौतह खुवा हुवा, जीसरे वाक्य को जाने की जीर धक्का देवा हुवा मुतीत होता है। इस कविता की संरच - नात्मक सक्तेता का क्यानुकृति की स्विक्त और काव्य कम्य की उर्जी का मुत्तिकित्य है। "" पूरी किता क्ष्रंक्य के वैनेषन है मुक्त है।

<sup>।-</sup> नयी कविता : उडुम्ब और विकास, पूर्व 236 रामवनगराय।

<sup>2-</sup> वात्महत्वा वे विस्ट वाच्य सीत - राष्ट्रीर सराय ।

<sup>3-</sup> नवी कवितार्थ एक सक्ष्य - पूछ 46, ठाँठ रामखस्य बहुवैंदी ।

<sup>4-</sup> कविता वे नये प्रतिमान - पूर्व 155 , ठाँव नामकर विके 1

कुमान अली : साठौरतर दौर की यह एक महत्वपूर्ण लम्बी कविता है, जिसके रचियता सीमित्र मीहन हैं। यह कविता कुमान बनी के विचारी एवं कृत्यी के इर्द गिर्द घुमती है। इस कविता में कुकमान अभी एक बौना एवं विद्वकनुमा पात्र है। अपने इसी पात्र के सहारे सौमित्र मौहन ने जीवन एवं परिवेश की जीटलतावों. विसंगतियों तथा विडम्बनावीं की प्रस्तुत किया है। लुक्मान बनी एक सामान्य आदमी का प्रतीक है और उसकी सारी पीडायें जनसामान्य की पीडायें हैं। इस क्रिकें में सीमिंब मेहिन ने सामाजिक एवं राजनीतिक विसंगतियों एवं बन्तविरोधी कें उद्घाटन के लिए व्यंग्य, एवं अस्तील सब्दों का प्योग किया है। "सामस्ती तथा बुर्जुवा समाज की जगरी मद्रता, शिष्टता, संस्कार, मर्यादा, श्लीलता और गरिमा के यहाँ दक्डे कर दिये गये हैं। पाठक के मन में इस समूची पर पीड़क सभ्यता और संस्कृति के विरुद्ध क्ष्मा पेदा करने के लिए सोमिन मोहन कविता में 'असंस्कृतिकरण' अवता अहलीलीकरण को एक बस्त्र के रूप में इस्तेमाल करते हैं। ----राज्यम्ल के मृष्कित प्रसंग में जो भाषा का नंगापन दिखायी देता है वह यहाँ बरमसीमा पर पहुँच जाता है। इसीनिए क्रमान करी 'में भारतीय जीवन पदिं उसकी राव -नीति उसकी संस्कृति पर्व सभ्यता का पूर्व अनावरण सम्बद्ध हो सका है।" मुक्ति व्रसंग : राज्यमन वीधरी की यह एक प्रस्ताकार सम्बी कविता है । इस कविता की भूमिका के और "में व्यक्ति राज्यक बोधरी और में लेख राज्यक बोधरी इन दोनों में कोई क्रमाद या विक्रेद नहीं है। ---- जिनी विदा और मुखा - - - - - इस विदिता के मुलगत कारण है । \* है से स्वष्ट हों जाता है कि

<sup>। -</sup> सम्कानीन कविता की भूमिका - पृ० 53-54, विश्वम्बरनाथ उपाध्याय । १- मृक्ति प्रसंग - पृ० 4 कवि वक्तच्य -

यह किवता राज्यमन बौधरी की मुम्ना एवं जिजीविका का दस्तावेज है। उन्होंने अपने जीवन की निजी जिटलताओं एवं तनावों के माध्यम से इस किवता में पूरे परिवेश की जिटलता एवं तनाव को व्यक्त किया है। इस किवता में राज्यमन बौधरी ने अपनी बीमारी का देर सारा दूश्य प्रस्तुत किया है। जिसकी और संकेत करते हुए विश्वमन्त्रनाथ उपाध्याय ने लिखा है - "मुक्ति प्रसंग में राज्यमन की ही बीमारी नहीं, समस्त कावत देश की बीमारी चित्रित है।" उन्होंने क्यनी बीमारी विजित है।"

"लेकिन मेरा देश, मेरा बेट, मेरा ब्लब्बर, मेरी जीतिंड्या सुलने से पहले सर्जन की यह जान लेना होगा हर जगह नहीं है, जल जबवा रक्त जबवा मांस जबवा मिट्टी केवल हवा, कीड़े, जहम और गैंदे पनाले हैं अधिक स्थानों पर इस देश में जहां सड़क पट गयी है नसे वहां हवा तक नहीं जपर की रचना चीरने पर जाग नहीं निकलेगी, नहीं खुड़ां जरराहिन दाहानल

सब कुत गये जवानक बहने पन्द्रह जगस्त की बहनी रात के बाद बब राख ही रास बबी है पीना मदाद।" - मुक्ति प्रसंग - पू0 14

इस इकार मुक्ति प्रसंग कविता से इटकर पतनकीन राजनीति की कविता है। \*2

पटक्या : यह धूमिन की नम्बी कविता है। इसमें स्वतन्त्र कारत की त्रासदे कथा है। यह स्वतन्त्रता के प्रति मोधकेन का प्रामाणिक नेसा जोसा है। इस किता में धूमिन में स्वतंत्रता के बाद के बाम बुनावों के नाटक, राजकीति की पतनसीनता,

<sup>!-</sup> सकालीम साहित्य वर्ष सिद्धान्त - पू० । १। विश्व न्यान्य वाष्ट्याय । 2- नम्बी कवितालों का रक्ता विधान - पू० । २०, ठाँ० रमेव कुन्तन मेस । 3- संसद से सङ्ग तम - पू० १८६ तम - धुमिल ।

भारत - पाक एवं भारत - चीन युद्ध, लाल बहादुर शास्त्री की मृत्यु तथा राजनीतिक एवं आर्थिक विसंगतियों के मध्य जूबली जनता की बदहाली को बड़े बेबाक दंग से पेश किया है। सम्पूर्ण किवता परिवेश की जिटलताओं एवं विडम्बनाओं को पेश करने वाली सपाटबयानी है, जो स्थंग्य एवं मुहावरों से युक्त है। यथा -

समीक्षात्मक परिचय दे पाना यहाँ सम्बद्ध नहीं है। इस दौर की लम्बी कविताओं में सर्वेड्डवर इसका बूबमेना की 'कुबानो नदी', राजेश जोशी की 'सलीम और में और उनस्क का साल', मिक्कूबर की 'सल्ड-सम्ड-पास्म्मड पर्व', लीलाक्षर ज्यूड़ी की 'कलदेवखिक वलदेव वंशी की 'उपनगर में वापसी', नीलाम की 'संस्मरणारम्म', विनोद शुक्त की 'लगमग जयहिन्द', और रामदस्म-िम्म की 'फिर वहीं लोग' प्रमुख हैं।

## 5- व्यंग्य दिसंगतियाँ की उपज :

हिन्दी समीक्षा में 'ब्याग्य' शब्द का प्रयोग पाश्चात्य समीक्षा के 'सेटायर' शब्द के क्यांच के रूप में किया गया है। 'ब्याग्य' शब्द ताना, बोली, चूटकी बादि त्याँ का वाहक है। व्याग्य, सबद का वह गृह वर्ष है, जो उसकी व्यंजनावृत्ति हारा निकलता है। व्याग्य, विवारों की साहित्यिक अभिव्यक्ति की एक प्रणाली है, जिलमें उपहास, कटाक्ष, हास्य, उक्तिव्यक्ता आदि के सहारे किसी व्यक्ति, व्यवस्था या संस्था की अनेतिकता एवं दुर्गुनों पर प्रहार किया जाता है। औठ वीरेन्द्र मेंहदी रत्ता के सब्दों में — "व्यंग्य मानव तथा जनत की मूर्बताओं तथा अनाचारों को प्रकाश में नाकर उनके उपहास्य अथवा घृणोत्पादक स्प पर जालोकनात्मक ग्रहार करने में समर्थ एक साहित्यिक अभिव्यक्ति है। व्यापक दृष्टि से देखा जाय तो सम्पूर्ण साहित्यिक वाकृष्य की व्यंग्य की संज्ञा दी जा सकती है।"2

प0 निकल का मत है कि क्यांग्य लोकिकता या शीतिकता के विरुद्ध आकृति का शांव है। दया करका एवं उदारता का उसमें अशांव रहता है। वह क्यांकित पर कहा तीका प्रहार करता है। वह क्यांने कर हो सकता है कि उसमें हास्य का लेख की को हो। वह क्यांग कर हो सकता है कि उसमें हास्य का लेख की को है। विरुद्ध होता, उपहास, ककृतिता, कटाक्ष तथा वा ग्योदगरूय – मिकित क्या क्यांगी है। जिसने द्वारा साहित्यकार, गद्धात्मक या काव्यात्मक दंग के को परिवेश की विस्तातियों के हित क्यांगी करिय, बाकृति, बस्तीकार, विरोध, रोष, विद्वाद बाहि को क्यांगी करिय के स्वाद करता है। जब साहित्यकार की केता की संगति वपने परिवेश के स्वादिक को बाही की बाहति तो उसने मन में बाहति, रोष, विद्वाद, सेतास आहि साह का कार्य की बाहते तो उसने मन में बाहति, रोष, विद्वाद, सेतास आहि साह कार्य की केता की स्वाद करने वाली शांचा या

I- सीक्षण हिन्दी शब्द सागर - पृ० 931, सेo रामवन्द्र वर्मा

<sup>2-</sup> बाधुनिक हिन्दी साहित्य में क्येंग्य - पूर्व 15, डाँठ मेंहदी रस्ता ।

<sup>3-</sup> साठोत्तरी हिन्दी विवता - परिवर्तित दिखाएँ, पू० 181 , विजय कुमार ।

कथन रेली में बक्रता एवं विदम्बता जा जाती है और यही क्यंग्य की स्थिति होती है।

व्यंग्य हिन्दी किवता के लिए कौई नयी बीज नहीं है। सिद्धीं नाथीं की किवताओं, कबीर की साथी तथा सूर के अगर गीत में इसका सकत प्रयोग देखा जा सकता है। हिन्दी की जादि कालीन किवता से लेकर समकालीन किवता तक व्यंग्य की परम्परा विद्यमानहें। जहाँ तक साठौरतरी किवता की जात है तो उसमें निवित क्यंक्य पूर्वकांबीय किवता की विद्या काणी तीसा पर्व बहुआयामी है। व्यंग्यात्मकता इस दौर की किवता की एक विशेषता है। साठौरतरी किवता का व्यंग्य परिवेशगत विसंगतियों की उपज होने के साथ-साथ किवयों के लिए एक कलागत जावश्यकता भी है। विजय कुमार के सक्दों में — "कई किवयों के सहा" व्यंग्य इसलिए भी है, क्योंकि भाषा में जिस समाटक्यानी पर जौर दिया जा रहा था, उसमें नाटकीय प्रभाव पेदा करने के लिए वक्नी कित या विक्रयक्ता बीध का होना बावश्यक था। "

साठोत्सी किता के अन्तर्गत नागाईन की किता में जो व्यंग्य, कुता या विक्रम्बनाओं है, वह बड़बोनेपन से रिहत, किन्तु तीसेपन से युक्त है। किना क्रंबनाहट यूर्व रोष के वे अपनी बात की क्यंग्यात्मक हंग से बड़ी सहजता के साथ प्रस्तुत करते हैं। नेहरू के वासन यह क्रुबा, बहुबा, क्यंग्यात्मक स्पाट बयान कुछ इस प्रकार है:

"मेक्बा पहनते जब्दकारा नर्गदा किनारे कर जाते. डाम हो जाते राज्यपान लोडिया जेन में कर खाते। मौपालन होते नजरबन्द राजाजी माथा बुद्धाते, जनसंबों बंदन जिहारी जी किया की बोली केनाते.

<sup>।-</sup> साठीत्तरी विन्दी कविता : परिवर्तित विद्यार्थ , पू० 181 , विन्य कुमार ।

वौड़ा होता कुछ भान और, तुम रह जाते दस साल और ।।

भिन वाले होते सौसनिस्ट, धनपित्यों को लेनिन भाता,

माजी बाकर मिलता तुमसे पेकिंग दिस्ती से शरमाता ।।" - नागार्जुन : कुनी हुई रचनायें भाग दो, पूठ 163-64

अपनी 'काली मार्ड' कविता में नागार्जुन ने डिन्दरा गांधी पर व्यंग्य करते हुए जिसा है:

"कितना सून पिया है जाती नहीं सुमारी ।
"हुई जीर केंग्बी है महया जीक तुम्हारी ।
कुछमान के लिए गरी कों पर निगाह है
धनपतियों के लिए दया की सूनी राह है। - "प्यासी प्रश्राई वार्ध पूठ 36, नागार्जुन ।

नागार्जुन के ट्यांग्य की धार बड़ी तीखी है। वे अपने क्यांग्य के माध्यम से शीषकों के उपर उतनी ही बेरहमी से प्रहार करते हैं, जितनी बेरहमी से वे अनता का शोषण करते हैं। उनके सारे क्यांग्य प्राय: राजनीतिक व्यवस्था पर है। वे सामाजिक वर्ष आर्थिक विस्मितियों को भी राजनीति से अन्य करके नहीं देखते, क्यों कि राजनीति का ही हर जगह दक्त है। नागार्जुन की कविताओं के नाम भी प्राय: क्यांग्यात्मक हैं। यथा - काली मार्ड, कब होंगी इनकी दीवाली, हजार-हजार बाहों वाली, वे उन्दर से बांस करेंगे, आदि।

वेदारनाथ अप्रवास की 'मार स्थार की थाएँ' तथा 'कहें केदार खरी-खरी' काव्य संग्रह की कविताओं में क्येंस्य की मरमार है। राज्येताओं की भाष्णवाजी पर व्यंस्य करते हुए केदारनाथ अप्रवास ने लिखा है:

"देश में तभी वाम की नक्षाणी नेता तब्दों से बुझाते हैं वाम्बारा से उसर की उर्वर और देश की आत्मिनर्भर बनाते हैं लोकतन्त्र का शासन भाषणतन्त्र से चलाते है । - मार प्यार की थापें - पृ० 26

अपनी 'नेता' किवता में नेताओं पर तीखा व्यंग्य करते हुए बड़े सहज दंग से कहते हैं:

"तुम्हारे पाँव देवताओं के पाँव है जो जमीन पर नहीं पड़ते हम वन्दना करते हैं तुम्हारी नेता।" - कहें कैदार खरी खरी', पृठ 142

रघुवीर सहाय की कविता में जो व्यंग्य है वह परिस्थितिजन्य करणा के भाव से जोत-प्रोत है। मध्य वर्गीय जीवन की पीड़ा, विवशता एवं दैन्य को व्यक्त करने वाली उनकी व्यंग्यात्मकता का निम्न उदाहरण काफी मार्मिक है:

"घर में सब कुछ है जो औरतों की वाहिए
सीलन भी और अन्दर की कौठरी में पाँच सेर सौना भी,
और सन्तान भी जिसका जिगर बढ़ गया है
जिसे वह मासिक पत्रिकाओं पर हगाया करती हैं
और जमीन भी जिस पर हिन्दी भवन बनेगा।" - 'आत्महत्या के विस्द'
पृ० 43

केदारनाथ सिंह ने "दो मिनट का मोन" किवता में वर्तमान शासन पर तीसा व्यंग्य किया है, जो अपने वायदों एवं शब्दों के माध्यम से जनता को गुमराह करता है और अपनी विगत असफलताओं पर परदा डालता रहता है। इस किवता का शीर्फ अपने आप में व्यंग्यात्सक है:

"इस महान शताब्दी पर इस महान शताब्दी के महान इरादी पर महान शब्दी

और महान वायदों पर दो मिनट का मौन।" - 'यहाँ से देखो', पृ० 15 सर्वेश्वर दयाल सक्सेना ने निम्न किवता में देश की प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था पर तीखा हमला किया है। अपनी व्यंग्यात्मक भाषा के माध्यम से उन्होंने इस व्यवस्था की असलियत को पूरी सच्चाई से खोला है। उनकी दृष्टि में यह तन्त्र दोंग एवं विश्वासद्यात से युक्त है। प्रजातन्त्र तो 'लाठी में लटके जूते की तरह है:

"स्रॉकियाँ निकलती है दोंग की विश्वासद्यात की बदबू आती है हर बार एक मरी बात की लौकतन्त्र को जूते की तरह लाठी में लटकाये भागे जा रहे सभी सीना फुनुये ।" - 'गर्म हवाएँ - पृ० 17

देश में घटने वाली दुर्घटना, एवं बदहाली का मूल कारण स्वयं होते हुए भी दूसरे तत्वों को उसके लिए उंत्तरदायी ठहराने की शासन की प्रवृत्ति पर ब्यंग्य करते हुए अस्ण कमल लिखते हैं:

> "सरकार ने कहा कारखाने में गोली चली उसमें ट्रेड यूनियन का हाथ है मारे गये मुसहर उसमें भी किसान सभाजों का हाथ है

विद्यार्थियों के हंगामों में छात्र संगठनों का हाथ है और राज्य में जो गड़बड़ी है सब में कम्युनिस्टों का हाथ है हुजूर ने ठीक फरमाया इस दुनिया के पीछे भी ईश्वर का हाथ है।" -'अपनी केवल धार', पृ० 29, अस्म कमल ।

गोरस पाण्डेय, साम्प्रदायिकता एवं जातीयता के अधार पर सून,कल या दंगा कराके वोट की राजनीति करने वाले राजनेताओं पर तीसा व्यंग्य करते हुए लिस्ते हैं:

"इस बार दंगा बहुत बड़ा था

सूब हुई थी सून की बारिश

का काले साल बच्छी होगी

#### 3 Table 1

मतदान की !" - 'जागते रही सीने वालों '- पृ० 3, दंगा, गोरख पाण्डेय। साठोत्तर कृतियों में धूमिल का व्यंग्य अपेक्षाकृत अधिक तीखा है। उनके व्यंग्य में उनका परिवेश सारी विसंगतियों के साथ उपस्थित दिखायी पड़ता है। व्यंग्य के पैनेपन के चलते उनकी भाषा चुस्त एवं मुहावरेदार हो गयी है। धूमिल की कविता मोचीराम में व्यंग्य की तीक्ष्णता बड़ी आकर्षक है:

"बाबू जी ! सव कहूँ - मेरी निगाह मैं न कोई छोटा है न कोई बड़ा है मेरे लिए हर खादमी एक जोड़ी जूता है जो मेरे सामने धूमिल ने अपने काट्य संगृह कल सुनना मुझे में देश की बदहाली पर व्यंग्य करते हुए कहा है:

"प्रेम में असपल छात्रायें
अध्यापिकाएं बन गयी हैं
और रिटायर्ड बूढ़ें
सर्वोदयी
आदमी की सबसे अच्छी नस्ल
युद्धों में नष्ट हो गयी
देश का सबसे अच्छा स्वास्थ्य
विद्यालयों में
संकृपक रोग से ग्रस्त है।" -'कल सुनना मुझे' - पृ० 29, एक कविता:
बुछ सूचनाएँ।

ज्यूड़ी ने भी धूमिल की ही तरह सूक्ति रचना एवं मुहावरेबाजी के माध्यम से अपने व्यांग्यों में पेनापन लाने का प्रयास किया है। उनके काव्य संग्रह - नाटक जारी है, तथा रात अभी मौजूद है - की किताओं में प्राय: व्यंग्यात्मकता विद्यमान है। नेताओं की गतिविधि पर व्यंग्य करते हुए लीलाधर ज्यूड़ी ने लिखा है:

"नेता इस देश का सही तर्क है
जहाँ पर सब का बेड़ा गर्क है वह महान है
उसके कन्धे पर देश है
और जेब मैं कोई केश है
उसकी एक ही आदत है
कि आज भी और कल भी उनका कहीं स्वागत है
उनके सभी काम देश के काम है

देश का पेशाब करते हैं
वे देश का क्या नहीं करते १
सिक्का बदल बदल कर देश का सही हिसाब करते हैं। " - 'नाटक जारी है'
पू० 97, लीलाधर ज्युड़ी

इस प्रजातन्त्रात्मक व्यवस्था में नेता वर्ग किस तरह से पूँजीवादी शक्तियों से हाथ मिलाये हुए हैं तथा संसद तक किस तरह पूँजीपितयों का प्रवेश है - इसी तथ्य को व्यंग्यात्मक शैली में व्यक्त करते हुए उदय प्रकाश कहते हैं:

"महापुरुष की धोती का

एक छोर

नगर सेठ की तिजोरी में है

दूसरा संसद की कुर्सी में ।" - 'सूनो कारीगर' पृ० ७। ,उदय प्रकाश ।

निष्कर्षत: व्यंग्य साठौरतरी किंतता की भाषा की एक अनिवार्य विशेषता
है । भाषा की व्यंग्यात्मकता ने परिवेश की विसंगतियों को प्रभावपूर्ण दंग से बयान करने में किंतियों को पूरा सहयोग दिया है ।

### उपसंह र

विद्रोह किसी ब्यवस्था को अस्वीकार करने तथा उसे नष्ट करने की मन: -स्थिति का क्रियात्मक रूप है। किसी व्यवस्था में विद्यमान अनैतिकता, अतार्किकता एवं अनुपयुक्तता के कारण. उस व्यवस्था के पृति मन में असन्तोष उत्पन्न होता है और उससे मोहभग हो जाता है। अत: व्यक्ति उस व्यवस्था को अस्वीकार करने. उसे नष्ट करने तथा उसके स्थान पर एक नयी व्यवस्था स्थापित करने का मन बनाता है। यही मन: स्थिति विद्रोह का सक्ष्म एवं अव्यक्त रूप है। जब इसका प्रस्पटन गितिविधि या क्याविधि के रूप में होता है,तो विद्रोह मूर्त रूप धारण करता है। विद्रोह की मन: स्थिति साहित्य. भाषण. सरास्त्र संघर्ष उपदि किसी भी रूप में पकट हो सकती है। विद्रोह-अक्शिश, प्रतिक्यि एवं क्रान्ति से भिन्न है। आक्रोश विकाप तत्त्व के पृति एक प्रकार की इंक्लाहट एवं बड़बड़ाहट है, जबिक विद्रोह अक्रिक तक को उसाड़ फेक्ने की कार्यवाही है। 'प्रतिक्रिया' किसी कार्य का उत्टा कार्य' या किसी कार्य के 'विषरीत कार्य' है, लेकिन विद्रोह अनोवित्य के शाधार पर किसी कार्य या कार्यप्रणाली की नष्ट करके उसके स्थान पर औन्वित्या -धारित कार्यप्रणाली की स्थापना का प्रयास है। विद्रोह किसी व्यवस्था में उत्पन्न होती रहने वाली अलंगितयों के विरुद्ध निरंतर काने वाली प्रक्रिया है, जबकि क्रान्ति किसी व्यवस्था में बामूल परिवर्तन है।

विद्रोह के दो कारण होते हैं - आन्तरिक एवं बाह्य। दोनों कारणों के पार स्परिक संयोग एवं सहयोग के बिना विद्रोह सम्भव नहीं होता है। बाह्य कारण से तात्पर्य राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक सांस्कृतिक विसंगतियों से है, जबिक आर्थित कारण से तात्पर्य व्यक्ति की वैचारिक प्रगतिशीलता से है, जिसे आधुनिक

बोध, परिवेश बोध या वर्तमान बोध भी कह सकते हैं। जिना वैचारिक प्रगतिशीलता के व्यक्ति किसी भी विसंगति के विरुद्ध विद्रोह नहीं कर सकता। विद्रोह की सार्थकता उसके बहुजन हिताय या नोकमंगलकारी होने में है। स्वाधिप्रीरत विद्रोह तो अराजकता एवं उच्छेखलता है। साहित्य या किवता में निहित विद्रोह वैवारिक होता है। यह जलग बात है कि सशस्त्र विद्रोह के लिए वह प्रेरणा स्रोत बन जाय। साहित्य में विद्रोह की अभिव्यक्ति 'यथाधीवत्रण', 'अस्वीकार की भावना', 'विध्वंस की उत्तेजना', एवं 'नविनमणि की प्रेरणा' के रूप में होती है।

हिन्दी अविता में प्रगतिशील विवारों का प्रस्कृत सर्वप्रथम सिद्धीं एवं नाथों की अविता में हुआ है और यही कारण है कि हमें हिन्दी अविता में विद्धींह का स्वर भी सर्वप्रथम सिद्धीं एवं नाथों की अविता में ही सुनाई पड़ता है। इन कवियों का विद्धींह तत्कालीन समाज में व्याप्त धार्मिक-आडम्बर, ब्राह्मणवाद, ब्रुआ-कृत एवं वर्ण-मेंद सेंक ही सीमित है।

दक्षिण भारत में आलवार भक्तों द्वारा शुरू किये गये भिक्त - आन्दोलन का स्वर भी विद्रोही है। उसने भिक्त एवं साधना के स्तर पर जाति-भेद एवं स्त्री - पुरूषणत अन्तर के विरुद्ध आवाज उठाई है। रामानन्द के नेतृत्व में उत्तर भारत में आकर यह भिक्त आन्दोलन अपेक्षाकृत अधिक विद्रोही हो गया है। हिन्दी अक्ति-काव्य रामानन्द के भीक्त-आन्दोलन की देन है। हिन्दी भिक्त काव्य में धार्मिक - आडम्बर, जातिगत भेद-भाव, स्त्रियों पर थोपी जाने वाली सोखली मर्यादाओं के विरुद्ध विद्रोह विद्यमान है। उसका यह विद्रोह मात्र भिक्त एवं उपासना के स्तर तक ही सीमित नहीं है, बिरूक वह सामाजिक स्तर तक व्याप्त है। कबीर एवं मीरा के काव्य में विद्रोह का स्वर प्रसर एवं मुखर है, जबिक वह सूर एवं तुलसी की कविताओं

में प्रच्छन्न है। रीतिकालीन किवता में विद्रोही स्वर लुप्त है। इसका कारण, किवयों का सामन्ती मूल्यों के पोषकों के आश्वित हो जाना है। वीर रस की किवताएँ प्रशस्ति परक हैं, विद्रोह परक नहीं। रीतिमुक्त किवयों का विद्रोह प्रणय स्वच्छन्दता की सुविधा तक है और उसमें वेदना एवं पीड़ा की अधिकता है।

विद्रोह का जो स्वर रीतिकाल में लुप्त हो गया था. वह पनजींगरण के प्रभाव के कारण आधुनिक हिन्दी कविता में जागृत हो उठा । पनर्जागरण का स्वर विद्रौही रहा है। धार्मिक-सामाजिक स्तर पर उसने हिन्दू धर्म एवं समाज की क्रीतियों के विरुद्ध विद्रोह किया है और राजनीतिक - अधिक स्तर पर उसका विद्रोह साग्राज्यवादी - पूँजीवादी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध रहा है। हिन्दी साहित्य का भारतेन्द्र युग, दिवेदी युग एवं छाबावाद पुनर्जागरण से प्रभावित है। उत: इन कुरों की कविताओं में उसके विद्रोही चिन्तन की साहित्यिक अभिव्यक्ति हुई है। भारतेंन्द्रकृगीन कविता में निहित राजनीतिक विद्रोह ब्रिटिश मुक्ट के प्रति भिक्त के कारण जारमभ में जन्तिरिधियस्त है। लेकिन जैसे-जैसे ब्रिटिश मुक्ट से मोहभा होता गया है, वेसे-वेसे विद्रोह स्पष्ट एवं तीखा होता गया है। द्विदी युगीन कविता में निहित राजनीतिक एवं आर्थिक विद्रोह उस समय ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध वल रही अतंकवादी एवं उगवादी गीतविधियों के काले काफी तीखा है। आयावादी कविता में भी ब्रिटिश सत्ता के विरुद्ध विद्रोह है, लेकिन वह गांधी के सत्य-अहिंसा एवं सत्यागृह के प्रभाव के कारण कम मुखर है । भारतेन्द्र युगीन एवं द्विवेदी युगीन कविता में धार्मिक एवं सामाजिक रुद्धियों के विरुद्ध किया गया विद्रोह सुधारात्मक एवं सामृहिङ है, नैकिन छायावादी कविता का यह विद्रोह आमूल परिवर्तन की भावना एवं बहुत कुड वैयिक्तकता एवं स्वच्छन्दता की वैतना से युक्त है। छायावादी कविता में ब्रिटिश

अर्थतन्त्र के प्रति तो विद्रोह किया ही है, लेकिन इस युग के उत्तराई की कविताओं में किसी भी पूँजीवादी तन्त्र के द्वारा देश की जनता के किये जाने वाले शोषण के विरुद्ध भी विद्रोह के स्वर विद्यमान है। छायावाद के उत्तराई में पूँजीवादी अर्थतन्त्र के विरुद्ध पनपा विद्रोह प्रगतिवादी कविता का मुख्य स्वर बना है।

पुगतिवादी कविता मार्क्सवादी विन्तन से प्रभावित है। इस अविता ने शोका को सारी विसंगतियाँ --(राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक - सांस्कृतिक)की जड़ मानते हुए अपना विद्रोह प्रकट किया है। इस काव्यधारा का विद्रोह आमून -परिवर्तन की चेतना एवं सामृहिकता की भावना से युक्त है। प्रयोगवाद की अन्वादी का व्यक्षारा का विद्रोह जनसामान्य के हित की भावना से प्रेरित है, जबकि इसकी क्यिक्तवादी काव्यधारा का विद्रोह आत्मरक्षा एवं आत्महित की भावना से युक्त है। नयी किवता स्वातन्त्रयोत्तर किवता है। इसमें निहित विद्रोह राजनैतिक एवं क्या स्तर पर किसी विदेशी व्यवस्था के विरुद्ध न होकर स्वदेशी व्यवस्था के विरुद्ध है। बहाँ तक इस कविता के सामाजिक - सांस्कृतिक विद्रोह का प्रश्न है, तो वह भारतीय समाज एवं संस्कृति की परम्परागत रुद्यों के प्रति है। साठौत्तरी किता का विद्रोही चिन्तन नयी किता के विद्रोही चिन्तन का विकास है। नयी किवता का विद्रोह साठोत्सरी किवता की अपेक्षा कम प्रसर एवं मुसर है। इसका कारण, नयी कविता के की बहाँ में भारतीय व्यवस्था के प्रति मोह का कुछ- न - कुछ बना रहना है। जबकि साठोत्तर कवियों का मोह भारतीय व्यवस्था से पूर्णत: गंग हो गया है। सच्वाई यह है कि नयी किवता मैं जो विद्रोह क्समसा रहा था, वह साठो त्तरी कविता में अंगड़ाई लेने लगा है।

स्वतन्त्रता एवं स्वदेशी सत्ता से देश की जनता को बड़ी उम्मीद थी। लेकिन स्वतन्त्रता के बाद देश में स्थापित कांग्रेस सरकार ने जनता की उम्मीदों पर पानी फैर दिया। उसका समाजवाद का नारा, बस नारे तक ही सीमित रहा। जनता को देश में सगाजवादी सुधारों की एक अलक भी नहीं दिखाई पड़ी। न गरीबी का दृश्य बदला और न आर्थिक विषमता में कमी आयी । आर्थिक, राजनीतिक एवं सामाजिक न्याय की बात सैविधान की पौथी में दबी रही, उस पर अमल नहीं किया गया। भारतीय राजनीति का तेजी से वारित्रिक पतन हुआ। राजनीति का अपराधीकरण हुआ । घूसखोरी, कमीशनखोरी, घोटालेबाजी, दलबदल आदि जन -प्रतिनिधियों के वरित्र बन गये। फलत: सर्वत्र अराजकता एवं अन्याय की स्थिति उत्पन्न होती गयी और जनता को राजनीतिक एवं प्रशासनिक संस्थायें (संसद, संविधान, प्रजातन्त्र, समाजवाद, नेता, अधिकारी आदि)निरर्थक साबित हो गयी। गरीबी का गाम उपर उठता गया, आर्थिक विषमता की साई वौड़ी होती गयी और बेरोजगारों की में सहया बद्ती वली गयी। स्वतन्त्र होकर भी शोषित होते रहना जनता की नियति बनी रही । इन सारी जिटल परिस्थितियों के क्लते 1960 तक पहुँक्ते -पहुँको जनता का शासन से मोहभंग हो गया। उसने जहाँ मतदान के माध्यम से काँग्रेस को नकारना शुरू किया, वहीं उसने काँग्रेसी शासन के विरुद्ध विद्रोह एवं अन्दोलन भी शुरू किया। 1960 के बाद तो ऐसे बान्दोलनों की एक शूबला हीहै। जैसे 1967 का नक्सलबाड़ी किसान विद्वीह, 1973 का उठ प्रठ का पीठ पठ सीठ विद्रीह, 1974 का जयपुकाश का युवी वीन्दीलन आदि।

स्वतन्त्रता के बाद, बौद्धोगीकरण एवं शिक्षा के प्रसार के कारण जो सामाजिक सांस्कृतिक परिवर्तन शुरू हुआ, उसका प्रभाव छठें दशक के बाद एकदम स्पष्ट हो गया। जनसंख्या का नगरों नमुख पलायन हुआ, परिवार विखण्डित हुए, लोगों का वैयिक्तिक विखण्डन हुआ. यौन सम्बन्धों की परम्परागत सीमायें दूटी, अश्लीलता को पेशन के रूप में स्वीकार किया गया और ईश्वर एवं धर्मविषयक पारम्परिक सोव को सटका

उत्पन्न हुई । इन्हीं राजनीतिक, आर्थिक, एवं सामाजिक-सांस्कृतिक विसंगतियों के कारण साठोत्तरी कविता में विद्रोह का स्वर पनपा और वह इतना तीसा हो गया कि उसे इस दोरे की अविता को एक सास विशेषता के रूप में स्वीकृति मिली ।

यद्यपि इस कविता ने स्वातन्त्रंयोत्तर भारत की राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक-सांस्कृतिक आदि सारी विसंगतियों के प्रति विद्रोही स्व अध्तियार किया है, लेकिन राजनीति पर इस कविता की विद्रोही दृष्टि अपेक्षाकृत अधिक केन्द्रित है। यहीं कारण है कि सामान्यत: साठोत्तरी कविता का विद्रोह राजनीतिक विद्रोह का पर्याय बन गया है। साठोत्तर कवियों ने इस तथ्य को भनी-भाति समक्ष लिया था कि आज की स्थिति में राजनीति जीवन के मूल में है। जीवन के हर क्षेत्र की विसंगति प्राय: राजनीतिक धोखाद्यड़ी का परिणाम है। राजनीतिक, आर्थिक एवं सामाजिक

स्म किता ने जहाँ एक और शासन या राजनीति के जनितरोधी कृत्यों के खिलाफ समय-समय पर उठ छड़े हुए जनान्दोलनों एवं जनिवद्रोहों— जैसे नक्सलबाड़ी किसान विद्रोह, जयपुकाश नारायम की युवा कृतित बादि, के स्वर से स्वर मिला कर अपनी विद्रोही केतना को बिश्चयक्त किया है, वहीं दूसरी और राजनीतिक एवं प्रशासनिक परिदृश्यों की यशार्थ तस्वीर छींच कर भी अपने विद्रोही विन्तन को स्पष्ट किया है। इस किला ने खतन्त्रता, सैविधान, संसद, नेता, प्रजातन्त्र, समाजवाद, वृनाव आदि के उन सारे ढोंगो एवं छद्म स्पों का पदिणाश किया है, जिनकी बाड़ में आम जनता का शोषण हो रहा है। इस किलता का विद्रोह मात्र व्यवस्था के छद्म स्वरूप के यथार्थ-वित्रण तक हो सीमित नहीं है, बिल्क यह किता इस जनिवरोधी: शोफक राजनीतिक तन्त्र को उछाड़ फेकने का दम भरती है और जनता से इसके विरूद

सीधी कार्यवाही की बात करती है। अधिक विसंगतियों के प्रति इस कविता ने जो स्वर उठाया है, उसमें भी राजनीति एवं शासन व्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह की अनुगूंज है। कारण, देश की जनता की अधिक बदहाली एवं उसके शोषण के जिए व्यवस्था ही दोषी है। सच्वाई तो यह है कि साठोत्तरी कविता का राजनीति के प्रति सारा विद्रोह, राजनीति की दृश्चरिश्रता के फलस्वरूप उत्पन्न शोषण, अन्याय एवं आधिक विसंगतियों का परिणाम है। साठोत्तरी कविता ने स्वतन्त्र एवं गणतन्त्र भारत में पनपने वाली गरीबी, भूसमरी एवं आधिक शोषण की प्रक्रिया का सुलासा करके स्वतन्त्रता एवं गणतन्त्रात्मक व्यवस्था को ही आड़े हाथ लिया है।

साठौत्तरी कविता ने व्यक्ति के स्वच्छन्द्व विकास में बाधक सगाज-संस्कृति की पारम्परिक मान्यताओं, जैसे सामन्ती मृत्य, नारी विक्यक पारम्परिक दृष्टिकोण, धर्म एवं ईश्वर विक्यकंध विश्वास, विवाह एवं यौन सम्बन्ध की पारम्परिक मर्यादा आदि, पर तीसी चोट की है। इस कविता ने यान्त्रिक एवं अर्थप्रधान नगरीय संस्कृति पर भी चोट की है, जहाँ बाम आदमी कृष्ठा, क्षेत्रासन, जवमानना बादि मनोभावों के बीच िक्टरा है।

प्राव: व्यंग्य, वस्त्रीकार अपने विद्रोह बड़ा तीसा, स्पष्ट एवं व्यापक है। वह प्राव: व्यंग्य, वस्त्रीकार अपने विध्यंत के रूप में व्यक्त हुआ है। साठोत्तरी किता का विद्रोह दिग्रामित भी हुक्त है । क्रूब्य सारे किव ऐसे भी हैं, जिन्होंने विद्रोह को फेशन के तौर पर अपनाकर बपनी पहचान बनाने का प्रयास किया है। व्यवस्था की अनेतिकता एवं बग्रासीगकता पर चोट करने के प्रयास में वे स्वयं अनेतिक एवं बग्रासीगक हो गये हैं। यौन शब्दावित्यों एवं यौनिबम्बों को हठपूर्वक वपनाकर उन्होंने किता को कुरूप कर दिया है। साठौरतर कवियों ने समकालीन परिवेश की जिटनताओं एवं विसंगतियों के कारण अपने मन में पनपे आकृशि एवं विद्रोह की सफल अभिक्यक्ति में बाधक काव्य के परम्परागत प्रतिमानों को विद्यटिन करके नये प्रतिमानों को सृज्ति किया है। उन्होंने काव्य-भाषा के अभिजात्य एवं आउम्बरफ्रां स्वरूप को नकार कर उसका सहज एवं नंगा स्वरूप प्रस्तुत किया है, जिसमें सारे विधार स्पष्ट रूप से ब्रन्कते हैं। उन्होंने सारी वर्जनाओं का परित्याग करके सामाजिक स्तर पर अथलील समक्षे जाने वाले शब्दों का ब्रिह्म प्रयोग किया है। कारण, श्लील समक्षे जाने वाले शब्द आकृशि एवं विद्रोह जैसे भावों को उतनी सब्दता के साथ नहीं व्यक्त कर सकते, जितनी सब्दता से इन भावों को श्लील शब्द व्यक्त कर सकते हैं। जहाँ अथलील शब्दों का सायास प्रयोग हुआ है वहाँ किवता को पिक कृष्ण हो गयी है। साठोत्तरी किवता की भाषा गद्ध के निकट है और उसमें जनभाषा के शब्दों की प्रवृरता है।

साठोत्तरी किवयों ने किवता को बिम्बों के दबाव एवं घुटन से मुक्त करके 'सपाटबयानी ' के उन्मुक्त वातावरण में श्वांस लेने का अवसर दिया है। उन्होंने बिम्ब को काव्यप्रतिमान की केगी से खींच कर बाहर फेंक दिया है और सपाटबयानी की उसके विकल्प के रूप में अपनाया है। इसका कारण, बिम्बों का विवारों की सहज एवं स्पेक्ट अभिव्यक्ति में बाधक होना है। साठोत्तर किवयों का विद्रोह 'बिम्ब' से नहीं 'बिम्बवादिता से है।

यद्यपि साठ्रोत्तर किवयों ने छोटी किवतायें भी तिखी है, लेकिन उन्होंने अपने वैवारिक तनावों की अभिव्यक्ति के लिए 'लम्बी किवता' को ही साधन बनाया है। लम्बी किवता उनकी रक्तात्मक आवश्यकता है। कारण, 'छोटी किवता' झनाव युक्त लम्बे विवारों को दो सकने मैं ब्रांम हैं बोर बाख्यान एवं वरित्र को दोने वाले इतिवृत्त या प्रबन्ध तनावयुक्त विवारों के अनुकृत नहीं हैं। साठोत्तरी किवता का खाँग्य परिवेश की विसंगतियों की उषज है, जिस्के माध्यमेंसे यह किवता कि सही अभिव्यक्ति की विसंगतियों की उषज है, जिस्के माध्यमेंसे यह किवता कि सही अभिव्यक्ति की साधन हुई है।

## परिशिष्ट

### ग्रन्थ-सूची

#### काव्य - ग्रन्थ

परिमल

कबीर ग्रंथावली - प्र० सं० - भगवत स्वरूप मिश्र - विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा कबीर ग्रंथावशी - प्र० सं० - पारसनाथ तिवारी - प्रयाग हिन्दी परि० वि० कबीर समग्र - तo eto - प्रोo यगेशवर - हिन्दी प्रवास्क पिब्ल्डेशन पा0 लिं पशाच मोचन. वाराणसी कबीर ग्रंथावी - प्र० स० - स -- नागरी प्रवारिणी सभा मीरा पदावली - 90 सै० - सै० परशुराम वर्त्वेदी - हिन्दी साहित्य सम्मेजन प्रथाग - तुलसीदास की वतावली - गीता प्रेस - तुलसीदास - गीता प्रेस रामचरित मानस - इण्डियन प्रेस इलाहाबाद भारतेन्द्र नाटकवली-प्र०५० -- हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग प्रेमवनसर्वस्व - भाग एक - 90स0 - प्रताप नारायग मिश्र -त कि विसंस्त भीरत कारती के कि - मैथिजीशरण गुप्त - साहित्य सदन बासी - के स्थ - मेरिकीशरण गुप्त - साहित्य सदन झाँसी त्रिश्ल तरंग - हरिराम पुजारी स्वतन्त्रता की बंकार - जी० वी० शुक्त कलकत्ता - माधव शुक्त जागृत भारत - श्याम बिहारी मिश्र - वेलवेडियर प्रेस प्रयाग भारत विनय - सातवा सं० - निराला - भारती ऋडार प्रयाग JUST

- निराला

- गंगा पुस्तकमाला कार्यालय लक्क

राग विराग - सोलहवाँ सं० - रामविलास शर्मा -लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

ग्राम्या - पंत - भारती भण्डार प्रयाग

युगपथ - पंत - भारती भंडार लीडर प्रेस आगरा

स्कन्द गुप्त - सं० 1998 - प्रसाद - लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद

नवीन - गोपालसिंह नेपाली -

जीवन के गान - शिवमंगल सिंह सुमन

पुलय सुजन - शिवमंगल सिंह सुमन - प्रदीप कार्यालय मुरादाबाद

धरती पुठ संठ - त्रिलीवन - नीलाम प्रकाशन, इलाहाबाद

मधुनिका - वंचन

पुत्रात पेरी - नरेन्द्र समर्

लार सप्तक - ब्रत्थं सं० - सं० वक्ष्य - भारतीय ज्ञानपीठ

दुसरा सम्बक - पु० सं० - सं० वज्ञेप - भारतीय ज्ञानपीठ

तीसरा सम्बद्ध तु ते - ते व केय - भारतीय ज्ञानपीठ

बोबाःसम्ब - सं० वोग

- मुनि स्पवन्द - बादर्श साहित्य संघ वुरु० राजस्थान

वाँद का मुंह टेंद्र नि, देशका - महिकाबोध - भारतीय ज्ञानपीठ

आत्म निवसिन एवं अन्य कविता के प्रवसिक्त राजीव सक्सेना -राज्यमन प्रकाशन दिली

ये सपने ये बेत - प्र0 सं0 - रणबीस नवयुग ग्रंथ क्टी बीकानेर

च्यासी पथार्श वर्षि - नामाईन - उनामिका प्रकाशन इलाहाबाद

तालाब की मछिलयाँ - नामार्जुन -

सम्पूर्ण कविताएँ: नागार्जुन पं०सं० की चुनी हुई रचनाएँ भाग २- वाणी प्रकाशन दिल्ली

तुमने कहा था, प्र० सं० - नागार्जुन - वाणी प्रकाशन दिल्ली सिवड़ी विप्लव देसा हमने, प्र०स० - नागार्जुन - सम्भावना प्रकाशनः हाप्ड हजार-हजार बाहीं वाली .9040 - नागार्जुन - राधाक्ष्ण प्रकाशन दिल्ली प्रानी जितयों का कौरस, प्राप्त - नागार्जुन - नाणी प्रकाशन दिल्ली - वाणी प्रकाशन दिल्ली नागार्जन रत्नगर्भा . प्रव संव ऐसे भी हम क्या. ऐसे भी तुम क्या, प्रंतरं -नागार्जुन - वाणी प्रकाशन दिल्ली इतने पास अपने. प्र० सं० -शमशेर बहादुर सिंह - राजकमल प्रकाशन दिल्ली कुका भी हूं में नहीं, प्र0 सं0 - शमशेर बहादुर सिंह - रमधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली - शमरोर बहादुर सिंह - सम्भावना प्रकाशन हापुड़ बात बोलेगी , प० स० - केदारनाथ अग्रवाल - परिमल प्रकाशन इ० ग० कहें केदार सरी-सरी पूल नहीं रंग बोलते हैं, बीठ संठ -हे मेरी तुम मार प्यार की धार्वे साम की बाइना पंज से ते पता कर ताप के तवे हुए दिन, 90वें - निक्रतीवन - संभावना प्रकाशन हाप्ड - राधाक्ष्ण प्रकारन दिली तम्हें सौपता है, पूर्व संव उस जनपद का कवि हूँ, प्रवस्त - राधाकृष्ण प्रकाशन - सर्वेश्वरदयाल सक्तसेना - अक्षर प्रकाशन दिल्ली एक सुनी नाव, प्रवर्त - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली गर्म हवार , प्राचि - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - राजकमल प्रकाशन दिल्ली क्यानी नदी. प्र० सं०

र्जंगल का दर्द. प्र० सं० - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - राजकमल प्रकाशन दिल्ली स्टियों पर टॅंगे लोग, प्र0सी - सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - राजकमल प्रकाशन दिल्ली यहाँ से देखी. 90 सं0 - जेदारनाथ सिंह - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली राजकमल प्रकाशन दिली केदारनाथ सिंह: प्रतिनिधि कविताएं, प्र0सं0 -जमीन पक रही है. प्र0सं० - कैदारनाथ सिंह - प्रकाशन संस्थान दिल्ली अत्म हत्या के विरुद्ध, प्र०सं० - रघुवीर सहाय - राजकमल प्रकाशन पटना - नेशनल पिकाशिंग हाउस दिल्ली हँसौ जल्दी हँसौ, प्र०सै० - रघ्वीर सहास - भारतीय ज्ञानपीठ काशी सीदियों पर धूप में - रघुवीर सहाय संसद से सड़क तक, पांचवा सं० - धीमल राजक्ष्मल प्रकाशन दिल्ली, पटना - वाणी प्रकाशन दिल्ली सुदामा पाण्डेय का प्रजातन्त्र, प्र०० धूमिल - धुमिल - वाणी प्रकाशन कल सुनना मुझे - बमर पुकारान दिल्ली नाटक जारी है, 90 सं0 - लीनाधर ज्यूड़ी - साहित्य भारती दिली इस यात्रा में. प्र0सीठ - जगुड़ी - इन्द्रपुरुष प्रकाशन दिल्ली रात अभी मौजूद है, प्रवसंव - जगूड़ी - राज कमल प्रकाशन दिल्ली - जगुड़ी बची हुई वध्वी - राजम्ल उकारान – ন্যান্ত্ৰী घवराये हुए शब्द एक छोटी सी लड़ाई, प्रश्निक क्योर विकल - सम्भावना प्रकाशन हापुड़ - चित्रनेखा प्रकाशन सोहबतिया - कुमार विकल रंग सतरे में है, प्र0स0 बाग, इलाहाबाद - वेण गोपाल ते हाथ होते - वाणी प्रकाशन दिल्ली - बस्ग कमल अवनी केवल धार . 90स0 '- ज्ञानपीठ प्रकाशन वाराणसी - श्रीकान्त वर्गा माया दर्ण, पुठ सैठ

जागते रही सीने वाली, प्राप्त गीरस पाणडेय - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

देहान्त से हट कर, प्र0स0 - कैलाश वाजपेयी - अक्षर प्रकाशन दिल्ली

सुनो कारीगर, प्र0सं० - उदय प्रकाश - सम्भावना प्रकाशन हापूड्

अबूतर - कबूतर, प्र0सं० - उदय प्रकाश - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

शहर अब भी सम्भावना है, प्र०० - अशोक वाजपेयी - भारतीय ज्ञानपीठ वाराणसी

फ्लिहाल, प्र००० - अशोक वाजपेयी - राजकमल प्रकाशन दिल्ली

निद्दी बौनती है, प्र0 सं0 - रमेश रंज - अक्षर प्रकाशन दिल्ली

मुबह होने से पहले - सब्यवाची

मुक्ति प्रसँग - राज्यमन वौधरी - वाणी प्रकाशन दिल्ली

मछली मरी हुई - राज्जमल वौधरी - राज्जमल प्रकाशन दिल्ली

प्रगतिशील कविता के मील पत्थर, सं० 1985, सम्पाठ डाँठ रणजीत - लोक भारती प्रकाशन इलाहाबाद

साये में धूप, सं० ग्यारहवां - दुष्यन्त कुमार - राधाकृष्ण प्रकाशन दिल्ली

## जालीक्नात्मक तथा अन्य ग्रन्थ

अकि विता और क्ला संदर्भ, प्र0सं० श्याम परमार - कृष्ण ब्रदर्श अजमेर

अस्तित्ववाद: कीर्गेगार्द से कामू तक - योगेन्द्र शाही - दि मैकमिलन कं आफ इण्डिया लि दिल्ली

त्राधुनिक परिवेश और नव लेखन, पं०सं० - डाँ० शिव प्रसाद सिंह - लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

त्राधुनिक भारत का इतिहास, सातवाँ सै० -ग्रोबर - एस० यन्द एण्ड कम्पनी लि० रामनगर नयी दिल्ली: 110055

आधुनिक भारत एल0पी० शर्मा -

आदिकालीन हिन्दी साहित्य की सांस्कृतिक पीठिका, प्र0सं० - डाँ० रामकृति त्रिपाठी - म०प्र० हिन्दी ग्रंथ अकादमी, भोषाल आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, सं० 1987 - डाँ० नामवर सिंह - लोकभारती प्रकाशन इलाहाबाद

त्राधुनिक बोध और विद्रोह, प्रात्सं - डाँ० हरदयाल - राजेश प्रकाशन दिल्ली आधुनिक हिन्दी काव्य-भाषा, प्रात्सं - रामकुमार सिंह - ग्रंथम कानपुर आधुनिक कविता के नये मूल्य, प्रात्सं० - डाँ० महेन्द्र कार्तिकेय - विद्याप्रकाशन मंदिर दिल्ली

आधिनक हिन्दी साहित्य में व्यंग्य - डाॅं० मेंहदी रत्ता

अभ्युत्तिक विश्व और अस्तित्ववाद , प्राप्ति - डाँ० शिव प्रसाद सिंह - नेशनल पिब्ल० हाउस दिल्ली

कबीर पाँचवा सं0 - बाचार्य हजारी प्रसाद द्विवेदी - राजकमल प्रकाठ दिल्ली किता के नथे प्रतिमान - डाँ० नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन दिल्ली किता से साक्षात्कार, प्रवर्गं० - मलयज - सम्भावना प्रकाशन हापुड़ काव्यात्मक बिम्ब, प्रवर्गं० - ब्रुजनम्द प्रसाद आवौरी - मान गौक पटना किता की वैवारिक भूमि, प्रवर्गं० - नरेन्द्र मोहन "-इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली काव्य बिम्ब, प्रवर्गं० - डाँ० नगेन्द्र - नेशनल पिक्लिशिंग हाउस दिल्ली हायावाद, पाँचवा संव - डाँ० नामवर सिंह - राजकमल प्रकाशन, नयी दिल्ली दिनकर एक पुनर्मृल्यांकन - प्रवर्गं० - डाँ० विजयेन्द्र नारायण सिंह - परिमल प्रकाठ हलाठ दिलीय महायुद्दोत्तर हिन्दी साहित्य का इतिहास, पंवर्गं० - वार्ष्णेय - राजपाल एण्ड संस दिल्ली

धूमिल : काळ्य यात्रा, प्राप्ति - प्रोप्त मंजु अग्रवाल - ग्रंथम् रामबाग कानपुर धूमिल और उनका काळ्य संवर्ष, प्राप्ति - डाँठ ब्रह्मदेव मित्र - लौकभारती प्रकाठ इलाहाबा नयी किवता के बाद, पंठ संठ - डाँठ औम प्रकाश उवस्थी - पुस्तक सदन कानपुर नयी किवता : उद्भव और विकास, प्राप्ति - रामववन राय - बिहार हिन्दी ग्रंथ क्कादमी, पटना नयी किवितायें एक साक्ष्य, प्र०सं० - क्वाँ० रामस्वरूप वर्तुर्वेदी - लोभारती इलाहाबाद परम्परा का मूल्यांकन, प्र०सं० - डाँ० रामिविलास शर्मा - राजकमल प्रकाशन दिल्ली पाश्वात्य का व्यशास्त्र के सिद्धान्त, दिल सं० - डाँ० शान्ति स्वरूप गुप्त - अशोक प्रेकाशन नयी सड़क दिल्ली

प्योगवाद और नयी कविता, प्र०२० - डॉ० शम्भूनाथ सिंह - समकालीन प्रकाशन वाराणसी

भारतीय नवजागरण, प्रणेता तथा बान्दोलन, प्र० सं० - गौरीशंकर भट्ट - साहित्य सदन देहरादूर

भारत का संविधान : एक परिचय सातवाँ सं० - डी०डी० वसु श्वनुवादक - ब्रजिक्शीर श्वमिश्च- ग्रेसहान आफ इंडिया नयी दिल्ली

भारत की राजनीतिक प्रणाली, प्र००तं० - कृष्णकान्त मिश्र - हिन्दी माध्यम मण्डल हिन्दी विश्वविद्यालय दिल्ली

भारत चीन और उत्तरी सीमाये, प्राप्त - डाँठ राममनोहर लोहिया - नवहिन्द प्रकाशन, हैदराबाद

भारतीय अर्थव्यवस्था, छब्बीसवाँ सं० - स्द्र दत्त एवं के०पी०एस० सुन्दरम - ए० चन्द एण्ड कम्पनी लिमिटेड दिल्ली

भारतीय अर्थव्यवस्था, न० सं० - मिश्र एवं पुरी - हिमालय पिस्तिशंग हाउस मुम्बई -

भाषा और संवेदान, तृ०सं० - डाँ० रामस्वरूप क्तुर्वेदी - लोकभारती इलाहाबाद महावीर प्रसाद दिवेदी और हिन्दी जागरण, प्र०सं० - रामविलास शर्मा - राजक्मल प्रकाशन दिल्ली

मध्य युगीन भारतीय समाज पूर्व स्वकृति - झारसण्ड वीवे भीरा का काव्य, प्राणी - विश्वनाथ त्रिपाठी - वाणी प्रकाशन नयी दिल्ली युवा राजनीति शीनाथ समा

रीति विज्ञान , प्राप्ति विद्या निवास मित्र - राधाकृष्ण प्रकारन सम्बी कविता का रचना विधान - सं० नरेन्द्र मोहन विद्रोह क्या है १ १रजनीश का व्याख्यान१ प्र0सं० - सं० स्वामीयोग विन्मय - जीवन जागृति वान्दोलन प्रकाशन बम्बई

विद्रोह और साहित्य, प्राप्त - नरेन्द्र मोहन, देवेन्द्र इस्सर - साहित्य भारती हिंदली वैष्णव भिक्त आन्दोलन का अध्ययन, प्राप्त - डाँ० मिलक मुहम्मद - राजपाल एण्ड संस दिल्ली

विवार कविता की भूमिका - सं० नरेन्द्र मोहन, महीप सिंह समकालीन कविता की भूमिका, प्र०सं० - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - दिमेकमिलन कं०

स्वरंबर एवं उनकी कविता, 90स0 - कृष्णदत्त पालीवाल - लिपि प्रकाशन दरियागंज

लि0 दिल्ली

समकालीन सिद्धान्त और साहित्य, प्रात्सी - विश्वम्भरनाथ उपाध्याय - लिपि प्रकाशन दिस्यागीज दिली

सर्वेश्वर का काव्य: संवेदना एवं सम्प्रेषण - डाँ० हरिनारायण शर्मा - पंचशील प्रकाशन जयपुर

समकानीन कविता का परिप्रेक्ष्य, प्रवर्ते - मदन मुनाटी - इन्द्रप्रस्थ प्रकाशन दिल्ली साठोत्तरी हिन्दी कविता: परिवर्तित दिशाये, प्रवर्ते - विजयकुमार - प्रकाशन संस्थान दिल्ली

समकालीन परिवेश और नवलेखन, प्रवर्त - डाँव शिव प्रसाद सिंह - लोकभारती इलाव समकालीन कविला में जनवादी केलना, प्रवर्त - डाँव नकछेद - संजय प्रकाशन वाराणसी साठोत्तरी हिन्दी कविला में जनवादी केलना, प्रवर्त - नरेन्द्र सिंह - वाणी प्रकाशन दिस्ली

साठोत्तरी हिन्दी कविता की प्रवृत्तियाँ, सं0 1987 - डाँ० नीलकुसुम - किताब महल

संस्कृत हिन्दी कोश, दिल्ली है बामन शिवराम बाप्टे - मोतीलाल बनारसीदास पब्लि

सात क्रान्तियाँ - डाँठ राममनोहर मोहिया साहित्य और आधुनिक बाँख, १०४० - देवेन्द्र इस्तर - साहित्य भारती दिन्ती सोच्यान्तिक बाँख, १०४० - इसार विमान - राज्यमान दिली सन् साठ के बाद हिन्दी कविता - सं0 ववनदेव कुमार

हिन्दी साहित्य का इतिहास, द्वि०सं० - डाँ० नगेन्द्र - नेशनल पिकाशिंग हाउस नयी दिल्ली

हिन्दी संहित्य का संक्षिप्त इतिहास, प्रवस्त - रामरतन भटनागर - साथी प्रकाशन

हिन्दी साहित्य का इतिहास - आचार्य रामचन्द्र शुक्त - काशी नागरी प्रचारिणी **HAT** 

#### 8118 शब्द - बौश

बृहत् कोशं सप्तम् सं० - सं० कालिका प्रसाद - ज्ञान मण्डल लि० वाराणसी सिक्षप्त क्रिन्दी शब्द सागर - नवम् सं० - सं० रामचन्द्र वर्गा - नागरी प्रवारिणी सभा काशी

8घ8 पत्र-पत्रिकाय

अाली वना

अवक ।श

अ जिंकल

वाम

निषध

शुस्यात

शमशानी पीढ़ी

विनम ।न

रविवार

सिमनार

स्वतन्त्र गरत

क स म

मी रहेरा

38F

विशाल भारत

ज्ञानीदय

युयुत्सा

साम्य